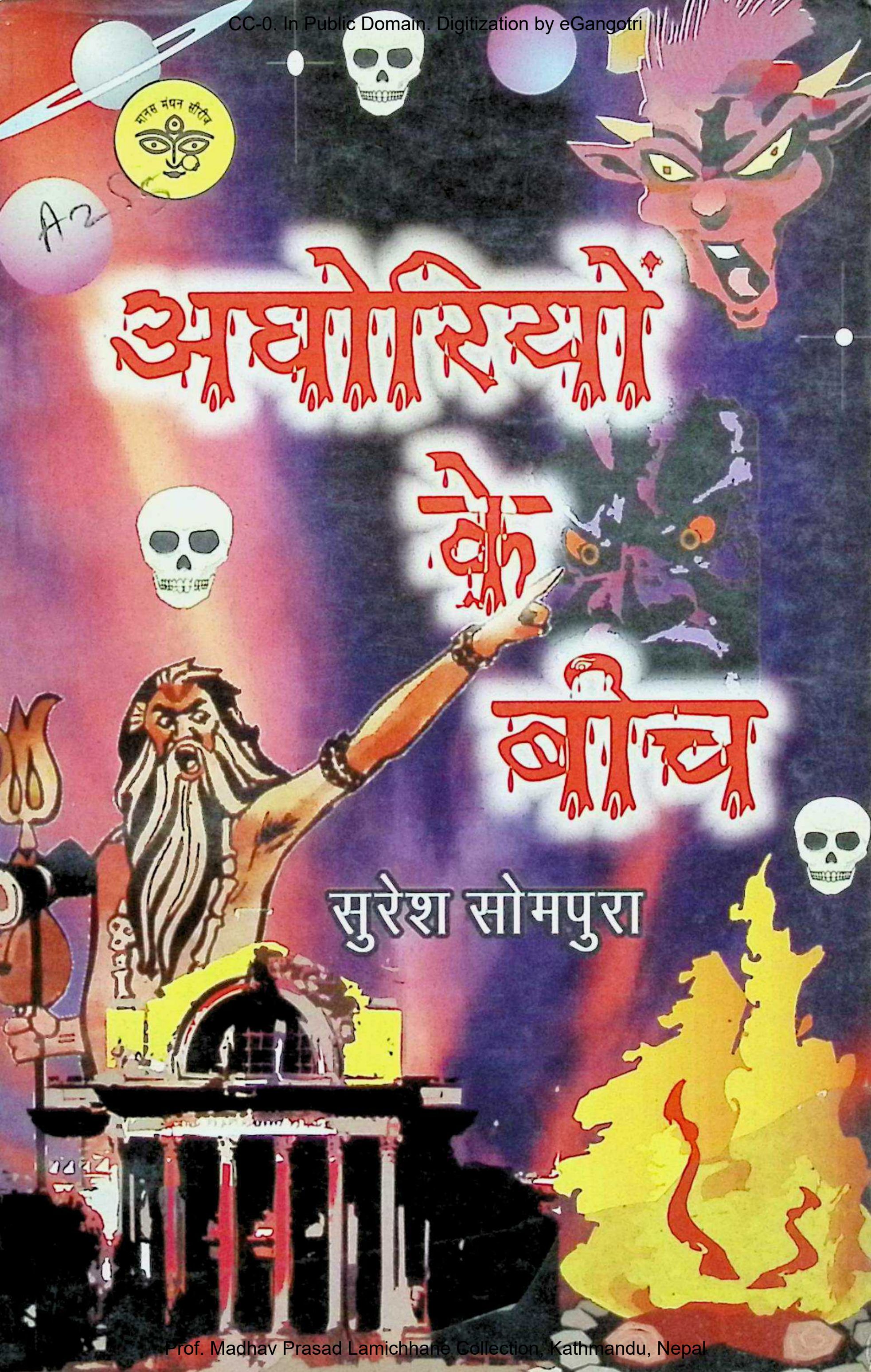

मानस मंथन सीरीज
अघोरियों के बीच
सुरेश सोमपुरा

अघोरियों के बीच

लेखक
सुरेश सोमपुरा

भगवती पॉकेट बुक्स

प्रकाशक : भगवती पॉकेट बुक्स
11/7, डॉ० रांगेय राघव मार्ग,
आगरा–2

अनुवादक : मनहर चौहान

मूल्य : 60·00

ISBN : 81-7457-252-X

लेजर टाइप सैटिंग : आइकन कम्प्यूटर्स, आगरा

मुद्रक : रवि मुद्रणालय, आगरा

AGHORIYON KE BEECH : Suresh Sompura Rs. 60/-

एक

रोमांचक सन्देश



'युवदर्शन' कार्यालय में अपनी मेज के सामने आकर मैं बैठ गया। डाक आ चुकी थी। प्रूफों का भी ढेर लगा था। ताजा अखबारों पर एक सरसरी नजर डाली। भ्रष्टाचार, दुर्घटनाओं और आपाधापी के समाचार समा नहीं रहे थे। 'विस्तार से बाद में पढूँगा', ऐसा सोच कर सबसे पहले मैंने प्रूफों के साथ न्याय किया।

फिर मैं डाक खोलने लगा। लिफाफों में कहानियाँ और लेख इत्यादि थे। उन्हें मैंने अलग रख दिया। एक वजनदार और पुराना-सा लिफाफा मेरे हाथ में आया। पते की लिखावट पहचानते ही मेरी आँखें चमकने लगीं।

दत्तू से चाय लाने के लिए कहकर मैंने उसे आतुरता से खोला। वह चिट्ठी मेरे परम मित्र स्वामी शिवानन्द की थी। बड़े दिनों बाद उनकी चिट्ठी मिलने का रोमांच मैंने महसूस किया। रोमांच का एक और भी कारण था, स्वामी शिवानंद को मैंने आज सुबह ही याद किया था। तंत्र-मंत्र के वैज्ञानिक परीक्षण के अपने अनुभवों की जो पहली पुस्तक मैंने लिखी थी 'चत्मकार को नमस्कार', उसकी पाण्डुलिपि मैं उन्हें दिखाने के बाद ही प्रेस में देना चाहता था। सवाल यह था कि उस घुमक्कड़ प्राणी का पता कैसे

लगाया जाए ? वह किसी भी क्षण भारत के किसी भी कोने में हो सकते थे। कैसा संयोग ! उन्हें ढूँढ़ने की चिन्ता अपने-आप दूर हो गई थी।

मैंने पत्र पढ़ना शुरू किया।

'प्रिय सुरेश भाई,

'बहुत दिनों बाद लिख रहा हूँ। इन गर्मियों में दक्षिण भारत के गाँवों में भटकता रहा। अभी, कुछ ही दिन पहले हरिद्वार आया हूँ।

'पाँचेक साल पहले जब हम वेल्लूर में थे तब आपने एक इच्छा व्यक्त की थी, आप को याद होगा। आपने कहा था, सच्चे अघोरियों से आप मिलना चाहते हैं। न जाने कितने कापालिकों, तांत्रिकों इत्यादि से आप मिल चुके हैं, किन्तु सच्चे अघोरियों से मिलने का अवसर कभी नहीं मिला। मुझे मालूम है, आप कितने जिज्ञासु व्यक्ति हैं। इसीलिए आपकी इच्छा मन में अंकित होकर रह गई थी।

यहाँ, हरिद्वार में, अभी कल ही अचानक मेरी भेंट बाबा भैरवनाथ से हुई। उनका कद साढ़े छह फीट से कम न होगा। ऊँचाई के ही अनुपात में चौड़ा सीना, चेहरे पर माता के इतने गहरे दाग कि घनी, काली दाढ़ी के भी आरपार दिखाई पड़ें। वेधक आँखें। अंग्रेजी और फ्रेंच फर्राटे से बोल सकते हैं। स्वाभाविक ही था कि मैंने उनसे परिचय विकसित किया। उन्होंने बताया कि वह अघोरपंथी हैं। अघोरपंथ की सैकड़ों वर्ष पुरानी परम्परा को जीवित रखने वाले जो थोड़े से अघोरी इस देश में बचे हैं, उनमें से एक श्री लकुलेश जी उनके गुरु हैं। "लकुलेश" नाम आपको नया नहीं लग रहा होगा। पुराने इतिहासों में यह कई बार आया है।

'बाबा भैरवनाथ ने एक विचित्र बात बताई। उनके दावे के अनुसार, इस देश में लगभग एक लाख वाममार्गी हैं। अघोरपंथ में विश्वास रखने वाले स्वयं को वाममार्गी ही कहते हैं। ये वाममार्गी खुल्लमखुल्ला अघोरियों की तरह घूमते या बरताव नहीं करते। यह शहरी लोगों के साथ, प्रतिष्ठित नागरिकों की तरह ही घुलमिल कर रहते हैं, किन्तु वाममार्ग के कट्टर अनुयायी हैं। उन्होंने मुझे कुछ ऐसे नाम बताए, जिनसे मैं भी चौंक गया।

फिर तो वाममार्ग की साधना एवं तत्व ज्ञान आदि को लेकर देर तक चर्चा होती रही। स्वाभाविक था कि उनके सामने मैंने आपका उल्लेख किया। "कल्पना-योग" के सन्दर्भ में आपके जो विचार हैं, वे मैंने उनके सामने प्रस्तुत किए। सब स्वीकार करने को वह तैयार नहीं थे, प्रभावित हुए हैं, ऐसा लगा। जब मैंने बताया कि चैतन्यानंद जी के साथ आपके सम्बन्ध क्या थे, तब उन्होंने आपसे मिलने की उत्सुकता दर्शाई। लगा, जैसे वह चैतन्यानन्द जी को पहचानते हैं, हालांकि इस बाबत उन्होंने मुझसे कहा कुछ नहीं।

उन्होंने बताया कि मध्य प्रदेश के जंगलों में अघोरी शीघ्र ही एक अत्यन्त गुप्त साधना-शिविर का आयोजन कर रहे हैं। भारत के सर्वोच्च अघोरी उसमें भाग लेंगे। अनायास मैं पूछ बैठा, "क्या सुरेश जी को उस शिविर में आप आमंत्रित कर सकते हैं ?"

जवाब में उन्होंने पूछा, "क्या सुरेश जी आना चाहेंगे ?"

उत्साहित होकर मैंने कह दिया, "अवश्य ! उन्हें यह प्रस्ताव अवश्य पसंद आएगा।"

जब कि मुझे बिल्कुल पता नहीं है कि इन दिनों आपकी व्यस्तताएँ क्या हैं। क्या सचमुच आप उस शिविर में जा सकते हैं ? मैंने तो, पाँच वर्ष पहले आपने जो इच्छा प्रकट की थी, उसी आधार पर हामी भर दी। भैरवनाथ जी ने कहा कि साधना के समय आपको शिविर में प्रवेश दिलवाने का प्रयास वह करेंगे।

लेकिन इसके बाद उन्होंने जो बातें बताईं—साधना के स्वरूप एवं भयानकता की—वे ऐसी थीं कि मैं सोचे बिना न रह सका, "ऐसे शिविर में सुरेश जी न जायें, तो ही अच्छा........" वहाँ वशीकरण के प्रयोग होंगे। अघोरी बाबा भैरवनाथ ने मुझसे दावे के साथ कहा कि वह भयानक शेर को भी वशीकरण के प्रयोग से बकरी जैसा मासूम बना सकते हैं। उन्होंने येतु विद्या के बारे में भी विचित्र दावे किए और बताया कि उस विद्या से वह मनुष्यों को किस सीमा तक वश में कर सकते हैं। मूठ मार कर, सैकड़ों किलोमीटर दूर बैठ कर भी, किसी की हत्या कैसे की जा सकती है। इसकी जानकारी उन्होंने मुझे अपनी लाक्षणिक शैली में दी। जीवन एवं यौन-जीवन के विषय में उनके विचार ऐसे हैं। साधना में मानव बलिदान आदि पर भी उनकी मान्यताएँ ऐसी भयानक हैं कि सुनकर कँपकँपी छूटे।

इसके बावजूद यह पत्र आपको लिख रहा हूँ। आज सुबह ही भैरवनाथ जी मुझसे कह गए कि साधना शिविर में आपकी उपस्थिति की अनुमति मिल गई है। साधना अमावस्या से सातेक दिन पहले शुरू होगी। अमावस्या के बाद तीन दिनों तक चलेगी। आप जब चाहें, तब शिविर में जा सकते हैं। शिविर के बारे में कुछ भी प्रकाशित करने से पहले आपको उनके मुख्य अधिकारी से अनुमति लेनी होगी।

आप अपनी इच्छा मुझे तार द्वारा सूचित करिए। सबसे पहले आपको जबलपुर पहुँचना होगा। वहाँ मैं आपसे मिलूँगा। इसके बाद बाबा भैरवनाथ आपके साधना-स्थली तक जाने का प्रबन्ध करेंगे। यह स्थली कहाँ है, उन्होंने बताया नहीं है।

'अभी मैं यहीं हरिद्वार में हूँ। आप आनंद आश्रम के पते पर मुझे जवाब दें। शेष कुशल। सस्नेह, शिवानंद।"

बड़ी देर तक मैं इस पत्र को थामे बैठा रह गया। सामने रखी चाय ठंडी हो चुकी थी। अघोरियों के बारे में जो अनेक काल्पनिक कथाएँ पढ़ रखी थीं, उनके विचित्र और भयानक चरित्र मेरी आँखों के आगे साकार होने लगे। पाँच वर्ष पहले का वह दिन मुझे विस्तार के साथ याद आया, जब मैंने शिवानंद जी के सामने वास्तविक अघोरियों से मिलने की अपनी इच्छा प्रकट की थी।

उस दिन.....मैं, मेरा दोस्त प्रमोद और हमारा पंजाबी साथी जगजीत वेल्लूर के मंदिरों की मूर्तिकला को अपने कैमरों में कैद कर रहे थे।

जगजीत तेज स्वभाव का नौजवान था। उस दिन उसकी तबीयत कुछ नासाज थी। दो दिन पहले ही उसने मैसूर में एक बाबा के साथ झगड़ा किया था। बोल कर भले

ही वह कुछ नहीं जता रहा था किन्तु उसकी नरम तबीयत का राज मुझे मालूम था। जिसकी जुबान हमेशा कैंची की तरह चलती रहती थी, बात-बात में जो ठहाके लगाता था, वही जगजीत आज बिल्कुल गुमसुम होकर फोटो खींचे जा रहा था। उसके मन में मचे तूफान से मैं अपरिचित नहीं था।

तभी वहाँ स्वामी शिवानंद जी आ पहुँचे थे। उन्हें देख कर मुझे आनंद बहुत हुआ था किन्तु आश्चर्य बिल्कुल नहीं। मैं उन्हें चारेक वर्षों से जानता था।

स्वामी शिवानन्द अकेले जीव हैं—महा-जिज्ञासु। उन्होंने किसी भी धर्म, पंथ या मान्यता की कंठी नहीं बाँधी है। अनेक भारतीय एवं विदेशी भाषाओं पर उनका अच्छा अधिकार है। विविध विषयों पर बहुत पढ़ रखा है उन्होंने। भारत में घूम-घूम कर वह मानव स्वभाव का अध्ययन करते हैं। तब उनकी उम्र पैंतीस के आसपास रही होगी। अनेक अवसरों पर, अनेक स्थलों में, उनकी और मेरी मुलाकातें अनायास हो जाया करतीं। वह दिन हमने साथ-साथ बिताने का फैसला किया।

सरकिट हाउस में रात का भोजन निबटने के बाद मैं और स्वामी शिवानंद गप-गोष्ठी जमा कर बैठे थे। तभी प्रमोद वहाँ हक्की-बक्की हालत में आया और बोला, "जगजीत को उल्टियाँ हो रही हैं।"

मैं और शिवानंद जी वहाँ गए, जहाँ जगजीत लेटा हुआ था। वह अत्यधिक बेचैन था। उसकी आँखें फट गई थीं। वह ऐसे दाँत पीस रहा था, जैसे पीड़ा सही न जा रही हो। बार-बार वह करवटें बदलने और कराहने लगता। मैंने पूछा, "तुम्हें क्या हो रहा है, जगजीत ?"

वह मुश्किल से बोल सका, "सारा बदन टूट रहा है, भयानक पीड़ा हो रही है। जैसे कोई मुझे पीस रहा है।"

मैं काँप उठा। मैंने जगजीत को समझाया कि अगर उसने आत्म-बल न छोड़ा, तो उसका कुछ नहीं बिगड़ेगा। प्रमोद ने कहीं से लाकर उसे कुछ ब्राण्डी पिलाई। जगजीत को थोड़ी राहत मिली। वह सोने लगा। प्रमोद को उसके पास बिठा कर मैं और स्वामी शिवानंद बाहर निकले।

"क्या बात है ?" शिवानंद जी ने पूछा। मैंने निराशा से कहा, "जगजीत डर गया है, क्योंकि किसी ने उसे मूठ मारी है।"

"मूठ ?" शिवानंद जी को आश्चर्य हुआ था और मैंने दो दिन पहले का वह विचित्र प्रसंग उन्हें कह सुनाया था......।

दो

भयंकर मूठ



उस दिन दशहरा था और हम मैसूर में फोटोग्राफी कर रहे थे। महाराजाओं के खत्म होने के बाद भी वहाँ सवारी तो निकलती ही है, भले ही उसमें पहले जैसा रौबदाब नहीं होता। 'फेयर एण्ड फेस्टिवल सीरिज' की फोटोग्राफी के लिए हम मैसूर पहुँचे थे।

भूतपूर्व महाराजा के विशाल महल के सामने जो चौगान है, वहीं से सवारी शुरू होने वाली थी। सामने के एक मकान के बरामदे में, तिपाइयों पर अपने-अपने कैमरे सजा कर हम तैयार बैठे थे। कुछ लोग कौतूहल से हमारी ओर देख रहे थे।

अचानक एक प्रचंड बाबा आकर जगजीत के कैमरे के सामने खड़ा हो गया। गर्म स्वभाव के जगजीत ने, अपने पंजाबी जमीर के अनुरूप ही, बाबा को जरा गलत ढंग से चुनौती दी और कैमरे के सामने से हट जाने को कहा। बाबा ने ठंडी उपेक्षा से जगजीत की तरफ देखा और हटने की कोई चेष्टा न की। जगजीत का गुस्सा भड़क उठा। उसने धक्का मार कर बाबा को दूर हटा दिया। बाबा भी अड़ियल था। वापस वहीं-का-वहीं आकर खड़ा हो गया। इस पर जगजीत बाबा को गालियाँ देने लगा। देखते-देखते दोनों के बीच हाथापाई होने लगी।

मैं और प्रमोद कैमरों की चौकीदारी करते खड़े थे, हट नहीं पा रहे थे। अचानक बाबा ने जगजीत के गाल पर एक जोरदार झापड़ दे मारा। जगजीत का होंठ कट गया और खून निकलने लगा। क्रोधित होकर उसने बाबा पर थूक दिया। थूक बाबा की विशाल छाती पर गिरा।

सहसा बाबा ने एक विचित्र हरकत की। बड़ी चपलता से उसने रास्ते की धूल उठाकर अपनी छाती पर पड़े थूक पर मली। इस मिट्टी को उसने एक पत्ते में लपेट कर रख लिया। पत्ते की पुड़िया टेंट में खोंसता हुआ वह घोर व्यंग्य से हँस पड़ा। जगजीत को घूरते हुए उसने कहा, "अब तुझे कोई नहीं बचा सकता, साले ! ऐसी मूठ मारूँगा, एक हफ्ते में खत्म हो जाएगा। खून की उल्टियाँ होंगी। तड़प-तड़प कर मरेगा।"

और वह बाबा भीड़ को चीरता हुआ गायब हो गया। जगजीत क्रोध और भय से थरथराने लगा। थोड़ी ही देर में सवारी शुरू हो गई, लेकिन सबका मूड बिगड़ चुका था। बेमन से कुछ फोटो खींच-खाँच कर हम लौट आए।

बस, तभी से जगजीत गुमसुम रहने लगा था। रात को उसे कुछ बुखार भी आ गया था। मैंने उससे बातें करने का प्रयास किया, किन्तु वह मूठ के ही ख्याल में खोया हुआ था। मुझे समझते देर न लगी कि वह मूठ की शक्ति पर अटूट विश्वास रखता है। मैंने उसे हर सम्भव उपाय से समझाना चाहा कि ये शक्तियाँ केवल वहम के जोर पर काम करती हैं। यदि वह अपने मन में वहम की जड़ें जमने नहीं देगा, तो कुछ नहीं होगा।

जगजीत मुझसे सहमत नहीं हो सका था। जरूर अंधविश्वास उसे घुट्टी में पिलाया गया था।

कुसंस्कार के उस जाल को मैं किसी तरह न काट पाया। भय उसके मन की अतल गहराइयों में उतरता चला गया।

शिवानन्द जी और मैं, देर तक चुपचाप बैठे रह गए थे। मैंने उनसे कहा था, "अघोरियों की मान्यताएँ क्या हैं, इसकी जानकारी तो कहीं-न-कहीं से मिलती रहती है, किन्तु वे अपनी आलौकिक शक्तियों को अर्जित किस प्रकार करते हैं ? साधना की कैसी पद्धतियाँ वे अपनाते हैं ? उस बाबा ने जगजीत को जैसी मूठ मारी है, क्या सचमुच वैसी मूठ में कोई मंत्र-शक्ति होती है ? या.......जगजीत केवल अपनी आशंका की ही आग में झुलस रहा है ? जगजीत के बुखार, उल्टियाँ, अंग-अंग में पीड़ा इत्यादि को आशंका-जनित माना जाए या मूठ-जनित ? ऐसे अनेक प्रश्न हैं, जिनके वैज्ञानिक उत्तर मैं पाना चाहता हूँ। आपने तो बहुत भारत भ्रमण किया है। क्या कभी वास्तविक अघोरियों, वाममार्गियों से मिलने का अवसर आपने पाया ? मैं जितनों से मिला हूँ, उनमें से अधिकांश तो केवल हाथ की सफाई दिखाने वाले थे। वे सच्चे अघोरी नहीं थे। कुछ ऐसे साधुओं से भी मिला, जो जनता के जड़ अंधविश्वासों का लाभ लेकर चमत्कार दिखाते थे। कुछेक साधु यदि समर्थ महसूस भी हुए, तो वे कुछ भी बताने को तैयार नहीं थे। मैं इनकी शक्तियाँ स्वयं नहीं पाना चाहता, किन्तु शक्तियों की जड़ों को अवश्य

टटोलना चाहता हूँ। इसके लिए योग्य अवसर यदि आप मुझे कभी भी, कहीं भी दिला सकें, तो अत्यन्त आभार मानूँगा।"

बरसों बाद, इस इच्छा के पूर्ण होने का अवसर अचानक सामने आया। मैंने तुरन्त 'युवदर्शन' के स्वामी श्री रसिकभाई भुता से अनुमति ले ली और स्वामी शिवानन्द को तार कर दिया, 'अगले बुधवार को जबलपुर स्टेशन पर मिलूँगा। हावड़ा मेल से पहुँच रहा हूँ।'

और मैं रवाना होने की तैयारियों में जुट गया।

लेकिन एक चेहरा मुझे वहाँ जाने से रोक रहा था। वह जगजीत का चेहरा था। जगजीत ने जो वीभत्स यातनाएँ भोगी थीं, सब याद आने लगा.....। जगजीत का करुण चेहरा मुझसे बार-बार कह रहा था, 'मत जाना....मत जाना'।

किन्तु मैं जगजीत की ही यातनाओं का रहस्य ढूँढ़ने जा रहा था। उसी रहस्य को उकेरने के लिए मुझे अघोरियों से मिलना था। शिवानंद जी ने उनका जो भयानक वर्णन किया था, उससे तो मेरा कौतूहल और बढ़ गया था।

इलाहाबाद होकर जाते हावड़ा मेल में, वी. आई. पी. कोटे में, अपने लिए मैंने एक बर्थ रिजर्व करा ली थी। ठीक नौ बजकर पंद्रह मिनट पर मेल ने सी. एस. टी. स्टेशन छोड़ दिया।

अकेले सफ़र करते समय मुझे ट्रेन में सो जाने की आदत नहीं है। सामान के नाम पर मेरे पास एक छोटे बैग में कपड़े थे। एक और बैग में कैमरा, मूवीकैमरा और टेप-रिकार्डर थे। ट्रेन ने दादर स्टेशन छोड़ा नहीं कि यात्रियों ने सोने की तैयारियाँ शुरू कर दीं। सिर के नीचे बैग रखकर मैं एक पुस्तक पढ़ने लगा। कंडक्टर जब तक सबके टिकट चेक नहीं कर लेता, तब तक रोशनी बुझाएगा नहीं, मैं जानता था। मैं समय का सदुपयोग कर लेना चाहता था। अघोरियों से मिलने से पहले मैं उनके वाममार्ग पर उपलब्ध साहित्य देख लेने का इच्छुक था। जो पुस्तक मैंने खोली थी, उसका विषय यही था।

दोपहर के सवा दो बजे, जबलपुर के प्लेटफार्म पर ट्रेन ने प्रवेश किया। भीड़ में भी स्वामी शिवानन्द को पहचानना मुश्किल नहीं था। मैंने खिड़की से उनकी ओर हाथ हिलाया। उन्होंने देख लिया और लपके।

सामान के साथ मैं नीचे उतरा।

मैं और शिवानन्द जी, थोड़ी देर तक एक-दूसरे के हाथ पकड़ कर, स्नेह की ऊष्मा अनुभव करते खड़े रहे।

स्वामी शिवानंद के कई मित्र जबलपुर में भी थे। उन्हीं में से एक के यहाँ वह मुझे ले गए। वहाँ हम नहा-धो कर, भोजन कर, तरो-ताजा हो गए।

मैंने शिवानंद जी से पूछा, "अब आगे का कार्यक्रम ?"

"यहाँ से एक सौ अस्सी किलोमीटर के फासले पर कान्हा-किसली नेशनल पार्क है। उसी की दिशा में कहीं साधना-स्थली रखी गई है। हमें जीप किराए पर लेनी होगी।

करीब सौ किलोमीटर दूर मण्डला नामक नगर है। वहाँ बाबा भैरवनाथ का एक साथी हमसे मिलेगा। मैं वहीं उतर जाऊँगा। आपको किसी अघोरी के साथ आगे जाना होगा। शायद भैरवनाथ जी का वही साथी आपको ले जाएगा। साधना-स्थली का निश्चित पता मुझे बताया नहीं गया है। शायद आपको भी नहीं बताया जाएगा। यहाँ से दक्षिण-पूर्व में घिण्डोरी, अमरकंटक, बिलासपुर, भिलाई और बालाघाट के बीच एक जबर्दस्त जंगल फैला हुआ है। कान्हा-किसली इसी क्षेत्र में है। यह एक आरक्षित नेशनल पार्क है। उसी तरफ कहीं, जंगल की किसी दुर्गम गहराई में, गुप्त साधना-शिविर रखा गया होगा। मेरा अनुमान यही है।"

मैं कुछ सोच में पड़ गया।

शिवानंद जी बोले, "अनजाने स्थान में, अजनबी और भयानक अघोरियों के बीच.. .मैंने आपको पत्र में भी सावधान किया था। एक बार फिर वही निवेदन कर रहा हूँ—मत जाइए। हम यहीं से लौट सकते हैं।"

"शिवानंदजी ! अब तो लौटने का प्रश्न ही नहीं है।" मैंने दृढ़ता से कहा।

"आप इन अघोरियों से मिलने के लिए इतने उत्सुक क्यों हैं ?" स्वामी शिवानंद के स्वर में बौखलाहट थी।

मैंने कहा, "स्वामी जी ! आत्मा, प्रेतात्मा और दैवी शक्तियों के नाम पर जो धोखाधड़ी समाज में चलती है, उसे मैं और आप हमेशा चुनौती देते रहे हैं। क्या आपको लगता नहीं कि हमारी चुनौती केवल शाब्दिक है ? ठोस चुनौती देने की मेरी अभिलाषा अभी तक पूरी नहीं हो सकी। इसके अलावा, जगजीत का पूरा किस्सा आपकी जानकारी में है। आखिर क्यों जगजीत को उतनी अधिक पीड़ा झेलनी पड़ी ? इस प्रश्न का सुनिश्चित, वैज्ञानिक उत्तर मैं पाना चाहता हूँ। अघोरियों की अद्‌भुत मानसिक शक्तियों की थाह लिए बिना मुझे चैन नहीं है। केवल शाब्दिक चुनौतियों और अमल में न आने वाले विचारों का अर्थ ही क्या है ?

"लेकिन खून के प्यासे, भयानक अघोरियों के बीच जाकर उनकी शक्तियों को चुनौती देने का परिणाम क्या होगा ?" शिवानंद जी ने पूछा।

"शुभ !" मैंने संक्षिप्त उत्तर दिया।

"व्यर्थ ही जोखिम उठा रहे हैं।"

"लौट कर जाना मेरे लिए अब किसी सूरत में सम्भव नहीं।" मैंने कहा। मेरे स्वर में मजबूती की कमी नहीं थी।

तीन

पहाड़ के उस पार



जीप किराए पर लेकर, शाम के लगभग साढ़े पाँच बजे, हमने जबलपुर छोड़ दिया। रास्ते में मैंने शिवानंद जी के साथ जुदा-जुदा विषयों पर चर्चा की । वह मेरी चिंता में डूबे हुए थे, बार-बार अकुला जाते। मैंने बड़ी मुश्किल से उन्हें आश्वस्त किया।

दसेक बजे हम मंडला पहुँच गए। एक होटल के पास जीप रोक कर हमने चाय पी। जीप को वहीं छोड़कर हम गलियों में घुसे। शिवानंद जी मंडला के रास्तों से कितने सुपरिचित थे, यह फौरन जाहिर हो गया।

लगभग चालीस की उम्र, गोरा बदन, कंधे तक लटकते काले चमकीले बाल, सुघड़ता से तराशी हुई दाढ़ी, ग्रीक मूर्ति जैसा शरीर-सौष्ठव, मृदु स्वर, ताबड़तोड़ मित्र बन जाने की अद्भुत क्षमता, दृढ़ आत्म-विश्वास—इनका योग यानी स्वामी शिवानन्द। मंडला की अंधेरी गलियों में वह तेजी से चल रहे थे। उनके चपल, छरहरे शरीर को देखकर मैंने अपने गणेशनुमा व्यक्तित्व पर झेंप महसूस की।

एक संकरी गली में घुसते ही कुत्ते भौंकने लगे। स्वामी शिवानन्द ने एक दरवाजे के पास पहुँच कर सांकल खड़काई। कुछ देर बाद एक अधेड़ स्त्री ने दरवाजा खोला।

नमस्कार करती हुई वह इस तरह पीछे हटी, जैसे शिवानन्द जी को पहचानती हो। मैंने अनुमान लगाया, वह किसी ब्राह्मण का घर था। आँगन में तुलसी। चारों ओर सादगी, स्वच्छता।

एक वृद्ध ब्राह्मण जो केवल धोती पहने हुए था, लपक कर बाहर आया। दोनों हाथों से वह अपने जनेऊ को ऐसे घुमा रहा था, मानो जनेऊ से पीठ रगड़ रहा हो। उसने उत्साह के साथ स्वामी शिवानंद का स्वागत किया। शिवानंद जी ने मेरा परिचय उसे दिया। मैंने अभिवादन किया। मेरा नाम सुनकर ब्राह्मण की आँखें ऐसे चमक उठीं, जैसे मेरे बारे में उसे पहले से पता था।

लाल आँखों और रुद्राक्ष की माला से विभूषित एक भव्य और निष्ठुर बाबा, जो पूरे बदन पर राख मले हुए था और भयानक लग रहा था, जरा झुकता हुआ दरवाजे से बाहर निकला। उसके एक हाथ में त्रिशूल था और दूसरे में कमण्डल। उसके सिर की जटायें कंधों पर झूल रही थीं। दाढ़ी भी जटाओं की तरह जगह-जगह बटी हुई थी और लम्बी थी। उसके लौह-स्नायुओं की शोभा सचमुच देखने योग्य थी। मुझ पर तिरस्कार की नजर डालता हुआ वह नजदीक आया। किसी तीव्र नशीली गंध से मेरा मस्तिष्क घूम गया। वह कर्कश स्वर में बोला, "मेरे साथ कौन चलने वाला है ?"

शिवानंद जी ने बाबा का अभिनंदन किया। फिर मेरा परिचय दिया। मुझे लगा, जैसे मेरे प्रति उसकी दृष्टि का तिरस्कार और बढ़ गया है। शिवानंद जी ने बाबा का परिचय मुझे देते हुए कहा, "आप ही हैं बाबा अलखआनंद—बाबा भैरवनाथ के साथी। यही आपको अपने साथ साधना-स्थली पर ले जायेंगे।

मैंने अलखआनन्द की ओर देखकर अभिवादन में दुबारा हाथ जोड़े और मुस्कराना चाहा, किन्तु उसने कोई प्रतिक्रिया न दिखाई। इस बार भी उसने कर्कशता के ही साथ कहा, "पहनने के कपड़ों के अलावा आप कुछ भी साथ नहीं रखेंगे। सब सामान आपको यहीं छोड़ जाना होगा। इस बाबत बहस मत करिएगा।"

"कैमरा ? टेप-रिकार्डर ?" मैं बोला।

"कुछ नहीं। टॉर्च भी नहीं। अपनी घड़ी भी यहीं छोड़ दीजिएगा।" अलखआनंद ने दृढ़ता से कहा, "आधे घण्टे में आपको मेरे साथ रवाना हो जाना है। तैयार रहिए।" और वह लम्बे डग भरकर अंदर चला गया।

मैं और स्वामी शिवानंद एक-दूसरे को ताकते खड़े रह गए।

मंडला के उस ब्राह्मण का नाम था प्रेमशंकर। उसने अत्यंत प्रेम से हमें भोजन कराया। इस बीच, उसके पुत्र जीप में से हमारा सारा सामान निकाल कर घर में ला चुके थे।

अलखआनन्द का स्वभाव न केवल रूखा, बल्कि विचित्र भी था। अपने त्रिशूल को वह पल भर के लिए भी अलग नहीं रखता था। हमारे साथ जब वह भोजन करने बैठा, तब भी त्रिशूल को गोद में रखे रहा।

अलखआनन्द ने मुझसे आधे घण्टे में तैयार हो जाने के लिए कहा तो था, किन्तु जो स्टेशन-वैगन बुलवाई गई थी, वही अभी तक नहीं पहुँची थी। अपने दोनों कैमरे और

टेप-रिकार्डर आदि कीमती सामान, शिवानंद जी की सलाह और सिफारिश के अनुसार, मैंने प्रेमशंकर के ही घर में छोड़ जाने का निर्णय कर लिया था। दो जोड़ी कपड़ों के अलावा मैंने अपने साथ कुछ भी नहीं रखा था। यहाँ तक कि दाढ़ी बनाने का सामान, टूथपेस्ट और ब्रश भी अलखआनंद ने मुझे साथ रखने नहीं दिया था। उसके पास तो बस एक ही जवाब था, "सिवा कपड़ों के आप कुछ नहीं ले जा सकते।" उस अघोरी के साथ बहस करने का अर्थ ही क्या था ?

शिवानंद जी और प्रेमशंकर से ज्ञात हुआ कि साधना-शिविर में लगभग सौ अघोरी बाबा भाग लेने वाले थे। कुछ स्त्रियाँ भी थीं। अधिकांश का आगमन साधना-स्थली पर हो चुका था। उनकी जरूरतों का सामान, प्रतिदिन, स्टेशन-वैगन के जरिए पहुँचाया जाता था। कुछ सामान उन्हें आसपास के आदिवासियों से भी मिल जाता था।

"इसके बावजूद वे साधना-स्थली को गुप्त कैसे रख पाए हैं ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"इन अघोरी बाबाओं का आंतक इतना है कि न केवल आम आदमी, बल्कि सरकार के उच्च अधिकारी भी इनके नजदीक नहीं फटकते। इसके अलावा........कुछ प्रतिष्ठित और गहरी जान-पहचान के लोग भी इन्हें साथ दे रहे हैं।" प्रेमशंकर ने कहा। फिर कुछ स्नेह और कुछ ममता से मेरी ओर देखा, "आप क्यों यह जोखिम उठा रहे हैं ?"

"इसके कई कारण हैं।" मैंने कहा, "पहली बात तो यह कि मैं इसमें कोई खास जोखिम महसूस नहीं करता। इसके अलावा.........मेरी कुछ मान्यताएँ हैं। ये-मान्यताएँ सत्य के कितने निकट हैं। इसकी जाँच मुझे करनी है। साक्षात् भेंट के बिना यह असंभव है।

"मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करेंगे ?"

"क्या ?"

प्रेमशंकर ने उठकर दीवार में बना एक आला खोला और एक डिबिया-सी बाहर निकाली, जिसे खोलते ही फीके नीले रंग के स्फटिक का बना एक शिवलिंग चमक उठा। उसे मुझे थमाते हुए प्रेमशंकर ने कहा, "इसे हमेशा साथ रखिएगा। यह आपकी रक्षा करेगा।"

मैंने मुस्करा कर शिवलिंग उसे वापस सौंप दिया, आपकी शुभ-कामनाओं का मैं पूरा आदर करता हूँ, किन्तु इसे मैं साथ नहीं ले जा सकूँगा। मैं 'कल्पना-योग' का साधक हूँ। स्वयं को मैं आत्मबल और आत्म-सम्मान से ओतप्रोत पाता हूँ। वहाँ मैं अपने आत्म-बल की शक्ति से ही जा रहा हूँ। यही शक्ति मेरी रक्षा करेगी। यदि मैं अपनी रक्षा के लिए शिवलिंग साथ ले गया, तो वहाँ जाना न जाना बराबर हो जाएगा।

वह स्नेहशील वृद्ध ब्राह्मण मेरी ओर ताकता रह गया।

शिवानंद जी ने उसके कंधे पर हाथ रख कर कहा, "बुरा न मानिएगा। सुरेश जी ने सत्य कहा है। यह कसौटी केवल श्रद्धा की नहीं है। यह स्वाभिमान और मनोबल की भी कसौटी है।"

तभी अलखआनंद ने प्रवेश किया, "चलिए ! अपना वैगन आ गया।"

मैं, शिवानंद जी और प्रेमशंकर बाहर निकले। मेरे हाथ में वह थैला था, जिसमें मैंने अपने कपड़े रखे थे। शिवानंद जी ने स्नेह से मेरा हाथ दबाया। मैंने कहा, "थोड़े ही दिनों में हम यहीं दुबारा मिलने वाले हैं।"

"अवश्य।" वह मुस्कराए।

स्टेशन-वैगन का पिछला हिस्सा बोरियों और डिब्बों से लदा हुआ था। शिवानंद जी और मैंने सामान इधर-उधर करके जगह बनाई। जो संकरी जगह निकली, उसमें किसी तरह टाँगें मोड़ कर मैं धँस गया। अलखआनंद आगे बैठ चुका था, ड्राइवर के साथ। प्रेमशंकर और शिवानंद जी से विदा लेकर मैंने अपनी तरफ का दरवाजा बंद कर लिया।

रास्ते भर अलखआनंद चरस की चिलम फूँकता रहा। उसकी तीव्र गंध मुझे चैन लेने नहीं दे रही थी। बोरियत इतनी थी कि ऐसी हालत में कुल कितना वक्त गुजर गया इसका भी अंदाजा न लगा। सहसा महसूस किया, स्टेशन-वैगन खड़ी हो गई है। बिना हिले-डुले मैं पड़ा रहा।

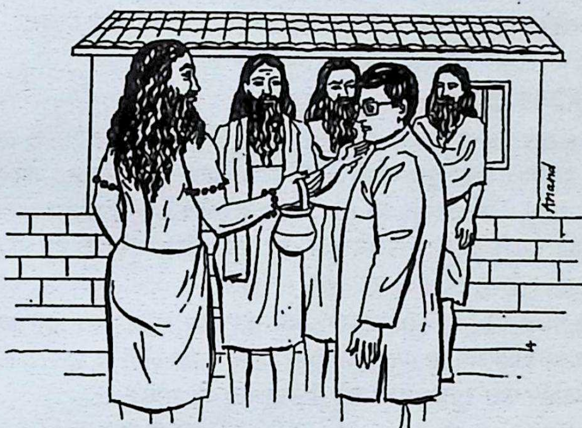
अचानक दरवाजा खुला। अलखआनंद सामने आ खड़ा हुआ। एक थरमस में से उसने प्याले में कोई पेय निकाला और मुझे देते हुए कहा, "इसे पी लीजिए, दूध है।"

बिना कोई बहस किए मैं उस तरल को गटगट करता पी गया। फिर पता ही न चला, क्या हुआ। जैसे पूरी दुनिया ही गयाब हो गई। न जाने कितनी देर बाद...... अलखआनंद मुझे जोरों से हचमचा रहा था। मैंने हड़बड़ा कर आँखें खोलीं। स्टेशन-वैगन रुकी हुई थी। आदिवासियों जैसे नजर आते दसेक स्त्री-पुरुष सामने खड़े थे। चारों ओर धीमी रोशनी थी। मैंने नजर घुमाई। जिधर से स्टेशन-वैगन आई थी, उधर की घास कुचली हुई थी। हर तरफ ऊँचे-ऊँचे वृक्ष दिखाई दिये। वे कौन से वृक्ष थे, मैं न पहचान सका। दूसरी तरफ एक ऊँचा-सा पहाड़ दिखाई दिया।

"पहाड़ पर चढ़ कर उस पार उतरना होगा।" अलखआनंद बोला। मैंने गहरी साँस ली। अलखआनंद ने मेरी तरफ तिरस्कार से देखना जारी रखा। 'पहाड़ तो किसी प्रकार चढ़ जाऊँगा, किन्तु इस अघोरी के मन का तिरस्कार कभी दूर कर सकूँगा या नहीं पता नहीं।' सोचे बिना न रह सका।

चार

शिविर में पहुँचते ही



मेरे प्रति न जाने कौन-सा पूर्वाग्रह पैदा हो चुका था, बाबा अलखआनंद के मन में। उसे दूर करना बहुत जरूरी था। जिन अघोरियों के शिविर में मैं जा रहा था, उन्हीं अघोरियों में से एक मुझे लगातार नापसंद करता रहे, यह बात मेरे पक्ष में नहीं थी। मैंने प्रशंसा का हथियार इस्तेमाल करने का फैसला किया। बाबा अलखआनंद के गठीले शरीर को भरपूर नजर से देखते हुए मैंने कहा, "कितना सुन्दर और कसा हुआ शरीर है आपका ! काश, मुझे भी ऐसा ही शरीर मिला होता।"

"मुलायम गद्दों पर बैठ कर सिर्फ सोच-विचार करने से शरीर सुन्दर और मजबूत नहीं हो जाता, महाशय ! अघोरी बन कर साधना करिए। शक्ति प्राप्त होगी।" अलखआनंद गर्व से बोला।

'ठीक है !' मैंने अपने-आप से कहा, "इस बाबा को अपने अघोरी होने का अभिमान है। इसकी कमजोर नस प्रथम प्रयास में ही पकड़ में आ गई। अब इसे पसीजना ही होगा।"

पहाड़ पर चढ़ना शुरू करने से पहले नित्य कर्मों से निबटना आवश्यक था। अलखआनंद ने रात को जो पेय पिला दिया था। उसके कारण मेरा सिर बहुत भारी था।

"कहीं से अगर चाय मिल जाती, तो......." मैंने अलखआनंद की ओर देखकर कहा। वह कुछ भी बोले बिना, स्टेशन-वैगन की अगली सीट की तरफ गया और एक थरमस लेकर लौटा।

मैंने पूछा, "रात वाला पेय तो नहीं है न ?"

"नहीं ! यह अलग है। यह चाय है।" उसके स्वर की कर्कशता में कुछ कमी आई थी। मुझे राहत मिली। भयानक जंगल के बीच भी चाय मिल जाने से मजा आ गया। डेढ़ कप चाय पीने के बाद सिर का भारीपन कम होने लगा।

स्टेशन-वैगन का सामान उन आदिवासियों ने उठा लिया था। वे दसेक आदिवासी आगे-आगे चले। उनके पीछे अलखआनंद और सबसे पीछे मैं। चलते-चलते मैंने स्टेशन-बैगन का नम्बर देखने का प्रयास किया।

स्टेशन-वैगन की नम्बर-प्लेट ही गायब थी।

क्षितिज छोर पर सूर्य जरा ऊपर उठ आया था। मार्ग बहुत विकट था। भरी हुई साँस संयत करने के लिए मुझे थोड़ी-थोड़ी देर में रुक जाना पड़ता। आदिवासी बहुत आगे निकल गए। अलखआनंद को मेरे कारण बार-बार रुकना पड़ता था, जिससे वह चिढ़ रहा था। टेकने के लिए उसने मुझे एक बड़ी सी लकड़ी दे दी थी। पहाड़ की चढ़ाई में इससे कुछ सुगमता हो रही थी।

करीब दो घण्टों की चढ़ाई के बाद हम चोटी पर पहुँच गए। वहाँ बहुत वृक्ष थे। वृक्षों के बीच थोड़ा चलने के बाद एक खुली जगह आई, जहाँ से अलखआनन्द ने मुझे तलहटी दिखाई। उस सुन्दर दृश्य को मैं निहारता रह गया।

तलहटी में, पहाड़ से एकदम जुड़ा हुआ, रोमन लिपि के 'यू' के आकार का एक मकान दिखाई दिया। उसके खपरैल थे तो लाल, किन्तु काले पड़ चुके थे। कालिमा पर काई भी जम गई थी। इससे, आसपास की हरियाली के साथ उस मकान की छत बड़ी सुन्दरता से घुल-मिल गई थी। 'यू' आकार के बीच के चौगान में, उतनी ऊँचाई से भी, लोगों की चहल-पहल नजर आ रही थी। उनमें से कुछ व्यक्तियों ने भगवे कपड़े पहन रखे थे। वे कपड़े ऐसे लग रहे थे, जैसे पलाश खिले हुए हों। कुछ क्षणों तक मैं मंत्रमुग्ध होकर उस दृश्य का आनन्द लेता रहा।

"चलिए ! हमें वहीं पहुँचना है।"

पहाड़ की उतराई उतनी आसान नहीं थी, जितनी सोची थी। उतराई के रास्ते में पत्थर से ज्यादा मिट्टी थी, जो बरसात के कारण कीचड़ में बदल गई थी।

"क्या इस जंगल में हिंशक पशु हैं ?" मैंने पूछा।

"बहुत हैं। शेर तो अक्सर दीखता है, किंतु शेर से ज्यादा खतरनाक हैं यहाँ के भैंसे।"

"भैंसे ?"

"अंग्रेजी में 'बायसन' कहते हैं।"

भाले की तरह नुकीले और विशाल सींगों वाले, कद्दावर जंगली भैंसों की तस्वीर मेरे मानस में उभर आई। वृक्षों पर बंदर छलाँगें लगा रहे थे। दूर चर रही हिरन की टोली में से कुछ हिरन बार-बार गर्दन मोड़कर हमारी ओर देखने लगे।

"वह देखिए। उसे काड़ियार कहते हैं।" आलखआनन्द ने दूर खड़े एक प्राणी की ओर उंगली से संकेत किया। वह हिरन जैसा ही था, किन्तु अधिक ऊँचा और काला। मुझे काड़ियार दिखाई पड़ने की उतनी खुशी नहीं थी, जितनी इस बात की कि अलखआनन्द का रुख मेरे प्रति बदल रहा था।

हम ठेठ तलहटी में उतर आए थे। ऊपर से जो मकान हमने देखा था, वह अब ज्यादा फासले पर नहीं था। थरथराहट जैसी एक विचित्र अनुभूति मुझे दबोचने लगी।

यहाँ अघोरियों का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है।

कहा जाता है कि वाममार्ग उर्फ अघोर पंथ की स्थापना आज से चारेक हजार वर्ष पहले हुई थी। जीवन की क्षणभंगुरता देखकर कुछ तत्वज्ञानी, विलासिता से विपरीत जाकर, त्याग की महिमा गाने लगे। कुछ विचारक इनसे ठीक उल्टे भी चले। उन्होंने भोग को प्रधानता दी। उन्होंने कहा कि मनुष्य का जन्म ही इसलिए हुआ है कि वह स्वर्ग समान इस पृथ्वी को पूर्णतया भोगे।

वैदिक युग के यज्ञ आदि क्रियाकांडों में से ही इन विचारों का जन्म हुआ था। त्याग का विचार अधिक लोकप्रिय हुआ। भोग का विचार उससे विपरीत यानी वाम चला। इसीलिए अघोर पंथ वाममार्ग कहलाने लगा। अघोरियों के अलावा कापालिकों, तांत्रिकों और मांत्रिकों को भी वाममार्ग में शामिल माना गया।

इन वाममार्गियों में, किसी-न-किसी रूप में, पाँच प्रकार के 'म'-कारों का महत्त्व हमेशा दिखाई पड़ा है—माँस, मदिरा, मंत्र, मैथुन और मृत्यु। माँस और मदिरा के प्रति इनकी आशक्ति किसी से छिपी नहीं। माँसाहार और मदिरापान को ये अपना धर्म समझते हैं। गाँजा, भाँग, चरस आदि नशे भी इनके धर्म के अंग हैं। अपने मंत्रों की शक्ति पर वाममार्गियों को अद्भुत विश्वास होता है।

मैथुन को ये जीवन का प्रतीक मानते हैं। इनके अनुसार, मानव जीवन का प्रारम्भ जन्म से नहीं, बल्कि मैथुन से होता है। इनका तंत्र-शास्त्र मैथुन के नाना प्रकारों की सिफारिशों से भरा पड़ा है। इनकी दृढ़ मान्यता है कि मैथुन से शक्ति प्राप्त होती है। नारी को ये प्रकृति-स्वरूप मानते हैं, जिसे पुरुष द्वारा यथाशक्ति एवं यथेष्ठ भोगा जाना चाहिए।

अघोरियों के अनुसार, शिवलिंग पुरुष और प्रकृति के संभोग का प्रतीक है। कहते हैं कि जिस शिव-मन्दिर पर मिथुन-मूर्तियाँ नहीं होतीं, उसे ये अघोरी अपने आक्रमण से मिट्टी में मिला दिया करते थे। अघोरियों की कोई साधना माँस, मदिरा, मंत्र, मैथुन और

मृत्यु के बिना पूरी नहीं होती। पशुबलि या नरबलि को मृत्यु के प्रतीक के ही रूप में स्वीकारा गया है। नरबलि से भी इन्हें हिचक इसलिए नहीं होती कि ये अपने पंथ से बाहर के किसी भी मनुष्य का कोई मूल्य ही नहीं स्वीकार करते । मृत्यु के प्रति अघोरी इतने सहज हैं कि मानव खोपड़ी को ये पात्र की तरह इस्तेमाल करते हैं। ये खोपड़ी में ही खाते, खोपड़ी में ही पीते हैं।

हम दोनों उस मकान के निकट आ पहुँचे। पत्थर से बना वह मकान सचमुच मजबूत था। कुएँ पर कुछ युवा अघोरियों को मैंने पानी खींचते देखा। वे भगवे वस्त्र पहने हुए सामान्य साधुओं जैसे ही लग रहे थे। उनमें से पाँचेक अघोरी हमारी अगवानी के लिए बढ़े। उन्होंने अलखआनन्द का अभिवादन करके, मेरी ओर देखते हुए पूछा, "क्या यही हैं आपके अतिथि ?"

"हाँ !" अलखआनन्द हँसा। एक युवा अघोरी ने मुझे व्यंग्य से निहारते हुए कहा, "चलेगा।" बलिदान के लिए अब भैंसा मँगवाने की जरूरत नहीं।"

सब अघोरी अट्टहास करने लगे। उनके ऐसे व्यवहार से मेरा दिल धक से होकर रह गया। ऐसे स्वागत की मैंने सपने में भी आशा नहीं रखी थी। सब कुछ चुपचाप सुनने के सिवा चारा भी क्या था ? मेरी चुप्पी से, अंततः वे शांत होने लगे। तब मैंने कहा, "देखिए, मैं आपका मित्र हूँ। मैं आपको देखने, आपसे मिलने, आपको समझने और आपकी शक्तियों को पहचानने के लिए आया हूँ।"

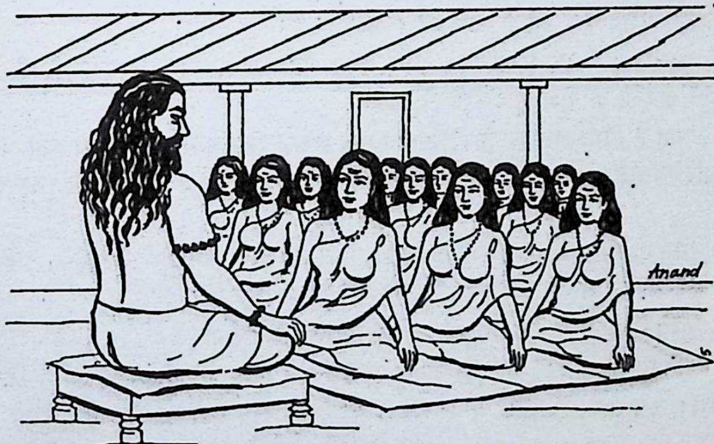
"मित्र ! बहुत खूब !" एक युवा अघोरी बोल पड़ा, "तुझे हमारी शक्तियाँ देखनी हैं ? ठीक है। दिखा तेरा हाथ !" उसने हुक्म दिया। मैंने अपना दाहिना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया, जिसे थाम कर वह मेरी आँखों में घूरने लगा। उसकी तेजस्वी नजर में एक विचित्र घातक प्रभाव था।

"हथेली इस दीवार पर रख !" उसने दुबारा हुक्म दिया। मैंने यंत्रवत् अपनी हथेली दीवार पर रख दी।

"ले, यह चिपक गई।" अघोरी बोला। मैं चौंक पड़ा। सचमुच मेरी हथेली दीवार पर चिपक गई थी। उसे उठाने का मैंने बहुतेरा प्रयास किया, लेकिन बेकार। कंधे के पास से मानो पूरा हाथ ही गायब था। एक ठण्डा सन्नाटा मेरे पूरे शरीर में दौड़ गया।

पाँच

देवताओं की स्थापना



अघोरी खिलखिलाए जा रहे थे। उनके मजाक भी जारी थे। मुझे न खिलखिलाहटें सुनाई पड़ रही थीं, न कोई शब्द। मेरा मजाक उड़ाने के लिए नए-नए अघोरी आकर उस टोली में शाभिल होते गए।

दीवार के साथ मेरी हथेली ज्यों-की-त्यों चिपकी हुई थी। मेरा मन, मेरा तन, मेरा मस्तिष्क, मेरे सभी कुछ ने जैसे काम करना बंद कर दिया था! मस्तिष्क और हाथ के बीच सम्बन्ध ही टूट गया था। मेरे शरीर का पूरा आज्ञाचक्र ही कुंठित हो गया था।

"निर्मलआनन्द ! अतिथि के साथ ऐसा व्यवहार अच्छा नहीं। छोड़ दीजिए उन्हें।" मैंने अपनी पीठ की तरफ से एक प्रभावशाली स्वर सुना।

ज़िसे निर्मलआनन्द कहकर संबोधित किया गया था, वह जरा खिसिया कर मेरी ओर देखता रहा।

उस प्रभावशाली स्वर का स्वामी ज्यों ही सामने आया, मैंने उसे पहचान लिया। साढ़े छः फीट का कद। इसी अनुपात में चौड़ा सीना। चेहरे पर माता के इतने गहरे दाग कि घनी दाढ़ी के भी आरपार नजर आ जायें। काली दाढ़ी छाती तक लहराती

हुई। वेधक आँखें। स्वामी शिवानन्द ने अपने पत्र में जिन बाबा भैरवनाथ का वर्णन किया था, वही मेरे सामने खड़े थे। उन्होंने मेरे निकट आते हुए कहा, "क्षमा कीजिएगा। इस युवक को मसखरी करने की बहुत आदत है।"

और उन्होंने अपना हाथ उठाकर, मेरी चिपकी हुई हथेली को, हौले से छू दिया। छूने मात्र से मेरे हाथ की चेतना लौटने लगी। रगों में खून फिर दौड़ पड़ा। एक अजीब-सी तसल्ली महसूस हुई कि मेरा दाहिना हाथ अभी भी सही-सलामत था। मैंने हथेली को दीवार पर से हौले से उठा लिया। किसी सोए हुए अवयव में जब खून दौड़ता है, तब जो झनझनाहट महसूस होती है, वैसी ही झनझनाहट पूरे दाहिने हाथ में जोरों से होने लगी। मैंने फौरन उसे बायें हाथ से थाम लिया।

कुछ देर बाद ही मैं भैरवनाथ जी को नमस्कार कर सका। उन्होंने आशीर्वाद दिए। मैंने कहा, "शिवानन्द जी ने आप को स्नेह भेजा है।"

"धन्यवाद !" वह मुस्कराए। उनके प्रचंड चेहरे पर वह मुस्कान ऐसी ही थी, जैसे डरावने बादलों के बीच सुन्दर-सी बिजली।

"यह हैं निर्मलआनन्द जी।" उन्होंने मेरी हथेली चिपका देने वाले उस युवा अघोरी का परिचय देते हुए कहा, "बहुत मेधावी हैं। हमारे परात्पर जी इन पर अपार स्नेह रखते हैं।"

निर्मलआनन्द जरा अकड़ कर मुझे ताक रहा था। मैंने हँस कर कहा, "इनकी मेधा का परिचय तो मिल गया। स्नेह का परिचय शेष है।"

भैरवनाथ जी ने मेरा परिचय अन्य अघोरियों से कराया।

"निकुम्भआनन्द।" कुएँ की जगत् पर बैठे एक युवक को भैरवनाथ जी ने जोर से पुकारा। अब तक का सारा तमाशा उस युवक ने उसी दूरी पर बैठ कर देखा था। दौड़कर वह नजदीक आने लगा। गोरा, हँसमुख चेहरा। कंधों तक पहुँचते काले बाल। छोटी-सी दाढ़ी। उसके होंठों पर जो मुस्कान थी, वह अत्यन्त स्वाभाविक और मधुर लगी। कमर से घुटनों तक उसने भगवे रंग का केवल एक वस्त्र लपेट रखा था। मेरे फोटोग्राफर मस्तिष्क ने उसके कसे और सधे हुए शरीर का मूल्यांकन तुरन्त कर लिया।

"जी.........." कहता हुआ वह सामने आ खड़ा हुआ।

भैरवनाथ जी मेरी ओर घूमते हुए बोले, "आज से यह आपके साथ रहेगा। आप जो भी समझना चाहेंगे, यह समझाएगा।"

मैं मन-ही-मन प्रसन्न हो गया। निकुम्भआनन्द इतना सरल व्यक्ति लग रहा था कि साथी के रूप में उसे पाकर मैंने बड़ी राहत अनुभव की। थोड़ी ही देर पहले मेरा जो फजीता हुआ था, उसकी ग्लानि काफी कम हो गई। मैंने उस युवक अघोरी को अपना परिचय दिया, किन्तु मुझे लगा कि ऐसे किसी शिष्टाचार की जरूरत नहीं थी।

मैं उस साधना-शिविर में पाँच दिनों तक रुका था। उस दौरान मैंने यही देखा कि अघोरी आपस में शिष्टाचार का विशेष पालन नहीं करते थे। अपने से बड़ों का सम्मान

वे अवश्य करते थे, किन्तु उस सम्मान को कदम-कदम पर प्रकट करना उनके स्वभाव में नहीं था। उनके लिए तो नेत्रों की मूक भाषा ही अधिक महत्त्व की थी।

दीवार पर मेरी हथेली का चिपक जाना एक चमत्कार ही था। इसमें संदेह नहीं कि चमत्कार मंत्रों द्वारा हो सकते हैं, किन्तु, मेरे मतानुसार, मंत्रों की शक्ति केवल एक मानसिक शक्ति है। वह कोई अलौकिक या आध्यात्मिक शक्ति नहीं है। अब तो ऐसे व्यक्तियों को अजूबा ही नहीं माना जाता, जो किसी निर्जीव वस्तु को दूर से केवल घूर कर हिला देते हैं या धातु की किसी चीज को केवल अपने त्राटक के जरिए मोड़ देते हैं। ये मानसिक शक्ति के ही खेल हैं। इनका प्रदर्शन टेलीविजन जैसे वैज्ञानिक माध्यम से भी होता रहता है, इन्हें नकारा नहीं जा सकता। इनमें कोई हाथ की सफाई नहीं है। ये केवल उस मानसिक शक्ति के चमत्कार हैं, जिन्हें समझना वैज्ञानिकों ने अभी-अभी शुरू किया है। कुछ व्यक्तियों में यह शक्ति जन्मजात होती है, कुछ इसे साधना, मंत्र और आत्म-बल से विकसित कर लेते हैं।

अघोरियों के तन्त्र-शास्त्र में अनेक यंत्रों की रचना है। ये यंत्र रेखा-गणित के विभिन्न आकारों जैसे ही लगते हैं। अपने यन्त्रों और मन्त्रों पर अघोरियों का अटूट विश्वास निराधार भी नहीं कहा जा सकता। बरसों पहले एक ऐसे अघोरी से मेरा साक्षात्कार हुआ था, जो अपने सारे कार्य मंत्र से करता था। मंत्र से ही चिलम सुलगाता, मंत्र से ही अपने खाली खप्पर में मदिरा भर लेता। मंत्र विद्या से मूठ मारना, येतु विद्या से दूसरों के तन-मन पर पूर्ण काबू पा लेना, वशीकरण से चाहे जिस स्त्री को वश में कर लेना—अघोरियों के लिए यह सब सहज, स्वाभाविक ही माना जाता है।

कुछ वाममार्गी शिव के अलावा शक्ति की भी पूजा करते हैं। महाकाली और चामुण्डा की आराधना उनके लिए प्रमुख है।

टोली धीरे-धीरे बिखरने लगी थी। बाबा भैरवनाथ, अलखआनंद और निकुम्भआनंद के साथ मैंने 'यू' आकार के उस मकान में प्रवेश किया।

बीचोंबीच एक विशाल चौगान नजर आया। तीन ओर, ऊँचे बरामदों के पीछे, बीसेक कमरे थे। उस ऊँचे मचान ने इस बार भी मेरा ध्यान आकर्षित किया। चौगान के बीचोंबीच कुछ अघोरी गोल बनाकर बैठे थे और मन्त्र उच्चारित कर रहे थे। इन सभी अघोरियों की उम्र अधिक थी। उनके गोल के बीच में, जरा ऊँचे आसन पर, व्याघ्र चर्म बिछा कर जो दो अघोरी बैठे थे, वे देखने मात्र से भयानक लग रहे थे। उनके सामने कुछ मानव खोपड़ियाँ औंधी रखी थीं। उन खोपड़ियों में लाल रंग का कोई तरल था—शायद रक्त।

दोनों अघोरियों के सामने, चार युवा अघोरी यज्ञ के लिए कुण्ड बना रहे थे। लगभग दो मीटर व्यास के उस कुण्ड की ईंटें ज्यों-ज्यों रखी जा रही थीं, त्यों-त्यों वे दो भयानक अघोरी और भी तेजी से मंत्र पढ़ते जा रहे थे।

उन मंत्रों से सभी दिशाओं के देवताओं का आह्वान करके उनसे वहीं स्थिर रहने की प्रार्थना की जा रही थी। जब वायव्य में ईंट की स्थापना हुई, तब क्ली ओम क्लीं

सिद्धि नमः, रुद्र रुद्र स्थाप्यः' कहने के बाद दोनों अघोरी एक साथ बोले, "स्थाने स्थिरो भवः, ओम ह्रीं ह्रीं।"

इसी प्रकार हर दिशा और कोने में देवताओं की स्थापना की जा रही थी। ईशान में यज्ञ देव की, आग्नेय में सावित्री, सविता, चामुण्डा, कालिका और नैऋत्य में इन्द्रादि देवों की स्थापना की गई। 'स्थाने स्थिरो भवः' के उच्चारण के साथ दोनों अघोरी उन खोपड़ियों में से लाल तरल लेकर, मुड़े हुए पत्ते से, उस दिशा में छींटने लगते। सब अघोरी एक ही स्वर में मंत्र बोलते थे। मंत्रों को वे जिस स्पष्टता और भावुकता से बोल रहे थे, उससे उनकी श्रद्धा ही झलक रही थी। मैं और निकुम्भ वहाँ कुछ देर खड़े रहे। निकुम्भ ने मेरा हाथ धीरे से दबाकर आगे चलने का इशारा किया।

एक बड़े कमरे में लगभग तीस स्त्रियों के सामने बैठकर एक मोटा अघोरी मंत्रोच्चार कर रहा था। उसका स्वर इतना धीमा था कि मंत्र के शब्द पकड़ में न आ सके। सामने बैठी स्त्रियाँ मूर्तियों की तरह स्थिर थीं। अघोरी को वे विस्फारित नेत्रों से देख रही थीं।

आश्चर्य से मैं देखता रह गया। समझते देर न लगी कि वे स्त्रियाँ उस अघोरी के वशीकरण के नीचे थीं। सभी स्त्रियाँ जवान और सुन्दर थीं। सबके बाल कोरे हुए थे और खुले रखे गए थे। सबके मस्तक पर भस्म का बड़ा-सा टीका। कुछ स्त्रियाँ गेहुँये रंग की थीं, तो कुछ काली। मैं अनुमान न लगा सका, वे किन प्रदेशों की थीं, क्योंकि सभी को एक जैसे वस्त्र पहनाए गए थे। चारेक स्त्रियों के चेहरे आदिवासी शैली के लगे, किन्तु सौन्दर्य उनमें भी कम नहीं था। जो युवती सबसे आगे बैठी थी, वह अत्यन्त सौंदर्यवती थी।

अचानक, बिना किसी आदेश के वे सभी स्त्रियाँ, बिल्कुल एक साथ, अपने घुटनों के बल आधी उठ खड़ी हुईं। मानो कोई अदृश्य शक्ति उन्हें कठपुतलियों की तरह उठा रही थी। सभी स्त्रियों ने एक साथ अपने घुटने कुछ फैला दिए। कुछ देर वे इसी मुद्रा में रहीं। फिर वे झुक गईं और हथेलियाँ टिकाकर, झटके दे-देकर अपने सिर हिलाने लगीं।

"चलिए !" निकुम्भआनन्द के स्वर ने मेरी स्तब्धता भंग की। मैंने पूछा, "यहाँ क्या हो रहा है ?"

"बाद में बताऊँगा।"

आगे बढ़ने से पहले मैंने उस कमरे के कोने-कोने को अपनी नजर से छू लेना चाहा। अचानक स्त्रियों के मुँह से 'हू हू हू' का स्वर फूटने लगा। चारों हाथ-पैरों के बल वे आगे-पीछे झूमने लगीं।

छः

वह रक्तपान



निकुम्भआनन्द मुझे उस मकान के आखिरी कमरे की ओर ले गया। दरवाजा ठेलते हुए उसने बताया, "यह आपके रहने के लिए है। स्नानादि से निबट कर आप अपना भोजन भी यहीं पका लें। मैं आपके लिए भोज्य सामग्री की व्यवस्था करता हूँ। शौचादि के लिए आपको जंगल में जाना पड़ेगा। अकेले जाने की सलाह नहीं दूँगा। किसी को साथ लेकर ही जाइएगा। सर्प के अलावा दूसरे भी कई जंगली जीवों का यहाँ खतरा है। शौच के लिए गए हुओं को सियार सताता है, यह न भूलिएगा।"

नम्रतापूर्वक कहे गए इन वाक्यों ने मेरी शौचेच्छा ही समाप्त कर दी। मैंने कहा, "पहले मैं स्नान करना चाहता हूँ।"

मैंने थैले में से वस्त्र निकाले। वह मुझे कुएँ पर ले गया। बाल्टी से पानी खींच-खींच कर उसने मुझ पर डाला। कमरे पर वापस आए, तो उसने पूछा "भोजन के लिए क्या प्रबन्ध करूँ ?"

"क्या मिलेगा ?"

"यहाँ तो सब माँसाहारी हैं। आपके लिए आटे और दाल की व्यवस्था हो सकती है। फल और दूध भी मिल जाएँगे।"

उस वक्त मैं चूल्हा जलाकर भोजन पकाने के लिए बिल्कुल प्रस्तुत नहीं था। मैंने फल और दूध लेने का ही निर्णय किया। निकुम्भ ने दोनों चीजें जल्द ही सामने रख दीं। एक प्याले में वह कोई तरल भी लेकर आया था। मैंने पूछा, "यह क्या है ?"

"सोमरस।" वह हँसा।

"मदिरा ?" मैंने नजर उठाई।

"पीकर देखिए। दिव्य स्फूर्ति अनुभव करेंगे।"

रोम में रोमन बनकर रहना ही उचित है, यह मैं सोच कर आया था। माँसाहार का साहस तो नहीं था, किन्तु अघोरियों का सोमरस पीने का फैसला तो कर ही लिया। उस प्याले को मैंने होंठों की ओर बढ़ाया। शरबत जैसी सुगंध उठ रही थी। रंग केसर डले दूध जैसा। स्वाद में भाँग जैसी तीव्रता थी। गले से उतरते ही पूरे बदन में झनझनाहट हुई। साँस रोक कर मैंने प्याला खाली कर दिया। सचमुच थकान का नामोनिशान भी न रहा केवल स्फूर्ति।

जब मैंने फलाहार करके दूध पी लिया, तब निकुम्भ ने कहा, "अब जरा आराम कर लें। चारेक बजे भैरवनाथ जी आपको परात्पर श्री लकुलेश जी से मिलाने ले जायेंगे।"

मुझे भी आराम की सख्त जरूरत थी। जमीन पर फैलकर मैंने हाथ का ही तकिया बना लिया। चित्र-विचित्र, असम्बद्ध विचारों और सपनों से लदी हुई नींद थी वह।

कितना समय बीत गया, पता न चला। नगाड़े की निरंतर ढम्म-ढम्म आवाज से और किसी पशु की दर्दनाक चीखों से मैं जाग गया। दरवाजे से निकलकर मैं बरामदे में खड़ा हो गया।

वेदी बन चुकी थी। उसे घेर कर अघोरियों की एक बड़ी टोली चौगान के बीचोंबीच खड़ी थी। कोने में रखे एक जबर्दस्त नगाड़े को एक अघोरी हुमच-हुमच कर बजा रहा था।

टोली के बीच में, वेदी के बिल्कुल नजदीक, एक भैंसा चीखता हुआ खड़ा था। उसके पैर ऐसे कस कर बाँधे गए थे कि वह हिल भी नहीं सकता था। प्राचीन काल में ग्रीकों द्वारा जैसी वजनदार तलवार इस्तेमाल होती थी, वैसी तलवार एक प्रचण्ड अघोरी ने भैंसे की गर्दन पर धरी हुई थी। छः-सात अघोरी भैंसे के शरीर में चारों तरफ से बार-बार नुकीले त्रिशूल भौंक रहे थे। त्रिशूलों ने जहाँ-जहाँ छिद्र कर दिए थे, वहाँ से भैंसे के रक्त की धाराएँ बह रही थीं। विशालकाय भैंसे के चीत्कारों से वातावरण भयानक हो उठा था। प्रखर धूप में जो परछाइयाँ बन रही थीं, उन पर से मैं समझ गया कि दोपहर अभी-अभी झुकी है। इस हिसाब से मैं मुश्किल से एक घण्टा ही सो पाया होऊँगा।

कुछ अघोरी बरामदे में बैठे थे। चिलम फूँक रहे एक वृद्ध अघोरी और मेरे बीच विशेष फासला नहीं था। जो कुछ हो रहा था, उसे वह नितांत निर्लिप्त भाव से देख रहा था। उसके नजदीक सरकते हुए मैंने पूछा, "ये लोग क्या कर रहे हैं ?"

उसने लहू जैसी लाल आँखों से मेरी तरफ देखते हुए कहा, "वेदी बन जाने के बाद आज का यह पहला बलिदान होगा।" जरा रुक कर उसने मानो शिकायत करनी चाही, "लकुलेश ने सारे अनाड़ी यहीं जमकर रखे हैं।"

परात्पर लकुलेश जी के प्रति यहाँ के कुछ अघोरियों के मन में असंतोष की भावना है, यह समझते मुझे देर न लगी। मैं चौगान के मध्य की ओर जाकर अघोरियों के बीच खड़ा हो गया।

अब मैं वेदी को स्पष्ट देख सकता था। वेदी में बड़े-बड़े लक्कड़ सजाए गए थे। अभी अग्नि प्रज्वलित नहीं हुई थी। वेदी के एक तरफ छः अघोरी बैठे मंत्रोच्चार कर रहे थे। एक रौबीला अघोरी ऊँचे आसन पर बैठा था। उसके सिर और दाढ़ी का एक-एक बाल सफेद था। मस्तक भव्य था। बैठी मुद्रा में होने के बावजूद उसके संपूर्ण शरीर की भव्यता उजागर हुई जा रही थी। उसके कंधे सचमुच चौड़े थे। उसके पीछे की तरफ, जमीन में, एक ऊँचा त्रिशूल गड़ा हुआ था। उसकी खुली आँखें ऐसे स्थिर थीं, जैसे कुछ न देख रही हों।

अघोरियों के मंत्रोच्चारों में 'वैश्वानर' शब्द बार-बार स्पष्ट सुनाई पड़ता था। वे अग्निदेव का आह्वान कर रहे थे।

नगाड़े की लय तेज होने के साथ भैंसे के आर्त्तनाद में भी तेजी आती जा रही थी। वह आर्त्तनाद अब इतना करुण हो गया था कि सहना मुश्किल था। मंत्रोच्चारों की लय में भी तेजी आ गई थी। न केवल उच्चारण जल्दी-जल्दी हो रहा था, बल्कि अघोरियों का स्वर भी ऊँचा हो गया था।

सहसा वातावरण गर्म होने लगा। मैंने आश्चर्य से चारों ओर देखा। वातावरण को गर्म कर देने वाला कोई भौतिक कारण आसपास कहीं नहीं था। वेदी में अग्नि की एक चिनगारी भी नहीं थी, किन्तु हवा मानो उबल पड़ने की तैयारी में थी। ऐसा लगा, जैसे सूर्य की किरणें उसी चौगान पर केन्द्रित होने लगी हैं।

मैंने उन किरणों को अपने शरीर पर बाकायदा चुभते महसूस किया। मेरे सिर से पसीने के रेले बह चले। मैंने आसपास खड़े अघोरियों की ओर देखा। वे भी पसीने से नहा रहे थे। सुलगती अंगीठी में से जब गर्म हवा का रेला आकाश की तरफ उठता है, तब उसके आरपार देखने पर सारी चीजें कैसी काँपती नजर आती हैं। उसी तरह मैंने वेदी में से गर्म हवा का रेला निकलते और आकाश में उठते देखा। रेले के पीछे की हर चीज काँप रही थी। गर्म भाप के आरपार दीखते अघोरी ऐसे लगने लगे, हवा में उठकर हिल रहे हों।

मेरी नजर वेदी पर से हट नहीं रही थी। मेरी आँखें जलने लगी थीं। ताप इतना तेज हो गया कि मुझे कुछ पीछे हटना पड़ा। निकुम्भआनन्द मेरे पीछे ही खड़ा था—अवश्य मेरे मार्ग-निर्देशन के लिए। उसने हँस कर कहा, "हटिएगा नहीं। अभी मंत्रों की शक्ति से अग्नि प्रकट होगी। क्या इस अलौकिक दृश्य को आप देखना नहीं चाहते ?"

उत्तेजना से मेरा दिल धड़कने लगा। मैं वेदी की ओर बढ़ा। निकुम्भ भी मेरे साथ-साथ बढ़ा। वेदी और मेरे बीच अब कोई व्यवधान नहीं था। मैं गौर करना चाहता था कि केवल मंत्रोच्चार से अग्नि प्रकट करने के पीछे कोई चालाकी तो नहीं थी ? उस वक्त बिल्कुल ऐसा नहीं लगा, जैसे वेदी में कुछ भी जल रहा हो। मंत्रोच्चार करते अघोरियों और वेदी के बीच पर्याप्त दूरी थी। मुझे पलक झपकने का भी होश नहीं था।

कुछ क्षणों बाद मैंने साफ-साफ देखा कि वेदी के ऊपर, अधर में, एक अग्नि-शिखा तैयार हो गई है। वेदी और अग्नि-शिखा के बीच एकाध मीटर का अंतर था। क्षण-क्षण वह शिखा और स्पष्ट होने लगी। फिर उसने क्रमशः वेदी पर उतरना शुरू किया।

अग्नि के स्वागत में मंत्रोच्चार करते अघोरी एवं परात्पर जी भी उठ खड़े हुए। जो अघोरी इधर-उधर खड़े थे, वे गम्भीरता से नजदीक आ गए। सभी ने अब एक स्वर में मंत्रोच्चार शुरू किया। उन मंत्रों से वैश्वानर के अनेक रूपों का आह्वान हो रहा था। 'व्यान', 'समान' और 'उदान' शब्द स्पष्ट सुने जा सकते थे। संस्कृत शब्दों के अलावा कई विचित्र शब्द भी उन मंत्रों में थे। मैंने आकाश की ओर देखा। सूर्य की एक स्पष्ट किरण घनीभूत होकर वेदी को छूने ही वाली थी। ज्यों ही उसने छूआ, त्यों ही वेदी धू-धू कर जल उठी।

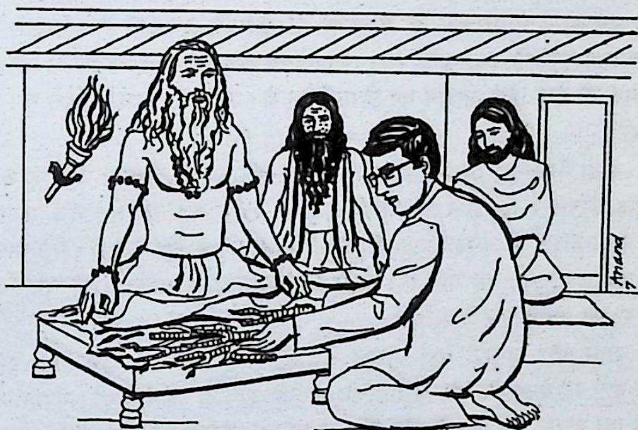
जयघोष से वातावरण गूँजने लगा। जयघोष ऐसा प्रचण्ड था कि भैंसे की भयानक चीखें भी सुनाई न दीं। उसकी गर्दन पर तलवार धर कर जो अघोरी खड़ा था, उसने एक ही झटके में भैंसे की गर्दन उड़ा दी। सिर छिटक कर वेदी में जा गिरा। भैंसे के शरीर में से निकलते गर्म खून को पीने के लिए अघोरियों के बीच आपाधापी मच गई। उस भयानक दृश्य को देखकर मैं थरथर काँपने लगा। निकुम्भआनन्द मुझे हाथ पकड़कर दूर ले गया। मैंने काँपते स्वर में कहा, "यह तो हैवानियत है।"

"देखिए, आप हमारे मेहमान हैं। कृपया ऐसे विधान भविष्य में यहाँ न करिएगा। अभी आपने देखा ही क्या है।"

आँखें बन्द करके मैं कुछ देर बरामदे में बैठा रहा। वह वृद्ध अघोरी, जो अभी तक वहीं नजदीक ही बैठा था, कहने लगा, "देख रहे हो ? कैसे अनाड़ी हैं। बच्चे हैं बच्चे ! व्यर्थ ! सब व्यर्थ ! हम लोग तो एक बूँद भी लहू जमीन पर गिरने नहीं देते थे। सब चूस लेते थे शरीर में से। इन्हें देखो। अनाड़ी छोकरे।"

सात

बेबाक बहस



मैंने उस वृद्ध की ओर गौर से देखा। उसके होंठों पर रक्त पीने की अदम्य लालसा चमक रही थी। निकुम्भआनन्द ने उसका परिचय दिया, "यह हैं बाबा वितथनाथ। आप यकीन नहीं करेंगे, किन्तु यह दो सौ. वर्ष से भी अधिक उम्र के हैं। इन्होंने मृत्युंजय मंत्र सिद्ध किया है।"

मैं उस वृद्ध को आश्चर्य से देखता रह गया।

"पाँचेक मिनट बाद मैं आपको परात्पर श्री लकुलेश जी के सामने ले जाऊँ, ऐसा आदेश है। बाबा भैरवनाथ वहीं मिलेंगे।" निकुम्भआनन्द ने कहा।

छः-सात गिद्ध चौगान के ठीक ऊपर आकाश में चक्कर लगा रहे थे। भूमि पर, उन अघोरियों की रक्तपान की प्यास अभी बुझी नहीं थी। अचानक मेरा सारा बदन टूटने लगा। दो दिनों की थकान जैसे अचानक, एक साथ उभर आई। निराशा के डंक से मैं बुरी तरह तिलमिला गया। निकुम्भआनन्द मुझे मेरे कमरे पर ले गया। मिट्टी के घड़े से पानी लेकर मैंने आँखों पर छीटें मारे।

दस-बारह मिनट बाद मुझे लगा कि अब मैं इतना स्वस्थ हूँ कि परात्पर जी से मिल सकूँ। मैं और निकुम्भआनन्द बरामदे को पार करते हुए मकान के मध्य की तरफ बढ़े। यज्ञ-वेदी के पास अघोरियों का वह भीषण धमाल ज्यों-का-त्यों जारी था। वेदी में अग्नि और भी प्रखरता से भड़क रही थी।

जो बड़ा कमरा परात्पर जी का था, उसके नजदीक हम आ पहुँचे। पास के ही छोटे कमरे में यज्ञ के लिए समिधा भरी हुई थी। समिधा के ढेर में से मैंने थोड़ी लकड़ी ले ली। निकुम्भआनन्द यह देखकर मुस्करा दिया और बोला, "अब आप पूर्णतया स्वस्थ मालूम पड़ते हैं।"

वैदिक युग में शिष्य जब गुरू के पास जाते थे, तब हाथ में समिधा अवश्य रखते थे। वह समिधा विद्यार्थी की प्रदीप्त जिज्ञासा का प्रतीक मानी जाती थी।

हम दोनों ने परात्पर जी के कमरे में प्रवेश किया। वहाँ रोशनी कम थी। कोने में अग्नि जल रही थी, अतः धुआँ था। दरवाजे के ठीक विपरीत, दीवार से जरा फासले पर, परात्पर जी एक ऊँचे आसन पर विराजमान थे। वह व्याघ्र चर्म पर बैठे थे। उनकी आँखें बंद थीं।

बाबा भैरवनाथ परात्पर जी के पास ही बैठे हुए थे। जमीन पर एक बड़ा-सा, मोटा कागज फैलाकर वह उस पर किसी यंत्र की रचना कर रहें थे। यंत्र बहुत ही अटपटा था। रेखागणित के अनेक आकारों के संयोजन उसमें गुँथे हुए थे। मैंने परात्पर जी की ओर दुबारा देखा। वह गोरे थे। दाढ़ी और जटा ऐसी सफेद, जैसे चाँदी की बनी हो। मस्तक पर अनेक गहरी झुर्रियाँ।

तीन और अघोरी वहाँ मौजूद थे। कोने में बैठकर वे कुछ पीस रहे थे। किसी जड़ी-बूटी या वनस्पति की विचित्र गंध उनकी ओर से आ रही थी। भैरवनाथ जी ने मुझे बैठने का इशारा किया। मैं और निकुम्भआनन्द, परात्पर जी के ठीक सामने बैठ गए।

थोड़ी ही देर में परात्पर लकुलेश जी की ओर मैंने एक अगम्य आकर्षण अनुभव किया। मैंने अनुमान लगाया कि वह अपनी प्रबल मानस शक्ति से मेरे मन पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं। पहले तो मैंने सोचा कि इस आकर्षण का प्रतिकार करूँ, किन्तु अगले ही क्षण उंनके साथ तादात्म्य साध लेने की इच्छा ने मुझे अभिभूत कर दिया। मुझे विश्वास था कि उनके स्वामित्व के बावजूद मैं अपने तर्कों को खो नहीं दूँगा। मैंने स्वयं को उनके आकर्षण के अनुकूल बनाना शुरू किया। मैंने आँखें मूँद लीं। अचानक ऐसा लगा, जैसे मेरे आसपास कोई नहीं है। आगे-पीछे, ऊपर-नीचे, हर तरफ घुप्प अंधकार। रोशनी नहीं और आवाज भी नहीं। समय और काल का कोई बंधन नहीं। मेरे लिए यह अनुभव नया नहीं था। कुछ क्षणों बाद, अनन्त अंधकार में से, रेखागणित के चित्र-विचित्र आकार, अघोरियों के यंत्रों का रूप पाकर, मेरे चारों ओर नाचने लगे। वे उलझी हुई रेखाएँ मेरे बहुत नजदीक आ गईं। मानो वे मेरे तन-मन पर शिकंजा कसना चाहती थीं। मैं सावधान हो गया। मैं उन यंत्रों के जाल में फँसने के लिए जरा भी उत्सुक नहीं था। कल्पना-योग से मैंने अपने मनोबल को जगाया। अपनी प्रतिकार शक्ति को मैंने सक्रिय

कर दिया। परात्पर जी का प्रभुत्व टूट गया। तुरन्त मैंने आँखें खोल दीं। तत्काल परात्पर जी ने भी आँखें खोल दीं। क्षण भर हम दोनों एक-दूसरे को ताकते रहे। आगे झुक कर मैंने उनके चरणों के पास समिधा का ढेर लगा दिया।

उन्होंने गम्भीरता से पूछा, "आप यहाँ किस जिज्ञासा से आए हैं ?"

"मैं आपके पास ज्ञान लेने आया हूँ।" मैंने नम्रता से कहा, "साथ-साथ यहाँ मैं अपने ज्ञान की कसौटी भी करना चाहता हूँ। जीवन और अस्तित्व के रहस्य को समझना ही मेरी मूल जिज्ञासा है।"

"स्वामी शिवानन्द तो कह रहे थे कि आपने जीवन और अस्तित्व के रहस्य को समझ लिया है।" उन्होंने जरा आश्चर्य से पूछा।

मैंने कहा, "शिवानन्द जी मेरे मित्र हैं। लगता है, मित्रतावश उन्होंने मेरी कुछ ज्यादा ही प्रशंसा आपके सम्मुख कर दी है। अस्तित्व के रहस्य को मैं अन्तिम सत्य मानता हूँ और................जो अंतिम सत्य होता है, वह हमेशा हमसे दो कदम आगे चलता है।"

"अन्तिम सत्य जैसा कोई सत्य नहीं होता।" वह बोले, "सत्य तो सत्य ही है। अन्तिम रूप में जो प्राप्त होता है, वह सत्य तो सनातन है।"

"लेकिन अन्तिम सत्य सनातन कैसे हो सकता है ?" मैंने कहा, "मुझे तो कोई भी सत्य सनातन नहीं लगता, क्योंकि सत्य हमेशा बदलता रहता है।"

उन्होंने कुछ उलझन में पड़कर पूछा, "कैसे" ?

"हजारों वर्ष पहले पृथ्वी स्थिर कही गई थी और सूर्य-चन्द्र उसकी परिक्रमा करते माने गये थे। यही उस जमाने का अंतिम सत्य था। आज हम जानते हैं कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है और स्वयं सूर्य आकाश गंगा की धुरी पर घूमता है। उस जमाने का अंतिम सत्य आज बदल गया है। यूँ हर युग का अलग-अलग अंतिम सत्य होता है। उसे आप सनातन कैसे कह सकते हैं ? सनातन यानी वह, जो कभी बदले नहीं, जबकि अन्तिम सत्य बदलता है। जब हम एक अन्तिम सत्य तक पहुँचते हैं, तब पता चलता है कि एक और अन्तिम सत्य दो कदम आगे खड़ा है।"

सहसा मुझे होश आया कि मैं जरूरत से ज्यादा बोल गया हूँ। मैंने बात समेटने की तरह कहा, "इसीलिए मैं अभी तक सत्य-असत्य, जीवन एवं अस्तित्व के रहस्य प्राप्त नहीं कर सका हूँ। मैं अपनी सम्पूर्ण जिज्ञासा के साथ आपके पास आया हूँ।"

"प्रश्न पूछिए। मैं उत्तर दूँगा।" वह बोले।

"आपके मतानुसार, जीवन की उत्पत्ति का उद्देश्य क्या है ?"

"विस्तार और वृद्धि के ही लिए जीवन की उत्पत्ति हुई है।"

"किसका विस्तार ? किसकी वृद्धि ?"

"वृद्धि केवल भोग और उपभोग की ही सम्भव है। विस्तार भी केवल इन्हीं का हो सकता है। सृष्टि भोग प्रधान है। जब जड़ को चेतना ने भोगा, तब ब्रह्माण्ड पैदा हुआ।

सूर्य ने पृथ्वी को भोगा, तब पृथ्वी पर जीवन का उद्‌भव हुआ। ब्रह्माण्ड का हेतु एक ही है—जड़ को चेतना लगातार भोगती रहे। भोग से ही चेतना का विस्तार होता है जिस प्रकार अग्नि समिधा को भोगती है, उसी प्रकार पुरुष द्वारा प्रकृति भोगी जानी चाहिए।" उन्होंने जवाब दिया, "काल इस विश्व का एकमात्र सत्य है जो विद्वान हैं, वे इस काल को भोगते हैं।"

"काल को भोगने से आपका तात्पर्य ?"

"काल का प्राकृतिक और भौतिक प्रतीक है—स्त्री। स्त्री का भोग कर पुरुष काल को भोगता है। इससे पुरुष का विस्तार होता है। इसी से पुरुष की शक्ति में असीम वृद्धि होती है। यही शक्ति अंततः पुरुष को मुक्ति दिलाती है।"

"स्त्री के भोग से आखिर कैसी शक्ति प्राप्त होती है ?" मैंने पूछा।

"भोग से और अधिक भोगने की शक्ति प्राप्त होती है। मंत्र द्वारा यह शक्ति और भी विकसित हो जाती है। मंत्र योग से प्राप्त होते हैं। सर्वश्रेष्ठ योग है स्त्री और पुरुष का संयोग।"

"आपके मतानुसार, स्त्री पुरुष को भोगती है या पुरुष स्त्री को ?"

"पुरुष स्त्री को।"

"यानी, आप पुरुष को चेतना और स्त्री को जड़ मानते हैं ? चेतना ही जड़ को लगातार भोगती है न ?" मैंने तिलमिला कर पूछा, "किन्तु क्या मानव की उत्पत्ति में पुरुष और स्त्री दोनों की हिस्सेदारी बराबरी की नहीं ? एक को चेतना और दूसरी को जड़ कैसे माना जा सकता है ?"

वह बोले, "वास्तव में स्त्री और पुरुष, दोनों ही, चेतना के प्रतीक हैं, किन्तु उनके शरीर जड़ के प्रतीक हैं। संयोग के समय दोनों की चेतना दोनों के जड़ शरीरों को भोगती है।"

मैंने आगे कुछ न पूछा। पूछना व्यर्थ था। परात्पर जी के ज्ञान में मुझे सिवा उलझन और भ्रम के और कुछ नजर नहीं आया था। अगर मैं अनन्त काल तक प्रश्न पूछता रहता, तो भी वह अनन्त काल तक अपने उन्हीं जवाबों को दोहराते रहते। मैंने कहा, "मैं आपका अत्यंत आभारी हूँ। मैं सोचता हूँ, आज के लिए इतना ज्ञान मुझे काफी है।"

उस समय मुझे कल्पना नहीं थी कि कमरे से बाहर, चौगान में, नरबलि की भूमिका तैयार हो रही थी।

आठ

नर बलि से पहले



घटनाएँ जिस तेजी से घट रही थीं और परात्पर जी से जो बातें हुईं, उनसे मैं बहुत थक गया था। मुझे शान्ति से कुछ सोचने की आवश्यकता थी। मैंने निकुम्भआनन्द से कहा, "क्या हम यहीं आसपास जंगल में टहल नहीं सकते ?"

उसने सहमति दर्शाई, "जरा रुकिए। मैं अपना त्रिशूल ले आऊँ।"

वह त्रिशूल लेने चला गया। उसके जाते ही मुझे वातावरण की भयानकता और ज्यादा महसूस हुई। रक्त और माँस की विचित्र गंध................अघोरियों के भयानक चेहरे ....निकुम्भ अपना चमकीला और वजनदार त्रिशूल लेकर जल्दी लौट आया, जो मेरे लिए राहत की ही बात थी।

हम दोनों जंगल में निकल पड़े।

शाम होने में अभी बहुत देरी थी। यदि हम घंटे दो घंटे भी जंगल में घूमते रहे, तो कोई खतरा नहीं था। कुछ देर तक हम केवल चलते ही रहे, बोले बिल्कुल नहीं। हमारे पैरों तले पत्तियाँ रौंदी जाने की आवाज होती रही। पंछी बोल रहे थे। छलागें लगाते बंदर हूप-हूप कर रहे थे। यदि इन स्वरों को अपवाद मानें, तो चारों तरफ शान्ति ही थी।

उस शान्ति को, अंततः निकुम्भआनन्द ने भंग किया, "आपको............यहाँ आकर पछतावा तो नहीं हो रहा ?"

"पछतावा तो नहीं, हाँ, निराशा अवश्य हुई है।" मैंने कहा। हम एक गिरे हुए वृक्ष के तने पर बैठ गए।

"निराशा ?" निकुम्भआनन्द ने मेरी ओर देखा।

"हाँ, क्योंकि...............ज्ञान और ज्योति मुझे आपके परात्पर जी में भी देखने को नहीं मिली।"

धरती पर से पत्ते उठाकर हम दोनों तोड़ते और मसलते रहे। मेरी बात सुनकर निकुम्भ ने सन्नाटा खींच लिया था। इसके बावजूद, न जाने क्यों, मुझे विश्वास था कि उसने मेरे शब्दों का बुरा नहीं माना है।

"निकुम्भ जी !" मैंने पूछा, "आप वाममार्गी कैसे बने ? पूछना तो नहीं चाहिए, फिर भी पूछ रहा हूँ। आपका पूर्वाश्रम क्या था ?"

वह बताने लगा, "मैं अपने माता-पिता का इकलौता लड़का हूँ। मेरे पिता एक बड़े जमींदार थे। उन्होंने मुझे पढ़ा-लिखा कर डॉक्टर बनाया, किन्तु................सहसा कुछ ऐसी घटनाएँ घट गईं कि समाज पर से, संसार पर से, जीवन पर से मेरी श्रद्धा ही उठ गई। मैं शांति की खोज में भटकता हुआ निकल पड़ा। न जाने कितने साधु-संतों, धर्म-गुरुओं से मिला। अंत में मेरी भेंट बाबा भैरवनाथ से हुई। मैंने उनमें शक्ति के दर्शन किए। मैं अघोरी बन गया।"

सुनकर मुझे जितना आश्चर्य हुआ, उतना ही आघात भी पहुँचा कि अघोरी बनने से पहले निकुम्भआनन्द एक डॉक्टर था। मैं पूछे बिना न रह सका, "सचमुच आपने डॉक्टरी पास कर रखी है ?"

वह हँसा, "सर्टिफिकेट आदि तो सब जला दिए, वरना दिखा देता आपको।"

मैं आगे कुछ कह पाता, इससे पहले ही वह उठकर खड़ा हो गया। दूर एक दिशा में वह देखने लगा, जैसे उधर से कोई आवाज सुनाई दी हो।

मैं भी उठ खड़ा हुआ।

एक प्रचण्ड और विकराल अघोरी को मैंने अपनी ओर बढ़ते देखा। जंगल की पगडण्डी पर वह लम्बे डग भर रहा था। अपने हाथों में उसने दस-बारह वर्ष की कोई आदिवासी कन्या उठा रखी थी। कन्या ऐसे निढाल थी, जैसे बेहोश हो।

साथ में, अधेड़ उम्र की, साध्वी-सी लगती एक महिला भी चली आ रही थी। वह केवल एक भगवा वस्त्र पहने हुए थी। उसके बाल खुले थे। गले में रुद्राक्ष की माला। दूर से वह रौबीली और प्रतिभावान लग रही थी।

निकुम्भआनन्द धीमे स्वर में, किन्तु जल्दी-जल्दी बोला, "वह अदिति माँ हैं। हम अघोरी उन्हें माता ही मानते हैं। बलिदान के लिए कन्या वही लेकर आई हैं। साथ में हैं बाबा वामदेव। महाशक्तिशाली हैं। शायद सर्वाधिक प्रभावशाली भी हैं।"

निकुम्भ के शब्दों से मेरे दिमाग में साँय-साँय होने लगी। क्या सचमुच ये अघोरी उस निर्दोष कन्या की बलि चढ़ा देंगे ? और क्या ऐसे वीभत्स कार्यक्रम के साथ एक भूतपूर्व डॉक्टर की सहमति भी है ?

तब तक बाबा वामदेव और अदिति माँ नजदीक आ चुके थे। वामदेव के हाथों में निढाल उस निर्दोष कन्या को मैं अपलक ताकता रह गया। माता अदिति ने कुछ कहा, लेकिन मैं समझ ही न सका। मैं और निकुम्भआनन्द, उन दोनों के पीछे-पीछे, वापस लौटने लगे।

शिविर के अघोरियों ने दूर से वामदेव और अदिति को देखा। अगवानी के लिए वे 'माँ शक्ति की जय' का घोष करते हुए आगे बढ़े। लगभग सौ अघोरी त्रिशूल उठा-उठा कर हर्ष के चीत्कार करने लगे। उस दृश्य ने मेरे रोम खड़े कर दिए।

वह महाभयानक जुलूस फिर से उसी यज्ञ-वेदी के पास पहुँच गया। वहाँ घास की बनी एक चटाई बिछा दी गई। वामदेव ने कन्या को उस पर लिटा दिया।

थोड़ी ही देर में कुछ अघोरी मिट्टी के घड़ों में पानी भर लाए। अदिति एवं दो स्त्रियों ने मिलकर उस बेहोश लड़की के सभी वस्त्र एवं कौड़ी के अलंकार आदि उतार दिए। घड़ों के पानी से लड़की को नहलाया गया। फिर उसे एक लाल कपड़े में लपेट दिया गया। उसका होश वापस आने के कोई लक्षण नहीं थे। क्या उसे लम्बी अवधि के लिए सम्मोहित करके सुला दिया गया था ? या कोई नशीली चीज खिला दी गई थी ? मैं न समझ सका।

परात्पर जी से मिलते समय, कमरे के कौने में, तीन अघोरियों को मैंने कोई जड़ी-बूटी या वनस्पति पीसते देखा था। एक पत्ते में उसी जड़ी-बूटी का पिसा हुआ पिण्ड उठाकर वे ले आए। पिण्ड में से कुछ हिस्सा लेकर अदिति ने लड़की के शरीर पर मला फिर उसने लड़की के कुछ बाल खींच कर तोड़े। ये बाल उसने वामदेव को दे दिए। वामदेव ने बालों को जड़ी-बूटी के शेष पिण्ड के साथ मिलाकर मसल दिया। लड़की को नहलाने से जो जमीन गीली हुई थी, वहाँ से उसने कुछ मिट्टी उठाई और पिण्ड में मिला दी। इस पिण्ड से अब उसने एक पुतली तैयार की।

सब अघोरी सन्नाटा खींच कर, स्तब्धता से देख रहे थे। उनके चेहरों पर ऐसे भाव थे, जैसे इस प्रयोग को वे पहली बार देख रहे हों। उस भयानक खामोशी को चीखकर तोड़ देने का मेरा मन हो रहा था। काश, मैं ऐसा कर सकता। उस हालात में मैं चुपचाप केवल देख ही सकता था।

पुतली तैयार होते ही वामदेव ने उस लड़की के उतरे हुए कपड़ों में से एक टुकड़ा फाड़ कर साड़ी की तरह पुतली पर लपेट दिया। यह पुतली उसने यज्ञ-वेदी के नजदीक लाकर रख दी। साँस चलने से अगर उस बेहोश लड़की का सीना उठ-गिर न रहा होता, तो उसमें और किसी लाश में कोई अंतर नहीं था। पुतली और उस लड़की की तरफ चेहरा रखकर वामदेव बैठ गया। बड़े जोर-जोर से उसने मंत्र पढ़ने शुरू किए। मंत्र किसी विचित्र भाषा में थे। तीव्र शब्दोच्चार के सिवा मेरी समझ में कुछ न

आया। 'क्लीं' और 'हीं' के उच्चारण इन मंत्रों में भी थे। दस-बारह मिनट तक मंत्र निरन्तर पढ़े गए। इस दौरान सब अघोरी स्तब्धता से खड़े रहे। यहाँ तक कि किसी को इसका भी पता न चला कि कब परात्पर श्री लकुलेश जी वहाँ आकर सबसे आगे खड़े हो गए।

मंत्र समाप्त हुए। कुछ पल शांति छाई रही। वामदेव ने उठकर पुतली के चारों ओर एक अटपटी आकृति अंकित करनी शुरू की। वह आकृति अघोरियों की कोई यांत्रिक रचना ही थी। त्रिभुज, चतुर्भुज एवं गोलाकारों को आपस में बड़ी विचित्रता से गूंथ दिया गया था।

इस पूरे दौर में भयंकर शांति कायम रही। प्रत्येक अघोरी ने यंत्र-अंकन की क्रिया को अपलक देखा। मेरे सिर का पसीना, अब, दोनों कनपटियों को भिगोता हुआ बहने लगा था। पैर ऐसे ठण्डे पड़ चुके थे, जैसे निर्जीव हो गए हों। उस भयानक शांति ने जैसे मेरा गला ही दबोच लिया था।

अचानक वामदेव ने एक तीक्ष्ण हथियार उठा लिया। यह हथियार एक मीटर से कुछ कम लम्बां था। देखने में टूटी हुई तलवार जैसा लग रहा था। इस हथियार को वामदेव ने पुतली के ऊपर, हवा में, अधर, धरे रखा। मेरा गला सूखने लगा था। आँखें जल रही थीं। मैंने चारों तरफ देखा। कुछ अघोरियों ने मशालें जला दी थीं। शाम झुक चली थी। यज्ञवेदी की रोशनी वामदेव के चेहरे पर चमक रही थी और उस हथियार पर भी। सहसा वामदेव ने हथियार नीचे लाकर, उसकी तीक्ष्ण धार से, उस पुतली को सिर्फ स्पर्श किया।

उसी क्षण उस मासूम बेहोश लड़की के मुँह से एक करुण चीत्कार फूट पड़ा। मैं दंग रह गया। मैं अपनी आँखों और कानों पर विश्वास ही न कर सका। वामदेव ने पुतली के अलग-अलग हिस्सों में उस हथियार को भौंका। हर बार बेहोश लड़की ने वेदना का तीखा चीत्कार किया। उस त्रासजनक दृश्य को लगातार देखते रहना मुझे असम्भव मालूम पड़ा। पाँच वर्ष पहले मैंने जगजीत को इसी तरह वेदना के चीत्कार करते और तड़पते देखा था। क्या जगजीत को मूठ मारने वाले अघोरी ने भी वही सब किया था, जो वामदेव ने अभी-अभी किया है ?

जगजीत की चीखों और तड़पन को मैं आज तक भूल नहीं पाया हूँ। उस मासूम बच्ची पर तो मेरी नजरों के सामने जुल्म ढाया जा रहा था। मुझे चक्कर आने लगे। बगल में खड़े निकुम्भआनन्द के कंधे पर मैंने हाथ रख दिया। हम दोनों चुपचाप उस टोली से बाहर निकल आए।

नौ

भोग की साधना



थोड़ी देर में लड़की के चीत्कार सुनाई देने बंद हो गए। अघोरी ऐसा जयघोष करने लगे, जो पत्थर को भी दहला देता। मैंने थरथरा कर निकुम्भ से पूछा, "इस लड़की का बलिदान कब होगा ?"

"पाँच दिनों बाद। अमावस्या को।" निकुम्भ का स्वर शुष्क था।

रात के अंधकार में, अघोरियों ने चारों तरफ मशालें जला ली थीं। मैं और निकुम्भआनन्द मेरे कमरे की ओर बढ़े। वहाँ एक अघोरी दरवाजे के पास ही खड़ा था। वह मुझसे बोला, "माता अदिति जी ने आपके लिए स्टोव और थरमस भेजे हैं। आशा है, इससे आपको सुविधा होगी। भोजन के पश्चात् अवश्य मिलने को कहा है।"

मैंने माता अदिति और उस अघोरी का आभार माना। भोजन की जरा भी इच्छा न होते हुए भी, स्टोव की सुविधा मिल जाने से, खिचड़ी पका ली। थरमस में दूध था। निकुम्भआनन्द खाने-पीने की जो चीजें लाया था, उनमें चाय-पत्ती थी, चीनी भी थी। मैंने चाय भी बना कर पी।

निकुम्भआनन्द को मैंने अपने साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया, किन्तु उसने कहा, "हम अघोरियों को इस साधना के दौरान एक साथ ही बैठकर भोजन करने का आदेश है। आप क्षमा कीजिएगा। एकाध घण्टे बाद मैं आपको बुलाने आऊँगा। माता अदिति के पास हम दोनों साथ-साथ ही चलेंगे। माता अदिति शायद ही किसी से मेल-मुलाकात करती हैं। आप भाग्यशाली कहे जायेंगे। माता ने अपनी ओर से आपको मिलने का आमंत्रण दिया है।"

निकुम्भ चला गया। मैं अपने भाग्यशाली होने पर विचार करता रहा। उस मासूम लड़की का चेहरा आँखों के सामने तैर उठा। क्या किसी तरह उसका बलिदान रोका जा सकता है ? मुझे क्या करना चाहिए ? क्या कर सकता हूँ ? क्या मेरे कहने मात्र से ये अघोरी उस लड़की की बलि चढ़ाने का विचार छोड़ देंगे ? एक बार तो मैंने यहाँ तक सोच लिया कि सुबह होते ही मुझे यहाँ से चले जाना चाहिए। कम-से-कम इस भयानक कार्यक्रम का साक्षी बनने से तो बच सकूँगा। किन्तु इतना कुछ देख लेने के बाद ये अघोरी मुझे कल सुबह चला जाने देंगे भी ? उनकी साधना में दखल देने का अधिकार मुझे है या नहीं ? शिवानन्द जी ने मुझे पहले ही सावधान किया था। सलाह दी थी, 'चुपचाप देखते रहिएगा।'

मैंने आशावादी ढंग से सोचा कि माता अदिति से भेंट होने पर शायद कोई उपाय सूझ जाएगा। एकाध घण्टे बाद निकुम्भआनन्द आ पहुँचा। अघोरी वेश में होने के बावजूद उस भूतपूर्व डॉक्टर के प्रति मैं मित्र भाव अनुभव करने लगा था। किसी समय के सभ्य और सुसंस्कृत उस डॉक्टर ने अघोरियों के साथ बैठकर उस घृणास्पद भोजन को कैसे ग्रहण किया होगा ? मुझे याद आया, दोपहर को भैंसे का रक्त पीने के कार्यक्रम में निकुम्भआनन्द ने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई थी। दोपहर को तो, खैर, निकुम्भ से अधिक बातें करने का अवसर था ही नहीं, किन्तु मैंने निर्णय ले लिया था कि उसके जीवन की गहराइयों में उतरने का अधिकतम प्रयास करूँगा।

हम दोनों माता अदिति के कमरे में पहुँचे। ऐसा लगा, जैसे वह हमारी ही प्रतीक्षा में बैठी थीं। उनकी बगल में वही निर्मलआनन्द उपस्थित था, जिसने सुबह मेरा हाथ दीवार पर चिपका दिया था। मुझे देखकर वह अल्हड़ता से मुस्करा दिया। मैंने भी हाथ जोड़कर हास्य के साथ उत्तर दिया।

उस मासूम लड़की के निर्दोष चेहरे की तरफ देखने में ही मैं ऐसा खोया रहा था कि माता अदिति को मैं ध्यान से देख भी नहीं पाया था। केवल उड़ती नजर में ही मुझे उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व याद रह गया था। अब यहाँ, मशाल की रोशनी में मैंने उन्हें ध्यान से देखा। ताँबे की तरह तपा हुआ उनका चेहरा मशाल की रोशनी में सुनहरा-सा लग रहा था। खुले बालों में, यहाँ-वहाँ, सफेद बाल झलक रहे थे। आँखें अत्यन्त आकर्षक थीं, किन्तु ध्यान से देखते ही उन आकर्षक आँखों की विषाक्तता प्रकट होने लगती थी। शायद विष कन्याओं की आँखें ऐसी ही होती हों। उन आँखों में जैसे विष का मद चढ़ा हुआ था। भौंहें बहुत पतली और तीखी थीं। उनका चेहरा आँखों से बिल्कुल ही जुदा पड़ जाता था। किसी ममतामयी नारी के चेहरे पर किसी ने सर्पिणी की आँखें लगा दी हों,

ऐसा ही लगा मुझे। विषाक्त मद के बावजूद वे आँखें आकर्षक थीं। उनमें वशीकरण की ऐसी शक्ति थी कि क्षण मात्र में सामने के व्यक्ति को लकवा मार जाए।

मैं उनकी आँखों में अधिक देर तक न देख सका। मैं थक गया। मैंने नजरें हटा लीं। उन्होंने मुस्करा कर मेरे स्वागत में दो शब्द कहे। मैंने आभार व्यक्त किया।

"आप लोग नरबलि क्यों चढ़ाते हैं ? ऐसा मानव-बलिदान क्यों आवश्यक है ?" संकोच के बावजूद मैंने पूछ ही लिया।

"आपने भोजन किया ? क्यों किया ? भोजन क्यों आवश्यक है ?" उन्होंने प्रश्न के विरुद्ध प्रश्न पूछा।

"भोजन जीने के लिए आवश्यक है। मानव-बलिदान तो व्यर्थ है। भोजन और मानव-बलिदान के बीच कोई तुलना नहीं।"

"भोजन जीने के लिए, तो मानव-बलिदान अच्छी तरह जीने के लिए आवश्यक है।"

"अच्छी तरह जीने के लिए ? नरबलि ? मैं समझा नहीं।"

"अच्छी तरह यानी शक्तिशाली होकर, सत्ताधीश बनकर। शक्ति और सत्ता के संचय के लिए मानव-बलिदान अत्यन्त आवश्यक है। शक्तिहीन और सत्ताहीन बनकर जीने में कोई अर्थ नहीं। हमारे लिए जीवन को सम्पूर्णता के साथ जीना ही धर्म है। आपकी दृष्टि में हमारा धर्म अघोर है, होगा। हमारे लिए यही सर्वश्रेष्ठ धर्म है।" माता अदिति के शब्दों में दृढ़ता थी। मुझे लगा कि परात्पर जी की तुलना में उनके विचारों में अधिक स्पष्टता थी।

"जो धर्म किसी अन्य की मृत्यु के माध्यम से अपने जीवन को श्रेष्ठता देने की सिफारिश करता है, उसे धर्म कैसे माना जाए ?" मैंने पूछा।

वह बोलीं, "हमारे धर्म का एक ही मंत्र है—जीयो। कैसे जीयो ? क्यों जीयो ? ये प्रश्न गौण हैं। ये प्रश्न धर्म नहीं हैं। ये केवल मार्ग हैं।"

उनके प्रत्येक वाक्य का आशय अत्यंत स्पष्ट था। मेरे विचारों से विपरीत होते हुए भी उनकी स्पष्टता से मैं इन्कार नहीं कर सकता था। उनके तर्क ऐसे अकाट्य थे कि कोई महापंडित भी बरसों तक सिर पटकने के बावजूद उन्हें न काट पाता।

आधे घण्टे तक वह मुझे अघोरियों का तत्वज्ञान क्या है, यह समझाती रहीं। प्रारम्भ उन्होंने वैदिक युग से भी पहले से किया। ब्रह्मवाद, कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद, भूतवाद, योनिवाद, पुरुषवाद, एतत्संयोगवाद, आत्मवाद और देवात्म-शक्तिवाद............इन सभी वादों और पुराणों का सहारा लेकर वह अघोरपंथ का समर्थन करती रहीं।

मैंने उन्हीं को बोलने दिया। मैं उनके पांडित्य को पूरी तरह खुलते देखना चाहता था। शायद इसी पांडित्य में से कोई कोमल तंतु पकड़ में आ जाए। न जाने क्यों, मुझे ऐसा लग रहा था कि माता अदिति का ममता से भरा चेहरा झूठा नहीं है। उस चेहरे पर यकीन किया जा सकता है।

"काल ही सत्य है।" उनके शब्द मेरे कानों तक पहुँच रहे थे, "काल का मूर्त रूप है सूर्य। काल के मुख में समग्र सृष्टि बलिदान के कौर के रूप में रखी हुई है। इस

कालचक्र की आरियाँ हैं—सुख और दुःख, जन्म और मृत्यु। काल की अग्नि है प्रलय, जिसमें सृष्टि का बलिदान होता रहता है। मनुष्य के पेट में जो जठराग्नि है, वह एक यज्ञ है। मनुष्य का मुख महाकाल का ही मुख है, जो अन्न के रूप में सृष्टि का बलिदान चाहता है। महाकाल के भव्य प्रवाह में पाँच प्रकार की लहरें उठती हैं। उन्हीं को पाँच प्रकार के ज्ञान भी कहा जाता है। अव्यक्तात्मा, विज्ञात्मा, प्रज्ञानात्मा, प्राणात्मा और भूतात्मा—ये ज्ञान के पाँच सूक्ष्म स्वरूप हैं। आत्मा के सिवा, समग्र सृष्टि जड़ और चेतन की बनी है। चेतन जड़ का भक्षण करता है, ताकि काल-प्रवाह आगे बढ़ता रहे। अग्नि वायुरूपी चेतना का और समिधा रूपी जड़ का भक्षण करती है। मनुष्य भी जल, वायु और अन्न के रूप में चेतना और जड़ का भक्षण करके काल प्रवाह की ही एक लहरी बन जाता है। काल के इस महायज्ञ में आहुति दिए बिना शक्तिशाली नहीं बना जा सकता। काल के प्रवाह पर तैर कर केवल वही जी सकता है, जो शक्तिशाली है। जो शक्तिहीन और मूल्यहीन हैं, वे बलि चढ़ जाते हैं और काल के इस महायज्ञ में सहायक बनते हैं..................''

मैं बोले बिना न रह सका, "स्वभाव मेके कवियो वदन्ति, कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः।"

सुनते ही माता अदिति की आँखें क्रोध से सुलग उठीं। निर्मलआनन्द बोल पड़ा, "देखिए, आप हमारे अतिथि हैं। हमें परिमुह्यमान (मोहग्रस्त) कहने से पहले आपको हमारी शक्तियों पर भी विचार कर लेना चाहिए। हमारी शक्तियों के अलौकिक चमत्कार आप लगातार देख रहे हैं।"

"निस्संदेह ! किंतु मैं आपकी शक्तियों को अलौकिक नहीं मानता। ये पूरी तरह लौकिक शक्तियाँ हैं। इन्हें सीखा जा सकता है।" मैंने कहा। निर्मलआनन्द ने व्यंग्य से पूछा, "तो क्या आप हमारी शक्तियों को जादू मानते हैं ? जिसे सीखा जा सके ? क्या आप हमें छली-कपटी समझते हैं ?"

सबकी नजरें मुझ पर टिक गईं कि मैं क्या जवाब देता हूँ।

दस

युवतियाँ, अघोरी और खोपड़ियाँ



मेरी साँसें गर्म होने लगी थीं। मेरी किसी भी बात से यदि ये अघोरी जरूरत-से-ज्यादा नाराज हो गए, तो मुझ पर किसी भी हद तक खतरा बढ़ सकता था। मैं यहाँ उनकी मंत्र-शक्ति के रहस्य समझने आया था, न कि उन्हें चुनौती देने। इसीलिए मैंने अपना एक-एक शब्द तौलकर जवाब दिया, "कृपा कर मुझे गलत न समझिएगा। मैं आप लोगों को सड़क के किनारे मजमा लगाते बाजीगरों के समकक्ष नहीं रख रहा। मैंने आपकी शक्तियों के चमत्कार प्रत्यक्ष देखे हैं। यज्ञ की वेदी में केवल मंत्र की शक्ति से अग्नि प्रकट कर देना कोई मामूली चमत्कार नहीं। मैं आपकी शक्ति और साधना, दोनों का लोहा मानता हूँ। मैं यहाँ आया ही इसलिए हूँ कि मैं चमत्कृत हूँ। फिर भी, इतना तो मुझे कहने ही दीजिए कि अनजाने में सही, किन्तु आप अपनी शक्ति और साधन दोनों का केवल अपव्यय कर रहे हैं।"

अन्तिम वाक्य पूरा करते-करते मैंने निकुम्भ की ओर देख लिया। निकुम्भ के चेहरे पर इतनी ज्यादा व्याकुलता थी कि मैं समझ न पाया, भला ऐसी कौन-सी बात है, जो मेरे मुँह से निकल गई है, जो उग्र है। मैंने तो अपना हर शब्द नाप-तौल कर............

किन्तु निकुम्भआनन्द अचानक कहने लगा था, "माता ! यदि आपकी अनुमति हो तो..............अतिथि को मैं ले जाऊँ यहाँ से ? इन्हें अगला कार्यक्रम भी तो दिखाना है।"

निकुम्भ के शब्दों में जो चालाकी थी, उसने हम तीनों को हँसा दिया। माता अदिति का हास्य अत्यन्त उन्मुक्त था। मुझसे बोलीं, "ठीक है कोरी तत्व-चर्चा क्यों करें ? प्रत्यक्ष प्रमाण ही बेहतर रहेगा। आपकी आशंकाओं का समाधान अवश्य होगा।"

"समाधान की आशा लेकर ही मैं यहाँ आया हूँ।"

मैं और निकुम्भ बाहर निकले। चलते-चलते मैंने निकुम्भ से पूछा, "कौन सा अगला कार्यक्रम दिखाना है ?"

उसने चिंतित स्वर में उत्तर दिया, "आपको वहाँ से हटाना बहुत जरूरी था। आप तो लड़ पड़ने पर ही आमादा थे। गनीमत समझिए कि आप माता अदिति से चर्चा कर रहे थे। उनकी जगह यदि वामदेव जी होते, तो आपकी खैरियत नहीं थी।"

मैं एक ठण्डी हँसी हँसा, "एक प्रश्न का उत्तर दीजिएगा, निकुम्भ जी।"

"अवश्य।"

"सुबह से देख रहा हूँ। सब अघोरी सब कार्यक्रमों में हिस्सा नहीं ले रहे। ऐसा क्यों ? उदाहरण के लिए आप ही को लें। सब कार्यक्रमों में आप शामिल नहीं हुए हैं।"

निकुम्भ ने बताया, "साधना में केवल दीक्षार्थी हिस्सा लेते हैं। इस साधना-शिविर में ऐसे दीक्षार्थी तीस हैं। दोपहर को भैंसे का रक्त पीने के लिए जिन अघोरियों को आपने आपाधापी करते देखा था, वे सब दीक्षार्थी थे। जो उन्हें दीक्षा दे रहे हैं। वे हमारे गुरू हैं, मार्गदर्शक हैं। मुझ जैसे कुछ ऐसे अघोरी भी यहाँ हैं, जो केवल अनुभव लेने, केवल देखने आए हैं। यहाँ की व्यवस्थाएँ संभालना हमारे ही जिम्मे है।

"तो क्या........आपने अभी दीक्षा नहीं ली है ?"

"मैंने ज्ञान-दीक्षा ली है। मंत्र और तंत्र की दीक्षा उसके बाद आती है। वह मैंने अभी नहीं ली।"

"ज्ञान-दीक्षा क्या है ?" मैंने जानना चाहा।

"इस दीक्षा में यह ज्ञान दिया जाता है कि हमें 'अघटित घटना परियसि' पर विश्वास रखना है यानी, हमें घटनाओं का कारण नहीं खोजना है, बल्कि उन्हें स्वीकार कर लेना है। घटनाएँ केवल संयोग हैं। उनके पीछे कारण या तर्क की खोज करना व्यर्थ है। अघारियों का यह विचार यदृच्छावाद के अहेतुवादी दार्शनिकों जैसा ही है। वाममार्ग का मुख्य आधार है लोकायत दर्शन, जो वैदिक युग में भी प्रचलित था। जब तक सब कुछ 'यदृच्छा' से स्वीकार नहीं कर लिया जाता, तब तक मंत्र-तंत्र नहीं दिए जाते। 'यदृच्छा' को 'स्वेच्छा' में पलट देने की विद्या का ही नाम है तंत्र-मंत्र। पहले तो प्रकृति की शक्ति को स्वीकारो । उसके बाद उसे चुनौती दो—अधिक शक्तिशाली बनने के लिए। इसी को कहते हैं तंत्र-मंत्र सीखना। तंत्र-मंत्र की दीक्षा में शक्ति की आराधना प्रमुख है। शक्ति को सिद्ध करने के बाद ही सर्वोच्च अघोरी बनना सम्भव है। यह अत्यंत कठिन है।"

पढ़ा-लिखा होने के कारण निकुम्भआनंद अपनी बात मुझे स्पष्टता से समझा पा रहा था। उसकी शिक्षा हम दोनों के ही लिए सहायक सिद्ध हो रही थी। थोड़े मौन के बाद वह बोला, "आप विधियाँ देख रहे हैं। यह केवल बाह्य अवलोकन है। आंतरिक शक्ति तो मंत्रों से ही आती है। उसे आप नहीं पा सकते। बाह्य अवलोकन का जो अवसर आपको मिल रहा है, उसे मैं आपका सौभाग्य ही कहूँगा। अब, मध्यरात्रि तक, दीक्षार्थियों का नृत्य होगा। यदि आप थके न हों, तो अवश्य अवलोकन करें।

थकने का प्रश्न ही कहाँ था ? अघोरियों के अद्भुत प्रयोगों को देखकर भय, क्रोध और हताशा तीनों के आघात मन पर एक साथ लगते थे। इसके बावजूद, थकने का प्रश्न था ही नहीं। मैं और निकुम्भआनन्द बरामदे में बैठ गए। मशालों की रोशनी में माहौल ज्यादा भयानक लग रहा था। स्वच्छ आकाश में तारे इतने स्पष्ट थे, मानो वे जरा नीचे उतर कर चमक रहे हों। अघोरियों की टोली धीरे-धीरे यज्ञ-वेदी के आस-पास जमा हो रही थी।

थोड़ी ही देर में तीस दीक्षार्थी अघोरी, यज्ञ-वेदी के सामने, अपनी कतार बना चुके थे। जब वामदेव उनकी ओर बढ़ा, तब उन सबने शक्ति का तुमुल जयघोष किया। इसके बाद सबने अपना-अपना मानव खोपड़ी का पात्र आगे कर दिया। एक अघोरी उन मानव खोपड़ियों में कोई पेय पदार्थ डालने लगा। निकुम्भआनन्द ने मुझे बताया, "सोमरस है, किन्तु आपने जैसा पीया था, उससे अधिक तेज और उत्तेजक।"

सभी अघोरियों के पात्र जब सोमरस से भर चुके, तब उन्होंने सामूहिक मंत्रोच्चार प्रारम्भ कर दिया। यह मंत्रोच्चार बड़ी देर तक चलता रहा। फिर, वामदेव का आदेश मिलते ही, सब अघोरी अपना-अपना सोमरस एक साथ पी गए। वे इतने आतुर थे कि उनके मुँह के दोनों ओर से सोमरस की धाराएँ छाती पर गिरने लगीं। मैंने चौंक कर देखा कि इस सोमरस का रंग लाल था। मैंने जब निकुम्भआनन्द से पूछा, तो उसने बताया कि उसमें रक्त मिलाया गया था।

अचानक नगाड़े प्रचण्डता से बज उठे। तुमुल जयघोष के साथ अघोरियों ने एक विशिष्ट दिशा में देखना शुरू किया। मेरा ध्यान भी उसी दिशा में केन्द्रित हुआ। जहाँ हम बैठे थे, उसके ठीक पीछे के ही कमरे से माता अदिति बाहर निकलीं। उनके साथ वे सभी युवतियाँ थीं, जिन्हें मैंने यहाँ आने पर सम्मोहित दशा में झूमते देखा था। युवतियाँ फूलों से सजी-धजी थीं और वस्त्र केवल उनकी कमर पर था। सुबह उनके केश मैंने मुक्त देखे थे, किन्तु अभी उन्हें व्यवस्थित करके बाँध दिया गया था। युवतियाँ इस प्रकार चल रही थीं, जैसे उनकी सम्मोहावस्था अभी तक टूटी न हो।

युवतियों के जुलूस के अन्त में वही मोटा अघोरी चल रहा था, जिसने उन सबको सम्मोहावस्था में डाला था। युवतियाँ ज्यों ही चौगान के बीच में पहुँचीं, त्यों ही अघोरियों ने उन्मत्त होकर नाचना और हर्ष से चीखना शुरू कर दिया। नगाड़े की तालबद्ध आवाज लगातार जारी थी।

युवतियाँ अघोरियों की कतार के सामने कतार बनाकर खड़ी हो गईं। अघोरियों से मिलान करके उन्होंने नाचना शुरू कर दिया। यज्ञ में और अधिक समिधा डाल दी गई।

वेदी की अग्नि जोरों से भड़क उठी। लगता था, अग्नि-शिखाएँ भी अघोरियों के साथ नृत्य करने लगी हैं। अग्नि की काँपती रोशनी थरथराते अघोरियों पर पुती हुई थी। इससे अघोरियों की भयानकता और बढ़ गई थी।

मानव खोपड़ियों को अघोरियों ने बाएँ हाथ में ले लिया था। दाहिने हाथ में त्रिशूल थे ही। त्रिशूल के आघात से वे उन मानव खोपड़ियों को झूम-झूम कर बजाने लगे। उन दीक्षार्थी अघोरियों की आँखों की लालिमा, जहाँ हम बैठे थे, वहाँ से भी स्पष्ट दीख रही थी।

मैंने निकुम्भ से पूछा, "क्या ये युवतियाँ भी दीक्षार्थी हैं ?"

"नहीं। दीक्षार्थियों ने जो सोमरस पीया है, उसके जितना ही महत्त्व इन युवतियों का है। साधक की साधना के लिए ये युवतियाँ केवल साधन हैं उससे अधिक कुछ नहीं।"

"साधना के बाद क्या इन्हें भी बलि चढ़ा दिया जाएगा ?" कँपकँपीयुक्त धीमे स्वर में मैंने पूछा।

"नहीं।" निकुम्भ का भी स्वर धीमा था।

"फिर ! इनका क्या किया जाएगा ?"

"इन्हें छोड़ दिया जाएगा। इन्हें कुछ भी याद नहीं रहेगा, इनके साथ क्या-क्या हुआ।"

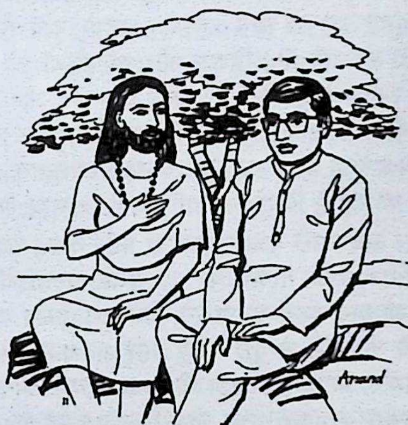
"इन्हें कहाँ से लाया गया है ?"

"आपको यह जानने की जरूरत नहीं।" पहली बार निकुम्भ ने जरा चिढ़कर जवाब दिया। मैं चुप हो गया।

थोड़ी देर बाद निकुम्भ ने ही मौन भंग किया, "माफ कीजिएगा। कुछेक प्रश्न ऐसे हैं, जिनके उत्तर देने का अधिकार मुझे नहीं है। ऐसे प्रश्न यदि पूछने ही हैं, तो बाबा भैरवनाथ से पूछें। योग्य लगेगा, तो वह उत्तर देंगे।"

ग्यारह

रोते सियार, रोते उल्लू



नाचते अघोरियों और युवतियों के बीच आकर एक छरहरे और लम्बे अघोरी ने थिरकना शुरू कर दिया था। अचानक वह ऐसे चीखने, थरथराने और उछलने लगा, जैसे उसके शरीर में भूत ने प्रवेश कर लिया हो। नगाड़े की आवाज ऊँची और तेज हो गई। उस छरहरे अघोरी ने सुलगती वेदी में से दो लकड़ियाँ खींच निकालीं। दोनों हाथों में एक-एक सुलगती लकड़ी लेकर वह नाचने लगा।

युवतियों पर मद छाने लगा था। वे ऐसे नाच रही थीं, जैसे कुछ भी न देख रही हों। छरहरे अघोरी ने अचानक दोनों लकड़ियों के सुलगते छोर नंगे हाथों से पकड लिए। पल भर वह ज्यों-का-त्यों रुका रहा, फिर दुबारा नाचने लगा। यही लग रहा था, जैसे लकड़ियाँ नहीं, बल्कि अघोरी के दोनों हाथ ही सुलग रहे हैं। कम-से-कम पाँच मिनट तक वह अघोरी उन सुगलते छोरों को पकड़ कर, झूम-झूम कर नाचता रहा। फिर उसने सुलगती लकड़ियाँ परे फेंक दीं और नाचते-नाचते सबको अपनी विशाल हथेलियाँ दिखाईं। आश्चर्य ! वे हथेलियाँ जरा भी नहीं झुलसी थीं।

आधी रात होने को थी। खोपड़ियों पर त्रिशूल की ठकठक और नगाड़े की कड़क के साथ अब किसी के रोने की विचित्र-सी आवाज आने लगी थी। मैंने गौर से सुना, जंगल में सियार रो रहे थे। पूछने पर निकुम्भआनन्द ने भी बताया कि वह आवाज सियारों के ही रोने की थी। जंगल में तो, रात्रि की नीरवता में, धीमा स्वर भी दूर-दूर तक सुनाई देता है, जबकि रोदन का वह स्वर धीमा था ही नहीं। न जाने कितने सियार एक साथ मिलकर रो रहे थे।

रोने के स्वरों और नगाड़े के स्वरों के बीच एक-दूसरे को दबा देने की जैसे होड़-सी होने लगी। कभी नगाड़ा तेज हो जाता, तो कभी रोने के स्वर। फिर तो जंगल के उल्लू भी जोरों से बोलने और रोने लगे। मैंने अपने दोनों कान हथेलियों से बंद कर लिए। तब पता चला, मेरी दोनों हथेलियाँ कितनी ठण्डी पड़ चुकी थीं।

युवतियाँ और अघोरी अब अलग-अलग कतारों में नहीं थे। वे आपस में गडमड होकर गोल घूमते हुए से नाच रहे थे। उनके नृत्य में अब लयबद्धता घटती और मादकता बढ़ती जा रही थी। त्रिशूल और खोपड़ियों को अघोरियों ने एक तरफ फेंक दिया था। रह-रहकर वे युवतियों को अधर उठा लेते और हर्ष से नाचने लगते। युवतियों की हालत चाबी भरे खिलौनों जैसी थी। वामदेव ध्यान रख रहा था कि किसी विशेष युवती को हथियाने के लिए अघोरियों के बीच खींचतान न मच जाए। अब तक प्रत्येक नाचते अघोरी की जोड़ी किसी-न-किसी युवती के साथ बँध चुकी थी।

थोड़ी देर बाद सारी मशालें बुझा दी गईं। केवल यज्ञ-वेदी से रोशनी उठती रही। उस रोशनी में मकान की दीवारों पर जो नाचती परछाइयाँ बनने लगीं, वे भयानक थीं। नाचते पैरों ने जो धूल उड़ाई थी, उसने वातावरण धुंधला कर दिया था। सभी नर्तक और नर्तकियाँ अपने वस्त्रों में से पूरी तरह बाहर आ चुके थे। अचानक नगाड़ा रुक गया। उल्लू और सियारों के रोने के स्वर भी क्रमशः रुकने लगे। निस्तब्धता छा जाने लगी। नर्तकियों को अधर उठाकर नर्तक गोल-गोल घूम रहे थे।

निकुम्भआनन्द ने मेरे कान में धीमे से कहा, "संसार में, अघोरियों की जमात से बाहर के किसी भी व्यक्ति ने, आज तक जिस तंत्र-साधना को नहीं देखा है, उसे अब आप प्रत्यक्ष देखने वाले हैं। इसे आप किसी तांत्रिक की दृष्टि से ही देखिएगा। मैथुन से शक्ति प्राप्त करने का यह अघोर तंत्र अनुपम और अलौकिक है।"

सचमुच उस दृश्य को मैंने अनुपम और अलौकिक ही पाया। मन में कोई जुगुप्सा नहीं जगी। लगभग तीस युवा युगल, प्रकृति की गोद में, प्रकृति के सर्वश्रेष्ठ बंधन में कसे हुए, भूमि पर पड़े दीखते रहे थे। रात्रि का अंधकार जम गया था। आकाश के तारे इतने नीचे उतर आए थे, मानो उस मकान की छत पर ही आ बैठे हों। 'प्रकृति' के साथ 'पुरुष' का वह महामिलन लगभग दो घण्टों तक चलता रहा था। अद्‌भुत ! पहली बार मैं अघोरियों के किसी कर्म विशेष से उतना प्रभावित हुआ था।

पौ फटने में अब विशेष देरी नहीं थी। मैं बिल्कुल सो नहीं पाया था। सोने का मन भी नहीं था। कानों में मच्छर लगातार भन्न-भन्न कर रहे थे। रतजगे के कारण आँखें जलने लगी थीं। सारा बदन थकान से टूट रहा था, मगर नींद का नाम भी नहीं था।

यज्ञ की अग्नि की रक्षा के लिए दो अघोरी वेदी के पास ही बैठे थे। कुछ अघोरी छोटी-छोटी टोलियों में, इधर-उधर, सूखी टहनियाँ जलाकर आग ताप रहे थे। मैथुन-नृत्य के बाद सम्मोहित युवतियों को किन्हीं कमरों में भेज दिया गया था। अनेक अघोरी अपने भगवे वस्त्र को ही सिर से पैर तक खींच कर भूमि पर फैल गए थे और खर्राटे भर रहे थे।

निकुम्भआनन्द को साथ लेकर मैं जरा किनारे हटा। बैठते हुए मैंने निकुम्भ से पूछा, "तो क्या....अघोर तंत्र में ब्रह्मचर्य का विशेष महत्त्व ही नहीं ?"

निकुम्भ ने चौंक कर मेरी ओर देखा, "नहीं तो ! ऐसा किसने कहा ? बेशक मैथुन एक जीवनदायिनी क्रिया है, लेकिन ब्रह्मचर्य का महत्त्व हम कदापि कम नहीं आँकते। सभी अघोरी ब्रह्मचारी ही होते हैं।"

"क्या आपकी बात में विरोधाभास नहीं ? एक ओर तो पुरुष द्वारा प्रकृति को अधिकतम भोगने की सिफारिश है। दूसरी ओर ब्रह्मचर्य के पालन का भी आग्रह है। क्या अभी-अभी अघोरियों ने यहाँ मैथुन नहीं किया ? फिर वे ब्रह्मचारी कैसे ?" मैं बोला, "ऐसे विरोधाभास पर कौन चुप रहेगा ?"

"इसमें विरोधाभास जैसा कुछ नहीं है।" निकुम्भ ने उत्तर दिया, "अघोरियों ने ब्रह्मचर्य के शाब्दिक अर्थ को कभी स्वीकार नहीं किया। अघोरी तो प्रकृति के परम पूजक हैं, जबकि ब्रह्मचर्य, अपने रूढ़ और शाब्दिक अर्थ में, प्रकृति से पूर्णतया विरुद्ध है। ब्रह्मचर्य तो प्रकृति-द्रोह है। अघोरियों की मान्यताओं को मैं यों स्पष्ट करूँगा कि किसी भी अघोरी को, तांत्रिक-साधना के अलावा, किन्हीं भी अन्य स्थितियों में मैथुन का अधिकार नहीं होता। तांत्रिक साधना का मैथुन भी सार्वजनिक समारोह के समय ही हो सकता है। छिपकर, निजता के साथ किया हुआ मैथुन, अघोरियों के पंथ में, केवल व्यभिचार है। ऐसे व्यभिचार के लिए हमारे यहाँ अत्यन्त कठोर दंड की व्यवस्था है। सार्वजनिक तांत्रिक-साधना के समय भी, नारी-देह में विसर्जन को घोर व्यभिचार माना गया है। इसके लिए भी अत्यन्त कठोर दण्ड का विधान है। देह-मिलन के क्षणिक आनन्द को भी अघोरी अपने तंत्र-मंत्र से कितनी दीर्घ अवधि तक स्थिर रख सकते हैं, यह आप प्रत्यक्ष देख चुके हैं। हमारे इस योग में पशुपतिनाथ शिव का तत्वज्ञान छिपा हुआ है।"

निकुम्भ के शब्दों ने मुझे गहरे सोच में डुबा दिया। जीवन और मृत्यु को मानव ने जितना रहस्यमय पाया है, उतना ही देह-मिलन के क्षणिक आनन्द को भी। इस क्षणिक आनन्द को दीर्घ अवधि का आयाम देने के लिए मानव ने सभ्यता के प्रारम्भ से ही न जाने कितने प्रयास किए हैं। इन प्रयासों ने, प्रत्यक्ष या प्रच्छन्न रूप से, मानव के धार्मिक, राजनयिक और सामाजिक इतिहास को प्रभावित किया है। सभ्यताओं के उत्कर्ष और पतन के साथ इस परम आनन्द को, प्रकट या परोक्ष रूप से, जुड़ा हुआ प्रायः देखा गया है।

योगियों द्वारा कुण्डलिनी की जागृति के प्रयास बार-बार हुए हैं। कुण्डलिनी जगाने के पीछे परम आनन्द पाने की ही ललक है। मुझे तो कुण्डलिनी की खोज उतनी ही

रोमांचक लगती है, जितनी स्वयं ईश्वर की खोज। जिस तरह ईश्वर के वास्तविक रूप को आज तक कोई नहीं पा सका, उसी तरह कुण्डलिनी का वास्तविक रूप भी किसे ज्ञात है ? कुण्डलिनी को शाश्वत आनन्द का स्रोत माना गया है। इस शाश्वत आनन्द के "दैहिक अर्थ" को समझना मुश्किल नहीं है। योगियों ने बताया है कि कुण्डलिनी नाभि के नीचे, पेड़ू के आसपास 'कहीं' है। उन्होंने इसे जीवन-शक्ति का कुण्ड कहा है। कुछ ने इसे नाग की तरह कुण्डल लगाकर बैठी महाशक्ति बताया है। विज्ञान की शब्दावली से परिचित योगियों ने कहा है कि कुण्डलिनी तो मानव के अणु-अणु में व्याप्त है। क्या चेतना ही चरम जागृत होकर कुण्डलिनी बन जाती है ? कुण्डलिनी है भी या नहीं ? सच्चाई चाहे जो हो, इस तथाकथित कुण्डलिनी को जगाकर 'शाश्वत आनन्द' पाने के लिए योगियों ने अनेक प्रयोग किए हैं। ये प्रयोग कहीं तो विशिष्ट प्रकार के श्वांसोच्छ्वास से जुड़े हैं, तो कहीं हठयोग के विशिष्ट आसनों के साथ।

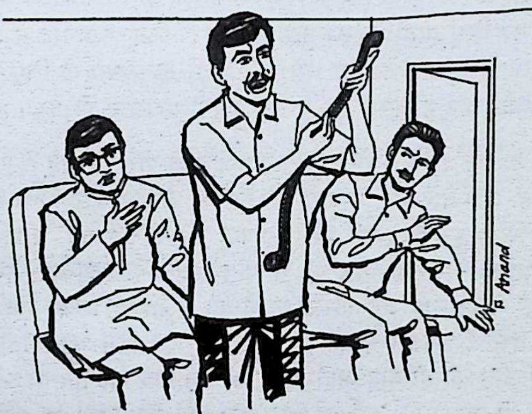
एक पूज्य जैन साधु से मैंने विपश्यना की साधना सीखी थी। कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चिन्तानुपश्यना और धर्मानुपश्यना आदि उस साधना के विविध अनुभव हैं। अंतर्विपश्यना के अनुभव में उन्होंने मुझे कुण्डलिनी जागृत करने की क्रिया से परिचित कराया था। इसके बाद, एक अन्य योगी ने मुझे बताया था कि कुण्डलिनी जागने के बाद, षट्चक्रभेदन कैसे किया जाए। मैंने ये सब क्रियाएँ करके देखीं और यही निष्कर्ष निकाला कि इनका एकमात्र प्रयोजन उसी 'शाश्वत आनन्द' को दीर्घ आयाम में प्राप्त करना है, जिसका उल्लेख मैं अभी-अभी कर चुका। कुण्डलिनी की यह व्याख्या मैंने बरसों के विचार एवं प्रयोगों के बाद प्राप्त की है। वह व्याख्या न केवल सरल है, सटीक भी है।

किन्तु, इस व्याख्या का अर्थ यह नहीं है कि मैं कुण्डलिनी के अस्तित्व का अनुमोदन कर रहा हूँ। यदि शाश्वत आनन्द मिल गया है, तो कुण्डलिनी अपने आप जाग जाती है, बशर्ते कुण्डलिनी का अस्तित्व सचमुच हो। इसे और स्पष्ट करने के लिए मैं एक छोटा-सा उदाहरण दूँगा। बचपन से, पुस्तक में छपा एक वाक्य मैं रटता आया था, 'सुबह होने पर सूर्य निकलता है।' रट-रट कर यह वाक्य मैंने आत्मसात् कर लिया था। कभी इस वाक्य के विरुद्ध सोच पाने का प्रश्न ही नहीं था। इसके बावजूद इसके विरुद्ध सोचेने का एक अवसर आया।

मैं एक प्रिंटिंग प्रेस में नौकरी कर रहा था। वहाँ बच्चों की वही पुस्तक छप रही थी और उसमें—बरसों बाद भी—वह वाक्य ज्यों-का-त्यों मौजूद था, 'सुबह होने पर सूर्य निकलता है।' मैंने अधिकारियों का ध्यान इस ओर खींचा। अंततः उस वाक्य को बदल कर यूँ कर दिया गया, 'सूर्य निकलने पर सुबह होती है।' हकीकत भी यही है। सूर्य निकलने पर ही सुबह होती है, न कि सुबह होने पर सूर्य निकलता है। फिर भी हम, औसतन, यही मानकर चलते हैं कि सुबह होने पर सूर्य निकलता है।

बारह

मूठ का वह भयानक शिकंजा



क्या कुण्डलिनी सचमुच होती है ? हजारों वर्षों से अगणित योगी कहते आए हैं कि कुण्डलिनी सचमुच है और उसे जागृत करने से शाश्वत आनन्द मिलता है। कुछ ने परम शक्ति मिलने का भी दावा किया है। जो भी हो, अपने शब्दों को फिर दोहराता हूँ कि यदि शाश्वत आनन्द मिल गया है, तो कुण्डलिनी—यदि वह है, तो अपने आप जाग जाती है। जिस प्रकार सूर्य निकलने के बाद सुबह होती है या नहीं होती, इससे फर्क नहीं पड़ता, उसी प्रकार आनन्द मिल जाने के बाद कुण्डलिनी जागृत होती है या नहीं होती, इससे भी कोई फर्क नहीं पड़ता।

यह तर्क मैंने निकुम्भआनन्द के सामने रखा। फिर कहा, "निकुम्भ जी ! मैंने यह सब न जाने कितनों को बताया है, किन्तु किसी को भी सहजता से आनन्द प्राप्त करना अच्छा नहीं लगता। सभी को जटिल उपासना की ही तलाश है। भ्रम में डुबा देने वाला आडम्बर ही सबको पसन्द है।"

"भ्रम...शिवानन्द जी ने मुझे बताया था कि आप अपने एक दोस्त को भ्रम के भंवर में डूबने से बचा नहीं सके थे।"

"हाँ................" मैं बुदबुदा उठा, "मेरे उस दोस्त का नाम था जगजीत। वह मेरा सहयोगी फोटोग्राफर था। एक अघोरी ने उसे भ्रम के भंवर में फँसा दिया। मैंने जगजीत से एक सीधी और सरल बात कही थी, "यदि अपना मनोबल नहीं छोड़ोगे, तो तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा।" वह मेरी बात पर विश्वास न कर सका, क्योंकि मैंने जो कहा था, बहुत सीधे और सरल ढंग से कहा था। मेरी सरलता उसके अंधविश्वास को न काट सकी। यदि मैंने आडम्बर अपनाया होता, अपनी बात को जटिल बनाकर पेश किया होता, तो शायद नतीजा वह न निकलता, जो कि निकला। मेरा मनोबल जगजीत की रक्षा न कर सका, क्योंकि स्वयं जगजीत ने अपना मनोबल छोड़ दिया था। एक औसत आदमी का अंधविश्वास और किसी अघोरी का तपा हुआ आत्म-बल, ये दोनों मिलकर कितने विचित्र चमत्कार कर सकते हैं, इसी की दर्दनाक कहानी जगजीत की कहानी है। यह कहानी ऐसी करुण है कि याद करने को भी जी नहीं चाहता।"

"कृपया मेरे लिए याद करिए। मुझे सुनाइए।" निकुम्भआनन्द ने आग्रह से कहा। हम दोनों उस आग के पास जा बैठे, जो पशुओं को दूर रखने के लिए जलाई गई थी। भूतकाल को उकेर कर, स्निग्ध स्वर में मैंने अपनी पराजय की कथा शुरू की...........।

रात भर मैं और प्रमोद बारी-बारी से जगजीत के पास बैठे रहे थे। नींद में वह रात भर कराहता रहा था। बार-बार वह ऐसे रोने लगता, जैसे न जाने किस विचित्र पीड़ा को सह रहा हो। सिवा इसके दूसरी कोई हरकत उसने नहीं की। सुबह जब उठा, तो थकान और निराशा ने उसके चेहरे की चमक बिल्कुल बुझा दी थी। मैंने और प्रमोद ने उसे डाक-बंगले में ही रुक कर आराम करने की सलाह दी। फिर हम दोनों वेलूर की मूर्तिकला की तस्वीरें खींचने के लिए रवाना हो गए। दिन भर फोटोग्राफी करने के दौरान हमें जगजीत की ही याद आती रही। सामान पैक कर हम डाक-बंगले में वापसी की तैयारी कर ही रहे थे कि वहाँ का चौकीदार हमीं को ढूँढ़ता आ पहुँचा। उसका रंग उड़ा हुआ था। उसने हड़बड़ाते हुए बताया कि जगजीत को अचानक बहुत तेज बुखार चढ़ा था।

हम लोग जीप में बैठ कर फर्राटे से लौटने लगे। रास्ते से ही हमने एक डॉक्टर को साथ ले लिया।

पहुँचते ही देखा कि स्वामी शिवानंद जगजीत के पास बैठे थे। उन्हें सामने पाकर मुझे बड़ी शान्ति अनुभव हुई। उन्होंने कहीं से कोलोन-वॉटर प्राप्त कर उसकी पट्टियाँ जगजीत के मस्तक पर रखना शुरू कर दिया था। डॉक्टर ने जगजीत की जाँच शुरू की । उन्होंने जगजीत के मुहँ में थर्मामीटर लगाया। स्टेथोस्कोप लेकर वह जगजीत के पेट और छाती की भीतरी आवाजें सुनने लगे। जोरों से साँस लेने के कारण जगजीत की छाती बार-बार उठ-गिर रही थी। सहसा मैंने देखा कि ड़ॉक्टर महोदय अपने स्टेथोस्कोप को झटकने जैसी चेष्टा कर रहे हैं। मुझे उनकी यह हरकत विचित्र लगी। उन्होंने स्टेथोस्कोप जगजीत की छाती पर दुबारा रखा। कुछ पल वह ध्यान से सुनते रहे। उनके चेहरे पर आश्चर्य और अविश्वास के भाव उभरने लगे थे। स्टेथोस्कोप के

छोर कान में से निकाल कर उन्होंने अपनी उंगली से ऐसा प्रयास किया, जैसे कान का मैल निकालना चाहते हों।

मैंने चकरा कर पूछा, "क्या बात है, डॉक्टर ?"

"सरप्राइजिंग ! आवाज ही नहीं आ रही है।" कहते हुए उन्होंने स्टेथोस्कोप को फिर से झटकारना शुरू किया। शायद स्टेथोस्कोप खराब हो गया था। मैंने जगजीत की छाती पर अपना कान रखा। धड़कन बेहद तेज थी मैंने डॉक्टर से कहा, "जरूर आपके स्टेथोस्कोप में ही गड़बड़ी है।"

दोनों छोर कानों में लगा कर डॉक्टर ने स्टेथोस्कोप से खुद अपनी धड़कन सुननी चाही। घोर आश्चर्य से वह बोले, "लेकिन मेरी धड़कन तो सुनाई दे रही है।" तुरन्त उन्होंने स्टेथोस्कोप को जगजीत की छाती पर रखा। फिर वही आश्चर्य ! जगजीत की छाती का कोई स्वर स्टेथोस्कोप नहीं पकड़ रहा था। आखिर मेरी तरह डॉक्टर ने भी जगजीत की छाती पर अपना कान रखा और धड़कनें सुनीं।

कुछ सेकण्ड बाद उन्होंने जगजीत के मुँह में से थर्मामीटर निकाला। बड़ी देर तक वह थर्मामीटर को अविश्वास से देखते रहे। फिर बुदबुदाए, "ऐसा कैसे हो सकता है ?"

उन्होंने थर्मामीटर मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने ध्यान से देखा। पारा नार्मल टेम्परेचर से भी नीचे तक उतर गया था। मेरे भी आश्चर्य की सीमा न रही। जगजीत का शरीर तो भट्टी की तरह तप रहा था।

"आपके थर्मामीटर में कोई गड़बड़ी होनी चाहिए।" मैंने कहा। सिवा इसके मैं और कह भी क्या सकता था ? उन्होंने थर्मामीटर को थोड़ी देर तक अपनी हथेलियों के बीच दबाए रखा। फिर उसके पारे की जाँच की और मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा, "देखिए, नार्मल टेम्परेचर दिखा रहा है।"

अब हम सभी के लिए स्तब्ध हो जाने की बारी थी। कैसा खेल था यह ? क्या यह उस अघोरी का चमत्कार था या केवल हमारा भ्रम ? थर्मामीटर और स्टेथोस्कोप को हम तीनों ने कई बार जाँचा किन्तु नतीजा वही का वही। हार कर मैंने डॉक्टर से केवल इतना निवेदन किया, "जगजीत का बुखार उतर जाए और यह दो घड़ी चैन की नींद ले सके, ऐसी दवायें दे जाइए।"

डॉक्टर ने कुछ दवायें दीं। पेनिसिलिन का एक इंजेक्शन भी लगाया। बुखार की तीव्रता कम न होने की सूरत में मस्तक पर कोलोन-वाटर की पट्टियाँ रखने या बर्फ घिसने की सलाह देकर जब वह जाने लगे, तब अपने-आप से ही न जाने क्या बड़बड़ा रहे थे। उनके हाथ आश्चर्यसूचक विचित्र हरकतें कर रहे थे।

घण्टे भर तक हममें से कोई कुछ न बोल सका। जगजीत की हालत में कोई सुधार न हुआ। मैंने बैरे से कुछ चाय-नाश्ता लाने के लिए कहा। भूख तो जोरों की लगी थी, किन्तु चाय-नाश्ता की भी इच्छा मुश्किल से हुई।

नाश्ते के बाद मैं और शिवानंद जी बातें करते हुए बैठ गए। अघोरी और उसकी मूठ के सिवा किसी अन्य विषय पर बातें करने की स्थिति में हम थे ही नहीं। स्टेथोस्कोप

और थर्मामीटर जैसी निर्जीव वस्तुओं को भी अघोरी की इच्छानुसार कार्य करते देखकर मेरी व्यग्रता की सीमा नहीं रही थी।

वर्षों के प्रयोगों, साधना और अनुभव के बाद मैंने जो प्राप्त किया है क्या वह सब झूठा है ? व्यर्थ है ? मैंने न जाने कितनी बार सिद्ध किया है कि आत्मा नामक किसी तत्व का अस्तित्व इस संसार में नहीं है। दैवी चमत्कार या तो हाथ की सफाई होते हैं या केवल विकसित मलोबल के प्रयोग। गुरु चैतन्यानंद ने मुझे जिस कल्पना-योग की दीक्षा दी है, क्या वह झूठी है ? कल्पना-योग तो कहता है कि स्वयं को पहचानो। मैंने स्वयं को पहचाना है।

इसी पहचान के जोर पर मैंने न जाने कितनों के भ्रम दूर किए हैं। उन्हें भूत-पिशाच के अंधविश्वास से बाहर निकाला है। वही मैं, आज हार क्यों गया ? मेरी आँखों के सामने, मेरे सम्पूर्ण विवेक को चुनौती देते हुए, अभी जो चमत्कार हुए, उनका क्या स्पष्टीकरण है ? एक अघोरी, जो यहाँ से न जाने कितने किलोमीटर दूर बैठा है, ऐसे चमत्कारों का निर्माण और नियंत्रण कैसे कर सकता है। क्या उसकी सहायता पिशाच कर रहे हैं ? किन्तु गुरु चैतन्यानंद ने तो मुझे यही दीक्षा दी है कि प्रेत-व्रेत कुछ होते ही नहीं। संसार में कहीं कोई पिशाच नहीं है, आत्मा नहीं है, पुनर्जन्म नहीं है और पूर्वजन्म भी नहीं है जो कुछ है, इसी जन्म में है और इसी धरती पर है। धरती पर भी, सार्थकता केवल मनुष्य के आत्म-बल में है। आत्म-सम्मान में है...........किन्तु अभी जो चमत्कार हुए, क्या वे गुरु चैतन्यानंद को झुठला नहीं रहे ?

अगले दिन हमने उसी डॉक्टर को फिर बुलाना चाहा, तो उन्होंने जगजीत की जाँच करने से ही साफ इन्कार कर दिया। भय के कारण वह सारी रात सो नहीं सके थे और खुद उन्हीं को तेज बुखार हो गया था।

सुबह जगजीत का बुखार कुछ कम मालूम पड़ा। हमने तय किया कि यहाँ का काम अधूरा छोड़ कर बैंगलोर लौट जाएँ। दोपहर तक हमने सामान पैक कर लिया। रवानगी के समय जगजीत की तबीयत में थोड़ा और सुधार हुआ। स्वामी शिवानंद यह कह कर जुदा हो गए कि वह दो-एक दिन बाद हमसे बैंगलोर में मुलाकात करेंगे।

मैंने जगजीत को समझाने का प्रयास प्रारम्भ किया, "देखो, यार ! तुम फालतू उस बाबा से इतने डरे हुए हो। भूल जाओ उसे। डर रहे हो, इसीलिए वह डरा रहा है। दरअसल, वह डरा नहीं रहा, बल्कि तुम खुद-ब-खुद डर रहे हो। मन इतना कच्चा न करो। उसे मजबूत रखो। कठोर मन के व्यक्ति को कोई मूठ-ऊठ नहीं सता सकती। भूल जाओ उस अघोरी को। उसकी मूठ का कोई मतलब नहीं है।"

जगजीत मेरी ओर ऐसे देखता रह जाता, जैसे मैं उसके सामने होकर भी न होऊँ। मैं घन्टे भर तक उसे आत्म-बल और आत्म-सम्मान के बारे में बताता रहा। अद्भुत मानसिक शक्ति के जो अनुभव मैंने लिए थे उन्हें बयान किया। खूब अच्छी तरह समझाया कि यह मनुष्य का मन ही है जो उसे डुबाता है या उबारता है।

हम बैंगलोर में अपने होटल पर आ पहुँचे। पूरी यात्रा में हमने अपना मुख्यालय उस होटल को ही बना रखा था। आसपास के इलाकों में दो-दो, तीन-तीन दिनों के टूर

करके हम वापस उसी होटल में आ जाया करते। मैनेजर के सहयोग से हमने अपने बाथरूम में ही कुछ रद्दोबदल करके डार्क-रूम तैयार कर लिया था। रीलें डेवलप करने और जरूरी प्रिंट्स निकालने के कार्य हम वहीं हाथ-के-हाथ निबटा लिया करते।

बैंगलोर पहुँचने के बाद, जगजीत की अनिच्छा के बावजूद, हमने एक प्रसिद्ध डॉक्टर को बुला कर उसकी जाँच करवाई। डॉक्टर ने दवाएँ दीं, इंजेक्शन लगाए और पूरा आराम करने की सलाह दी। अगले दिन जगजीत काफी ठीक हो गया। उसने कुछ खाया-पीया भी। मैंने और प्रमोद ने सोचा, बैंगलोर में ही थोड़ी फोटोग्राफी कर लें। जगजीत को कुछ रीलें देकर हमने कहा कि इन्हें डार्क-रूम में डेवलप कर रखना। उन रीलों को तुरन्त डेवलप करना आवश्यक न होते हुए भी हम जगजीत को कुछ काम सौंप कर जाना चाहते थे। हम जानते थे कि यदि उसका दिमाग खाली रहा, तो वह फिर से उसी अघोरी के बारे में सोचने लगेगा।

चारेक घण्टों बाद मैं और प्रमोद जब बाहर से लौटे, तब जगजीत डार्क-रूम में ही घुसा हुआ था। वहाँ से किसी गीत की गुनगुनाहट सुनाई दी। मैंने प्रमोद की ओर देखा। हम दोनों के चेहरों पर से चिन्ता के बादल हटने लगे। मैंने इन्टरकॉम पर इडली और कॉफी लाने का आदेश बैरे को दिया।

तभी बाथरूम का दरवाजा खुला। हाथ में गीली रील लिए जगजीत बाहर निकला। मुझे देखकर वह मुस्कराया और अपने उसी परिचित अल्हड़ लहजे में बोला, "क्यों, बे ! कब आया तू ?"

लेकिन मैं कुछ बोल सकूँ, इससे पहले ही जगजीत के मुँह से एक भयानक चीख निकल पड़ी। मैं और प्रमोद चौंक कर उठ पड़े। जगजीत अपने दोनों हाथों में डेवलप की हुई गीली रील को पकड़ कर खड़ा था। वह थरथर काँप रहा था। भयंकर भय से उसका चेहरा काला पड़ गया था। मैं और प्रमोद लपक कर उसके पास पहुँचे। उसने वह रील मेरे हाथ में दे दी। अगले क्षण वह गश खाकर फर्श पर लुढ़क गया।

मैंने रील में देखा। रील के प्रत्येक फ्रेम में उसी अघोरी का भयानक चेहरा अंकित था। अगले ही क्षण मेरे हाथ काँपने लगे।

तेरह

रहस्य 'विचार-फोटो' का



सबसे पहले मैंने प्रमोद को डॉक्टर बुलानें के लिए दौड़ाया। डॉक्टर के आते-आते जगजीत होश में आ चुका था, किन्तु उसकी हालत बेहद बिगड़ी हुई थी। मेरी ओर वह ऐसे ताकने लगता, जैसे पहचान ही न पा रहा हो। उसकी आँखें भय से लगातार फैली हुई थीं। हमारे लिए तो यह भी एक उलझन ही थी कि डॉक्टर को सच्ची बात बताई जाए या नहीं। प्रमोद से मैंने कहा था कि डॉक्टर को सिर्फ इतना बतायें, "मरीज को बिजली का करेंट लगा है। बेल्लूर में हमने जिस डॉक्टर से दवा ली थी, उसे भी हमने अघोरी बाबा की कोई जानकारी नहीं दी थी।

किन्तु हमें लग रहा था कि जगजीत की माँ और बीबी को उसकी विचित्र बीमारी की खबर तुरन्त दे दी जाए। कभी हम ऐसा भी सोचने लगते कि सारा काम ज्यों-का-त्यों छोड़कर मुंबई लौट जायें।

जगजीत की जाँच करने के बाद, दवा की स्लिप लिखकर डॉक्टर जा चुका था। प्रमोद को दवा के लिए रवाना करके मैंने डार्क-रूम में प्रवेश किया। जगजीत सो गया था। उसे नहीं मालूम था कि मैं डार्क-रूम में अन्य रीलों की जाँच कर रहा हूँ। पिछले तीन दिनों में जितनी भी रीलें जगजीत ने एक्सपोज की थीं, उन सभी के प्रत्येक फ्रेम में

अघोरी की मुखाकृति दिख रही थी। कहीं-कहीं वह सिर से पैर तक भी अंकित हुआ था। यह सारा अंकन कहीं बहुत स्पष्ट था तो कहीं धुंधला भी था। जो रीलें मैंने और प्रमोद ने एक्सपोज़ की थीं उनमें अघोरी की प्रतिछाया कहीं नहीं थी।

यह कैसे हुआ ? मेरे विचार, मेरी मान्यताएँ, मेरी योग-साधना, मेरे प्रयोग, मेरी अनुभूतियाँ, मेरा धर्म, मेरा कर्त्तव्य—सबको हचमचा देने वाला, बिल्कुल नकार देने वाला सवाल था यह। ऐसा चमत्कार आखिर कैसे हुआ ?

लगभग तीन वर्ष बाद मैं इस रहस्य का उत्तर पा सका था।

वह प्रसंग मुम्बई का था। मुझे एक विवाह समारोह के फोटो खींचने का आदेश मिला था। आदेश कन्या पक्ष की ओर से था। कन्या मेरी जान-पहचान की थी। मालदार पार्टी थी। विशाल कुटुम्ब था। मेरा बिल तगड़ा बनेगा, इस विचार से मैं उत्साहित था। कन्या पक्ष की ओर से गरबा-रास का जो आयोजन हुआ, उसके फोटो मैं देर रात तक खींचता रहा। फिर, अगले दिन सुबह से ही ड्यूटी पर हाजिर हो गया। विवाह की प्रत्येक विधि के फोटो खींचे जाने थे। दिन भर खड़े-खड़े काम किया। कन्या की विदा के बाद भी, जब तक कौड़ियाँ न खेल ली गईं, तब तक मैं अपना कैमरा क्लिक करता ही रहा।

दो दिन बाद रीलें डेवलप कीं। सूखने पर इन्हें मैग्नीफायर से जाँचा। ऐसा लगा, जैसे चारेक निगेटिव्स खराब हो गई हैं। एक निगेटिव 'पोंखने' के समय की थी। 'पोंखना' तिलक से मिलती-जुलती रस्म है। दूल्हा जब दरवाजे पर आकर खड़ा हो जाता है, तब कन्या उसे माला पहना कर स्वागत करती है फिर सास दूल्हे को 'पोंखती' है। मैंने निगेटिव को एन्लार्जर में रखकर जाँचा। खराबी क्या है, यह अब भी स्पष्ट न हुआ। आखिर मैंने उस निगेटिव को फुल साइज में प्रिंट किया। प्रिंट को डेवलपर में डालकर हिलाता रहा। एकाध मिनट बाद फोटो आकार पाने लगा। जब वह सुस्पष्ट हो गया, तब मैंने डार्क-रूम की लाल सेफ-लाइट में उसे गौर से देखा। देखते ही मैं चौंक गया।

फोटो बहुत सुन्दर और स्पष्ट था, केवल दूल्हे का सिर नजर नहीं आ रहा था। मैंने प्रिंट को हाइपो में डालकर फिक्स किया। फिर मैंने रोशनी जलाकर उसे देखा। मेरे आश्चर्य की सीमा न रही। बड़े चमत्कारिक ढंग से पूरा सिर अदृश्य था। यहाँ तक कि सिर के पीछे का व्यक्ति भी स्पष्ट दिख रहा था। दूल्हे के सिर के स्थान पर कोहरे जैसी धुँधली छाया भर थी।

दूसरी निगेटिव हस्त-मिलाप के अवसर की थी। मैंने उसे भी प्रिंट किया। उसमें दूल्हे के हाथ डबल दिखाई दे रहे थे। उसके सिर की जगह किसी और ही पुरुष का सिर था।

तीसरी निगेटिव रिसेप्शन की और चौथी कन्या की विदाई की थी। इनमें भी दूल्हे के ही स्थान पर कुछ गड़बड़ी थी। डबल एक्सपोज (फोटो पर फोटो) की तरह, दूल्हे की पूरी आकृति पर किसी और पुरुष की आकृति अंकित दिखाई दी।

मेरा आधुनिक कैमरा डबल एक्सपोज तो दे ही नहीं सकता था। फिर यह कैसे हुआ ? मेरी बौखलाहट क्षण-क्षण बढ़ती चली।

एक प्रश्न यह भी था कि अब मैं कन्या पक्ष वालों के सामने फोटोग्राफों का एल्बम बनाकर रखूँगा कैसे ? 'पोंखने' से पहले कन्या द्वारा दूल्हे को माला पहनाए जाने का फोटो और हस्त-मिलाप का फोटो—इनके बिना एल्बम भला कैसे पूरा होगा ? जवाब क्या दूँगा मैं ?

कुछ न सूझा, तो मैंने शेष निगेटिव्स को प्रिण्ट कर डाला। अगले दिन कन्या के यहाँ फोन भी कर दिया कि फोटोग्राफ्स तैयार हैं, लेकिन एल्बम में चिपकाने से पहले एक बार यदि वर-वधु आकर उन्हें देख लें, तो बेहतर। कन्या के पिता ने कहा कि दोनों को आज ही शाम आपके यहाँ भेजूँगा। ऐसा फोन करने के पीछे मेरा आशय वास्तव में यह था कि मैं दूल्हे के सही सलामत होने की बाबत निश्चिंत होना चाहता था। कन्या के पिता का उत्तर सुनने के बाद मुझे चैन मिला।

रात हुई ही थी। कन्या अकेली मेरे घर आई।

हम पूर्व-परिचित तो थे ही। मैंने पूछा, "अकेली कैसे ?"

उसने हँसकर कहा, "उन्हें ऑफिस का कोई काम आ गया था।"

मैंने उसे बिगड़े हुए फोटोग्राफ दिखाए। वह ताकती रह गई। उसके चेहरे का रंग उड़ने लगा। उसने मुझी से पूछा, "ऐसा कैसे हो गया ?"

"यहीं मैं तुमसे पूछना चाहता हूँ।" मैंने कहा।

कन्या ने मनोविज्ञान में डॉक्टरेट ली हुई थी। मनोविज्ञान को लेकर, उसके साथ, कई बार मेरी लम्बी चर्चाएँ भी हुई थीं।

"इसमें यह जो दूसरा चेहरा दीख रहा है......जानते हैं, यह किसका है ?" उसने उस फोटो को छूते हुए कहा, जिसमें दूल्हे के सिर की जगह किसी और पुरुष का सिर अंकित था।

"मैं कैसे जान सकता हूँ ?"

"यह दिनेश का चेहरा है।" वह जरा काँपती आवाज में बोली।

"ओह !" मैं बुदबुदा उठा। दिनेश के बारे में वह मुझे पहले बता चुकी थी। वह जब एम. एस. सी. में थी, तब दिनेश उसके पड़ोस में रहता था। लड़की ने पहला प्यार उसी से किया था। दोनों एक-दूसरे को विवाह का वचन दे चुके थे। कुछ दिनों बाद दिनेश को टायफायड हो गया। लम्बी अवधि तक बीमार रहने के बाद अंततः दिनेश गुजर गया।

मानो दूर कहीं क्षितिज में देख रही हो, इस तरह सामने की दीवार पर नजरें ठहरा कर वह बोली, "जानते हैं मैं जब उन्हें माला पहना रही थी, तब मुझे दिनेश की तेज याद आ गई थी। दिनेश को मैं अपने अंतर से भूल नहीं सकी हूँ। हस्त-मिलाप के समय भी मुझे उसी की बड़ी तेज याद आई थी। रिसेप्शन के समय भी ... "

उस लड़की का मनोबल दृढ़ था और वह मनोविज्ञान की विद्यार्थिनी भी थी। कोई औसत लड़की होती, तो भूत के भ्रम में वह किस बुरी तरह फँसी होती और साथ में दूसरों को भी उसने कितना भ्रमित किया होता, मैं सोच नहीं पाता हूँ।

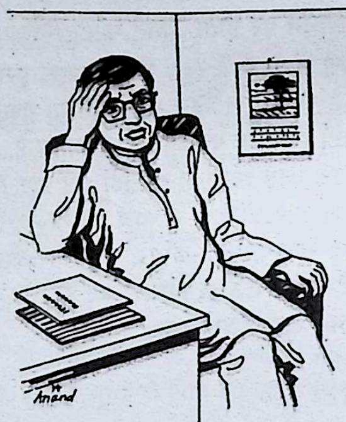
इसके एकाध साल बाद, 'युवदर्शन' के संपादकीय विभाग में मेरे साथ काम करता महिम पांधी, किसी विदेशी पत्रिका से काट कर एक लेख मुझे दिखाने लाया था। लेख का विषय था—'थाटोग्राफ'। जैसे 'फोटोग्राफ' वैसे 'थाटोग्राफ'। 'थाट' यानी विचार। 'थाटोग्राफ' यानी विचार का फोटो। लेख में बताया गया था कि किस प्रकार मनुष्य के तीव्र विचारों को कैमरे की रील पर अंकित करना असम्भव नहीं है। उस लेख ने मेरे मन के अनेक अनुत्तरित प्रश्नों को सुलझा दिया था।

टेड सीरीओस नामक एक अमेरिकी व्यक्ति ने 'थाटोग्राफ' के सन्दर्भ में बहुत सनसनी पैदा की है। मान लीजिए, टेड ताजमहल के बारे में सोच रहा है। आप टेड का फोटो खींचते हैं। रील धुलने पर पता चलता है कि कैमरे ने टेड का नहीं, ताजमहल का फोटो खींचा है। भले ही यह फोटो उतना स्पष्ट नहीं है, जितना कि ताजमहल के आमने-सामने जाकर खींचने पर होता, किन्तु फोटो निश्चित रूप से ताजमहल का है।

यह चमत्कार कैसे होता है ? स्वयं टेड के पास इसका कोई स्पष्टीकरण नहीं। किन्तु यह होता है। टेड सीरीओस जिस भी व्यक्ति या वस्तु का विचार करता है, उसी व्यक्ति या वस्तु का फोटो निगेटिव पर अंकित हो जाता है, भले ही कैमरे के सामने तो टेड ही बैठा हुआ हो। टेड कोई चालाकी तो नहीं कर रहा ? इस कौतूहल के साथ कई वैज्ञानिकों, मनोवैज्ञानिकों और डॉक्टरों ने स्वयं की मौजूदगी में टेड पर 'थाटोग्राफ' के प्रयोग किए हैं। अपवाद-स्वरूप, कभी-कभार, टेड सीरीओस असफल अवश्य रहा है, किन्तु अधिकांश निगेटिव्स पर टेड के विचारों का ही अंकन हुआ है, न कि स्वयं टेड का, जिसे कैमरे के सामने खड़ा किया गया।

चौदह

घोर अघोर का मानस तंत्र



कहते हैं, ईश्वर ने सिर्फ इतना विचार किया, 'संसार बन जाए' और संसार बन गया। मनुष्य में ईश्वर का अंश है ही। जब ईश्वर सिर्फ अपने विचार की शक्ति से इतने अतल, अगम्य संसार की रचना कर सकता है, तब मनुष्य भी अपने विचार की शक्ति से अगम्य चमत्कारों का सर्जन अवश्य कर सकता है। अघोरियों की विचार-शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी होती है। तंत्र-मंत्र की सहायता से वे अपनी विचार-शक्ति को साधते और बढ़ाते जाते हैं। इसीलिए वे ऐसे-ऐसे चमत्कार कर सकते हैं, जिन्हें विज्ञान के बने-बनाए नियमों द्वारा समझा ही नहीं जा सकता।

टेड सीरीओस की विचार-शक्ति अत्यधिक बढ़ी हुई थी। इस हद तक कि उसके विचारों के फोटोग्राफ़ खींच लेना भी असम्भव नहीं था। टेड के विचार-फोटो, यानी 'थाटोग्राफ', उसके समय की विश्व की सबसे बड़ी पत्रिका 'लाइफ' ने बाकायदा अपने फोटोग्राफर द्वारा खिंचवा कर प्रकाशित किए थे। डेनवर के विख्यात मनश्चिकित्सक डॉ. जूल आइजनबो ने टेड का विशेष अध्ययन कर एक पुस्तक भी लिखी थी, 'द वर्ल्ड ऑफ टेड सीरीओस'। पूरे विश्व में इस पुस्तक ने तहलका मचा दिया था। टेड पर किए गए

'थाटोग्राफ' के शत-प्रतिशत प्रयोग सफल न होते हुए भी, अधिकांश प्रयोगों में जो विलक्षण सफलता मिली थी, उसने विश्व को चौंका दिया था। उन प्रयोगों ने मानवीय मन की विलक्षण शक्तियों को ही उजागर किया था।

मुम्बई की उस शादी के जो फोटोग्राफ बिगड़ गए थे, वे दरअसल दुल्हन के 'थाटोग्राफ' ही थे। 'थाटोग्राफ' के सन्दर्भ का वह लेख मुझे जब पढ़ने को मिला था, तभी उस रहस्य की परतें कुछ खुली थीं।

इतना तो मुझे गुरु चैतन्यानन्द जी ने ही बता दिया था कि विश्व में जड़ वस्तु कोई नहीं है। जिन्हें हम जड़ मानते हैं, उनके भी अणु-अणु में परमाणुओं की जीवंत परिक्रमाएँ निरन्तर हो रही होती हैं। इसीलिए मानवीय मन के प्रबल आदेश को वे वस्तुएँ भी मान लेती हैं, जिन्हें हम जड़ समझते हैं। वास्तव में, उन वस्तुओं की जीवंतता इतनी कम होती है कि वे हमें जड़ लगती हैं। होती तो वे जीवंत ही हैं।

मानसिक शक्तियों की प्रबलता को विकसित कैसे किया जाए, इसे स्वयं अघोरी भी समझा नहीं सकते। वे तो केवल अघोर कर्म करने और तंत्र-मंत्र सीखने की ही सिफारिश करते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से सोचें, तो सारे अघोर कर्म और सभी तंत्र-मंत्र केवल अपने मन को साधने के जरिए हैं। ये केवल जरिए ही हैं, स्वयं इनमें कोई शक्ति नहीं है। शक्ति तो स्वयं मन में ही छिपी और सोई पड़ी है। उसे केवल जगाना होता है।

मन की शक्तियाँ यदि अघोर कर्मों और मंत्रों आदि से जाग सकती हैं, तो उन्हें वैज्ञानिक उपकरणों से भी जगाया जा सकता है, किन्तु इन शक्तियों का वैज्ञानिक अध्ययन इतना कम हुआ है कि मानसिक चमत्कारों के विश्लेषण के लिए आवश्यक शब्दावली भी हमारे पास नहीं है।

जगजीत के किस्से को मैं टेड सीरीओस से भी अधिक विचित्र मानूँगा, क्योंकि टेड के विचारों के फोटो तो केवल तब खींचे जा सके थे, जब वह बाकायदा कैमरे के सामने आकर खड़ा हुआ था। जगजीत तो कैमरे के सामने आया ही नहीं था। उसने तो कैमरे को केवल संचालित ही किया था। इसके बावजूद उसके विचार कैमरे में अंकित हो गए थे। दरअसल सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते, हर क्षण, जगजीत ने केवल उसी अघोरी के बारे में सोचना शुरू कर दिया था। जगजीत के पास नियंत्रित मन की शक्ति नहीं थी, किन्तु मनुष्य के अनियंत्रित मन में भी असीम शक्ति भरी पड़ी है। जगजीत का मन इतना अनियंत्रित हो गया था कि अनजाने में उसमें अत्यधिक शक्ति आ गई थी। जगजीत का मन इतना घनीभूत होकर अघोरी का चिंतन कर रहा था कि कैमरे जैसी जड़ वस्तु भी उससे प्रभावित हो गई थी।

जगजीत के साथ, आगे और भी अनेक चमत्कार हुए—वीभत्स और करुण। उसके मन ने एक ऐसा संसार रच दिया था, जो विज्ञान अथवा तर्क के किसी नियम को स्वीकार नहीं करता था। अनियंत्रित मन की असीम शक्ति का जैसा परिचय मैंने जगजीत के माध्यम से पाया था। वैसा आज तक अन्यत्र कहीं नहीं पाया।

मानसिक शक्तियों को वैज्ञानिक स्तर पर समझने के लिए आज विश्व के सभी विकसित देश चिंतित हो उठे हैं। उन्होंने अनेक वैज्ञानिकों-मनोवैज्ञानिकों को इसी शोध-

कार्य पर लगा रखा है कि कैसे मानसिक शक्तियों को एकत्र करने या बिखेर देने की कलाओं का विकास किया जाए। कहने की जरूरत नहीं कि ऐसे प्रयासों को अत्यन्त गुप्त रखा जा रहा है। फिर भी इतना अनुमान सभी को है कि राजनीतिज्ञों द्वारा परमाणु शक्ति का जो दुरुपयोग हुआ है, वैसा ही, बल्कि उससे भी वीभत्स दुरुपयोग इन मानसिक शक्तियों का होगा।

यथासम्भव ऐसे यंत्र खोजे जा रहे हैं अथवा खोजे जा चुके हैं, जिनसे एक देश में बैठकर जो 'चिंतन' किया जाएगा, उसका प्रभाव दूसरे देश पर पड़ेगा। मसलन, भारत पूँजीवादी देश नहीं है, लेकिन यदि इसे पूँजीवादी बना देने में किसी विदेशी ताकत की दिलचस्पी है, तो वह अपने अड्डों में ऐसा प्रबल 'चिंतन' करवा सकती है, जिससे भारत की जनता और नेता; दोनों की विचारधारा पलट जाए और हम सब एकाएक ही पूँजीवादी ढंग से सोचने-समझने लगें।

लगता है आगामी वर्षों में मानवता को दारुण यातनाओं के एक ऐसे दौर से गुजरना पड़ेगा, जिसकी वीभत्सता की आज कल्पना भी नहीं की जा सकती।

इतना निश्चित है कि युद्ध का स्वरूप आमूल बदल जाएगा। युद्ध करने के लिए कोई कहीं शायद जाएगा ही नहीं। सब केवल अपने-अपने अड्डों में बैठ जायेंगे और शत्रु के विरुद्ध प्रबल 'चिंतन' करेंगे। इसमें बाकायदा विभिन्न यन्त्रों की सहायता ली जाएगी। जिसका 'चिंतन' भारी पड़ेगा, उसकी कामनाएँ पूरी होंगी। जिसका 'चिंतन' कमजोर रहेगा, वह विजेता की मानसिक गुलामी करेगा। जरा उस दृश्य की कल्पना करिए कि किसी शत्रु देश ने ऐसा 'चिंतन' किया है, जिसके प्रभाव में सम्पूर्ण मुम्बई या सम्पूर्ण दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास, नागपुर आदि के एक-एक व्यक्ति ने सहर्ष आत्महत्या कर ली हो। निस्सन्देह मानवीय मन की असीमित शक्ति आज के युग की सबसे बड़ी चुनौती है।

इन मानसिक शक्तियों की चर्चा आज हमें जादुई लग सकती है, किन्तु ऐसा तो प्रत्येक वैज्ञानिक क्रान्ति से पहले हुआ है। गिनती के ही वर्ष पहले क्या हिप्नोटिज्म को काला जादू नहीं माना जाता था ? क्या लोग यह नहीं कहते थे कि हिप्नोटिस्ट तो प्रेत-पूजक हैं ? उसी हिप्नोटिस्ट को आज डॉक्टर माना जाता है और हिप्नोटिज्म को पूर्ण कला एवं विज्ञान का दरजा मिल चुका है। क्या मानसिक शक्तियों पर भी यही नियम लागू नहीं होगा ?

सबसे रोमांचक बात यह है कि मानसिक शक्तियों के जरिए अदृश्य में से दृश्य पैदा हो जाता है। अदृश्य हवा में से कुमकुम पकड़कर अपने भक्तों पर बिखेरते जाना, आकाश से अग्नि-किरण उतारकर चिलम या वेदी को जला लेना, हवा में से पत्थरों की बारिश कर देना, ये सब अदृश्य में से दृश्य पैदा करने के ही चमत्कार हैं। इन्हें साधारण अघोरी भी दिखा लेते हैं। असाधारण अघोरी क्या-क्या दिखा सकते हैं, इसकी तो जैसे कोई सीमा ही नहीं। अघोरियों के उस साधना-शिविर मैंने जो-जो देखा था...... ओह ! .....यकीन नहीं होता.....।

स्मरणीय है कि अघोरियों ने केवल भावना और श्रद्धा के स्तर पर ही मानसिक शक्तियों को साधा है। इन्हीं शक्तियों को जब वैज्ञानिक व्यवस्था से, जटिल यंत्रों की

सहायता से साधा जाएगा, जो कि शायद चुपके-चुपके हो भी रहा है, तब परिणाम कितने चौंकाने वाले होंगे, अनुमान कैसे लगाया जाए ?

अघोरी की इच्छा से कोई मर जाता है, कोई जी उठता है, कोई ठण्डा पड़ जाता है, कोई सुलग उठता है, कोई लेट जाता है, कोई अधर में लटक जाता है। शेर खुद को बकरी मान लेता है और बकरी शेर की तरह अकड़ कर चलने लगती है। टिकटिक करती घड़ी सहसा रुक जाती है, उड़ते हवाई-जहाज में विस्फोट हो जाता है, डरावना नरकंकाल अधर में उठकर नृत्य करता है।

ऐसे चमत्कार उस मानसिक शक्ति से सम्भव हुए हैं, जिन्हें अघोरियों ने वैज्ञानिक धरातल पर अभी समझा ही नहीं है। इन्हीं शक्तियों को जब वैज्ञानिक सूझबूझ के साथ, सरकारी सुविधाओं का संबल पाकर समझा और साधा जाएगा, तब क्या होगा ?

हम समाचार सुनते या पढ़ते हैं कि कहीं कोई व्यक्ति है, जिसके कपड़े अपने-आप फटने या सुलगने लगते हैं। किसी के घर का फर्नीचर अपने-आप खिसकता नजर आता है। किसी के यहाँ पत्थर गिरने लगते हैं। किसी के अंग अपने-आप ऐसे फटते हैं कि खून के रेले बह चलें।

ऐसे समाचारों को हम अंध-विश्वास, भ्रम या झूठ कहकर टाल जाते हैं। अक्सर ऐसे समाचार अंधविश्वास, भ्रम या झूठ के ही होते हैं, किन्तु और यह 'किन्तु' बेहद चुनौतीपूर्ण है—कभी-कभी ये सच भी होते हैं। इनका एक ही स्पष्टीकरण मेरे पास है, ये मनुष्य के अनियंत्रित मन के चमत्कार हैं।

ऋषि ने किसी को शाप दिया। अघोरी ने किसी को मूठ मारी। इससे क्या हुआ ? इससे व्यक्ति का मन अनियंत्रित हुआ। मन को नियंत्रित करने के लिए तो साधना चाहिए, किन्तु अनियंत्रित करने के लिए चाहिए...केवल भय और आशंका।

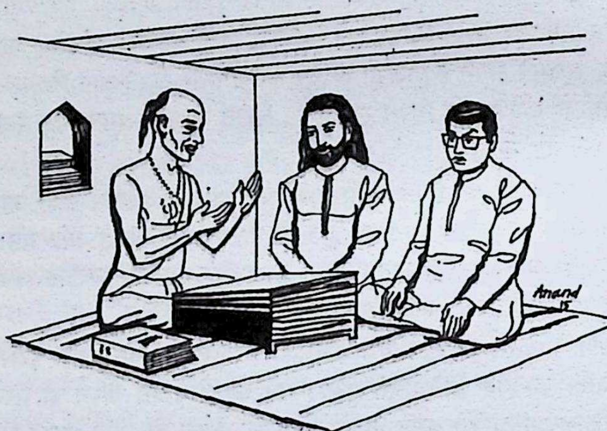
भय और आशंका से पीड़ित जगजीत के अनियंत्रित मन ने जो भीषण चमत्कार दिखाए थे, उनका प्रत्यक्ष साक्षी मैं रहा हूँ। स्व-निरीक्षण और स्व-अनुभव से मैं कह रहा हूँ, अनियंत्रिता मन के चमत्कार उतने ही विचित्र होते हैं, जितने नियंत्रित और सधे हुए मन के चमत्कार।

किन्तु ये सारी बातें मुझे आज मालूम हैं। उस वक्त मालूम नहीं थीं। मैं नियंत्रित मन के चमत्कारों से तो परिचित था, किन्तु अनियंत्रित मन के चमत्कारों पर से परदा मैं नहीं उठा पाया था। इसीलिए जगजीत के चुनौती भरे उदाहरण से मैं बुरी तरह विचलित हो गया था। गुरु चैतन्यानन्द ने मुझे 'कल्पना-योग' की जो दीक्षा दी थी, उसी के आगे प्रश्नवाचक चिन्हों का भयावह जंगल खड़ा हो गया था। अपना पूर्ण वैचारिक अस्तित्व मुझे व्यर्थ लगने लगा था। सिर पर हाथ धर कर बैठा रह गया था। मेरी आँखों के ऐन सामने ही जगजीत उस अघोरी के आतंक से अधिकाधिक दबता चला जा रहा था।

अगले ही दिन मैंने और प्रमोद ने बैंगलोर छोड़ देने का फैसला कर लिया। इससे हमें काफी आर्थिक नुकसान होने वाला था, किन्तु हम मजबूर थे।

पन्द्रह

भयानक शाण्डिल्यनाथ



हमने बोरिया-बिस्तर बाँध कर तैयार कर लिया। अब सवाल उठा कि जगजीत को किस प्रकार ले जाया जाए। कई बार वह इतना धमाल मचाता था कि चार जने भी मिलकर उसे संभाल नहीं पाते थे। ऐसी हालत में हम उसे हवाई-जहाज से तो ले नहीं जा सकते थे, ट्रेन से यात्रा करना भी हमें सुरक्षित नहीं लग रहा था। हम किसी बड़ी कार या स्टेशन-वैगन की खोज में थे, जिसमें जगजीत को आसानी से लिटा सकते।

तभी, अपने वादे के अनुसार, स्वामी शिवानन्द आ पहुँचे। मैंने सारा मामला उनके सामने रखा। वह कुछ सोचते रहे। फिर बोले, "क्या आपको लगता है कि यहाँ से चले जाने पर जगजीत ठीक हो जाएगा ?"

"क्या पता।" मैंने जवाब दिया, "मैं उसे उसकी माँ और बीबी को सौंप देना चाहता हूँ।"

"उससे समस्या हल न होगी।" शिवानन्द जी बोले, "जगजीत के मन से अघोरी का भय निकाल देना ही एकमात्र उपाय है। हमारे समझाने-बुझाने से भी उसका मनोबल नहीं जागा है। अब हमें इस समस्या को दूसरी तरफ से पकड़ना होगा।"

"किस प्रकार ?" मैंने पूछा।

"ऐसा करें, किसी तरह मना कर हम उस अघोरी को ही यहाँ ले आते हैं। अघोरी के पैरों पर गिर जायेंगे, गिड़गिड़ा कर माफी माँग लेंगे। किसी-न-किसी तरह उसे पटाना ही पड़ेगा। यदि वह यहाँ आकर जगजीत से कहे कि जाओ, मैंने तुम्हें माफ कर दिया तो निश्चित है कि मामला संभल जाएगा।"

फिल्म की रील पर अघोरी का चेहरा अंकित देखने के बाद मुझे भी यही लगा था कि पैर पकड़ कर उससे माफी माँग लेनी चाहिए।

मैंने कुछ निगेटिव्स लेकर उस अघोरी के फोटोग्राफ प्रिण्ट किए। जगजीत से झगड़े वाले दिन हमने उसे मुश्किल से पाँच मिनट के लिए देखा होगा। केवल इतना याद था कि उसका शरीर प्रचण्ड था और चेहरा भयानक। फोटोग्राफ देखकर तो मैं और ज्यादा चौंक गया। उसके चेहरे में जो भयानकता थी, उसे असीम ही कहा जाएगा। एक लम्बा निशान उसके गाल से शुरू होकर, पूरे मस्तक को पार करके, बालों तक पहुँच रहा था। न जाने किस चोट का निशान था वह। इससे उसके चेहरे का खूँखारपना और बढ़ गया था। गले में उसने जो माला पहन रखी थी, उसमें रुद्राक्ष के मनके तो थे ही, हड्डियों के टुकड़े भी थे। उसका दाहिना कान नीचे की तरफ फटा हुआ था।

नींद की दवा से प्रभावित जगजीत बेहोश-सा पड़ा था। मैंने प्रमोद से कहा, "डॉक्टर की सहायता से इसे लगातार ऐसे ही बेसुध रखना।" होटल के मैनेजर से भी मैंने आग्रह किया कि जरा वह जगजीत का ख्याल रखे। जगजीत के धमाल से मैनेजर घबरा चुका था। उसने हमसे विनम्रता के साथ कह भी दिया था कि हम होटल खाली कर दें। इसके बावजूद, हमारे समझाने-बुझाने से वह दो-तीन दिनों की मियाद देने को राजी हो गया।

मैं और स्वामी शिवानन्द मैसूर की ओर रवाना हो गए। अघोरी के मैसूर में होने की कोई खबर हमें नहीं थी। इसके बावजूद हम वहाँ गए, क्योंकि शिवानन्द जी के कुछ सूत्र वहाँ ऐसे थे, जो हमें अघोरी तक पहुँचा सकते थे—शायद।

शिवानन्द जी किसी के साथ हों, फिर परिचय का टोटा कभी नहीं पड़ सकता। इस घुमक्कड़ ज़ीव ने भारत के नगर-नगर, शहर-शहर में घूमकर अपनी मित्र-मंडली का अखिल भारतीय विस्तार कर लिया है। मैसूर में भी उनकी यही घुमक्कड़ी उपयोगी रही। हमारी जीप जब मैसूर में घुसी, तब रात्रि के दस बजने वाले थे। शिवानन्द जी के बताए रास्तों पर जीप आगे बढ़ी और एक मकान के सामने रुकी। मकान का दरवाजा बहुत बड़ा था। बरामदा भी बड़ा था। दरवाजे पर हमने लाइफ साइज का एक नंदी स्थापित देखा। सीमेण्ट से बना वह नंदी कर्नाटक संस्कृति का प्रतीक ही था। रंग चढ़ाकर उसका सीमेंटीपना छिपा दिया गया था। नगरपालिका की रोड-लाइट में, काले आकाश की पृष्ठभूमि पर, वह जीवंत-सा लग रहा था।

दरवाजा शिवानन्द जी ने ही खटखटाया। कुछ देर बाद एक ऐसे वृद्ध ने दरवाजा खोला, जो केवल लुंगी पहने हुए था। शिवानन्द जी को देखकर वह आश्चर्य और

आनन्द से गद्‌गद हो गया। फौरन उसने सामने से हटकर हमें रास्ता दिया और दक्षिण भारतीय लहजे में अंग्रेजी बोलते हुए कहा, "स्वागत है। इस वक्त अचानक आपको देखकर मुझे आश्चर्य भी कम नहीं। अवश्य कोई विशेष बात है। पधारिए !"

शिवानन्द जी ने मेरा परिचय एक फोटोग्राफर दोस्त के रूप में दिया। कष्ट के लिए क्षमा-याचना की। फिर निवेदन किया कि हम दो के अलावा जीप के ड्राइवर के लिए भी एक-दो रातें ठहरने की व्यवस्था वह अपने यहाँ कर दें। वृद्ध ने खुशी से हामी भर दी। उन्हें धन्यवाद देकर हमने जीप में से सामान निकलवाया और घर में रखा।

वृद्ध का परिचय स्वामी शिवानन्द ने मुझे रास्ते में दे दिया था। वह कन्नड़ के अलावा संस्कृत के भी महा-विद्वान थे। गूढ़ विद्याओं में उनकी गहरी रुचि थी। जगजीत को मूठ मारने वाला अघोरी उस वृद्ध से यदि एक बार भी मिला होगा, तो उसका अतापता वृद्ध के पास अवश्य होगा। तंत्र-मंत्र के अनेक जानकार वृद्ध के परिचित थे। इसके अलावा, मूठ के बंधन से छूटने का कोई उपाय भी वृद्ध को मालूम हो सकता था।

मैंने और स्वामी शिवानन्द ने उनके अध्ययन-कक्ष में प्रवेश किया। वह किसी अत्यन्त पुरानी पुस्तक को पढ़ने में लीन थे। पुस्तक बहुत ही जर्जर हालत में थी। हमें देखकर उन्होंने उसे बड़ी सावधानी के साथ एक तरफ रख दिया।

शिवानन्द जी ने उन्हें जगजीत का सारा किस्सा अंग्रेजी में कह सुनाया। वह अपने मुण्डन किए हुए सिर पर हाथ फेरते रहे। लम्बी, मोटी और सफेद चोटी की गठान खोलने और बंद करने का उनका खेल भी निरन्तर जारी रहा।

किस्सा सुनकर वह पल भर चुपचाप सोचते रहे। तब, अत्यन्त धीमी बुदबुदाहट में उन्होंने कहा, "शाण्डिल्यनाथ !..... भयानक !... "

'भयानक' शब्द का उनका उच्चारण ऐसा था कि मैंने ठंड-सी महसूस की। साथ-साथ हल्की आशा भी बँधी, क्योंकि वह उस अघोरी को अवश्य पहचानते थे। तभी तो उन्होंने बाकायदा उसका नाम लिया। मैं मन-ही-मन स्वामी शिवानन्द जी को धन्यवाद देने लगा। सम्पर्क सूत्र का उनका अन्दाजा कितना सही निकला था। वह न होते, तो मैसूर जैसे बड़े शहर में उस अकेले अघोरी को खोजना असम्भव ही रहता।

"अगर आप लोग इसी वक्त चामुंडा टेकरी पर चले जायें, तो उससे भेंट हो सकती है।"

"चामुंडा टेकरी ?" मैंने आश्चर्य से कहा, "वह तो बहुत बड़ी टेकरी है। वहाँ, रात के वक्त, हम उसे कहाँ ढूँढ़ेंगे ?"

चामुंडा टेकरी मैसूर से पन्द्रह-बीस किलोमीटर दूर है। चामुंडा का प्रसिद्ध मन्दिर वहीं है। वहाँ की विशाल महिषासुर मूर्ति भी कम प्रसिद्ध नहीं है। इनके अलावा, नन्दी की एक विराट मूर्ति भी वहाँ है।

कुछ देर पुनर्विचार करने के बाद वह बोले, "चामुंडा देवी के मन्दिर में पहुँचकर, आसपास किसी से भी पूछिएगा। उसका पता अवश्य मिल जाएगा।" जरा रुक कर उन्होंने फिर कहा, "वह अघोरी अभी कल ही मेरे पास आया था। आजकल वह

वशीकरण के प्रयोग कर रहा है। आज शरद पूर्णिमा है। सारी रात वह वशीकरण की साधना करेगा। शरद पूर्णिमा इसके लिए श्रेष्ठ मानी जाती है। अभी वह साधना में ही होगा।"

"लेकिन..................उसने जो मूठ............" मैंने पूछने का प्रयास किया। उन्होंने टोक दिया, "वक्त खराब न करें। कल शायद वह कहीं निकल जाए। फिर तो उसकी परछाईं भी खोजे नहीं मिलेगी।"

मैं और स्वामी शिवानन्द उन्हें धन्यवाद देकर बाहर निकले। सोते ड्राइवर को जगाया। हमारी जीप चामुण्डा टेकरी की ओर झपट पड़ी।

चालीसेक मिनट बाद, टेकरी की चढ़ाई चढ़कर, जब हम चामुंडा माता के मन्दिर के सामने पहुँचे, तब रात्रि के साढ़े बारह बजने वाले थे। शरद-पूर्णिमा का सुन्दर चन्द्रमा आकाश में पूरे निखार पर खिला हुआ था, किन्तु उसकी ओर देखने तक की फुरसत हमें नहीं थी। मन्दिर के बाहर की फूलमालाओं की दुकानें तो बंद पड़ी थीं, किन्तु उधर की बेंचों पर कुछ लोग सोए हुए थे। जीप की आवाज ने उनमें से कुछ को जगा दिया। स्वामी शिवानन्द और मुझे जीप से उतरते देखकर वे उठे और हमारे नजदीक आ गए।

शिवानन्द जी ने उनसे अघोरी के बारे में पूछा। उनमें से कोई भी हिन्दी या अंग्रेजी नहीं जानता था। 'अघोरी' शब्द को ही वे समझ नहीं पा रहे थे। अघोरी का जो फोटो मेरे पास था, वह निकाल कर मैंने उन्हें दिखाया वे ऐसे डर गए, जैसे भूत देख लिया हो। उन्होंने झटपट हमसे दूर खिसक जाने में ही गनीमत देखी। इससे हमें इतना अनुमान तो हो ही गया कि वह अघोरी कहीं आसपास ही है और इन लोगों ने यथासंभव उसे देखा भी है।

सोलह

शाण्डिल्य का फूत्कार



एकाएक समझ में न आया, आगे कैसे बढ़ें। अपनी जीप में बैठे हम सोचते रह गए। दसेक मिनट बाद हम वापस लौट चलने का मन बना ही रहे थे कि एक छोकरा सामने आया और टूटी-फूटी हिन्दी में बोला, "अगर मैं अघोरी का ठिकाना बता दूँ तो कितने रुपये देंगे ?"

मुझे गुस्सा आया। कहीं कोई जिन्दगी और मौत के बीच लटका हुआ है और यहाँ यह मूर्ख सौदबाजी कर रहा है। मैंने गुस्सा छिपाते हुए पूछा, "बोल, कितने ?"

उसने पाँच उंगलियाँ दिखाईं।

मैंने उससे फौरन जीप में बैठ जाने को कहा। ज्यों ही वह बैठा, मैंने उसके हाथ में दस का नोट रख दिया। वह गद्गद हो गया। ड्राइवर के कंधे पर फिल्मी स्टाइल में हाथ मार कर उसने जीप स्टार्ट करने का आदेश दिया। उसके बताए आड़े-टेढ़े रास्तों पर जीप दसेक मिनट तक चलती रही। फिर, उसी के संकेत पर; एक झाड़ी के पास रुक गई। चाँदनी में वहाँ एक पगडंडी दीख रही थी। उंगली उठाकर, रास्ता दिखाता हुआ वह बोला, "इधर से जरा आगे जाइए।"

जीप वहीं छोड़कर, ड्राइवर से हमारे लौटने का इंतजार करने के लिए कहकर, मैं और स्वामी शिवानन्द उस पगडंडी पर आगे बढ़ने लगे। मेरा दिल आशंका से धड़क उठा, आधी रात को एक क्रूर और भयानक अघोरी से मिलने के लिए जंगल में जाना......शिवानन्द जी साथ न होते, तो ऐसा दुस्साहस मैंने कदापि न किया होता।

शिवानन्द जी आगे-आगे चल रहे थे। मैं पीछे। कुछ मिनटों बाद हमने एक तीव्र, मादक सुगंध का अनुभव किया। ज्यों-ज्यों आगे बढ़े, त्यों-त्यों वह सुगंध और भी तेज होती गई। फिर तो ऐसा लगा, जैसे सुगन्ध ही हमें खींच कर किसी खास दिशा में ले जा रही है। हम क्यों आए थे, जगजीत की भयानक समस्या क्या थी, अघोरी कितना कुपित था, इत्यादि तमाम बातें हमारे ध्यान से उतर गईं। मानो हम युगों-युगों से उसी अलौकिक सुगन्ध के पीछे भटक रहे थे। स्थान और समय का हमें बिल्कुल ध्यान ही न रहा।

घनी झाड़ियों और वृक्षों के बाद छोटे-से खुले मैदान जैसी एक जगह दिखाई पड़ी। आगे-आगे चलते शिवानन्द जी सहसा रुक गए। यदि उन्होंने हाथ पकड़कर मुझे रोक न दिया होता; तो मैं अपनी मंत्रमुग्धता में आगे ही बढ़ता जाता। मैंने चौंक कर खुले मैदान में देखा। वहाँ वही अघोरी बैठा हुआ था। उसके सामने एक स्त्री भी बैठी दिखाई दी।

हम दोनों एक वृक्ष के पीछे छिप गए। अघोरी की साधना में खलल पहुँचाने का साहस हम एकाएक भला कैसे कर सकते थे ? बात करने के लिए हमें सही मौका ढूँढ़ना होगा।

उस भयानक अघोरी को, थोड़े ही फासले पर, आमने-सामने देखकर मेरी छाती जोरों से धड़कने लगी। अघोरी इस तरह तिरछा बैठा था कि हम उसकी पीठ के अलावा चेहरे का भी काफी हिस्सा देख सकते थे। उसके सामने जो स्त्री बैठी थी, उसका चेहरा हमारी ओर था। वह तीसेक बरस की रही होगी। वह अत्यन्त सुन्दर थी। उसकी काया में कुछ स्थूलता अवश्य आने लगी थी। स्वयं को उसने भरपूर सजा रखा था। जरी की उसकी कीमती साड़ी चाँदनी में चमचम कर रही थी। उसके भारी गहने भी चमक रहे थे।

अघोरी और उस स्त्री के बीच, थाली या तसले जैसा एक पात्र रखा था। उसमें जो तरल पदार्थ भरा हुआ था, उसे मैं दूर से पहचान न सका। उसमें आकाश के बीचोंबीच आ चुके चन्द्रमा का बिंब पड़ रहा था। अघोरी के होंठ हिल रहे थे। जाहिर था, वह किसी मंत्रोच्चार में लीन था। रह-रह कर वह उस तरल पदार्थ में उंगली डुबोकर स्त्री पर छींटे मारता। तब, पात्र में दीखता चंद्र-बिंब हिलने लगता। बिंब का चन्द्रमा टुकड़े-टुकड़े होकर वापस जुड़ जाता। स्त्री आँखें मूंद कर बैठी थी। छींटे पड़ते ही वह पलकें जरा उठाकर अघोरी को देख लेती।

उस अलौकिक सुगन्ध का केन्द्र वही अघोरी था। वशीकरण में सुगन्ध का महत्त्व हमेशा अत्यधिक माना गया है। अघोरी भी गंध और सुगन्ध का सहारा हमेशा लेते रहते हैं। इसके लिए वे किस प्रकार का धूप अगर ज़लाते हैं, पता नहीं।

वशीकरण की वह साधना एक घण्टे तक चलती रही। चन्द्रमा पश्चिम में झुकने लगा। सहसा वह स्त्री ऐसे उठ खड़ी हुई, जैसे अघोरी ने ही उसे ऐसा करने को कहा हो। स्त्री ने अपने सब अलंकार और वस्त्र निकाल दिए। अघोरी ने तसले जैसा वह पात्र

उठाकर उसे दे दिया। पात्र का सारा तरल पदार्थ स्त्री ने अपने ऊपर गिरा लिया। फिर, मानों कोई प्रतिज्ञा कर रही हो, इस प्रकार दोनों हाथ सीने पर रखकर अघोरी की ओर देखते हुए, उसने कुछ कहा। उसका हर शब्द स्पष्ट सुनाई दे रहा था, किन्तु कन्नड़ भाषा समझना मेरे लिए संभव नहीं था।

अघोरी उठ पड़ा। वह प्रसन्न था। उसने स्त्री के सिर पर हाथ रखा, जैसे आशीर्वाद देना चाहता हो। स्त्री आभारी होती हुई, अपने अलंकारों और वस्त्रों को फिर से धारण करने लगी।

अघोरी ने भी अपनी बिखरी पड़ी चीजें समेट लीं। उसकी प्रसन्नता के इस क्षण का उपयोग कर लेना ही उचित था। हाथ पकड़ कर शिवानन्द जी को खींचता हुआ मैं उस वृक्ष के पीछे से निकल आया। अघोरी को कुछ खटका हुआ। वह गर्जना कर उठा, "कौन हो ? वहीं ठहरो।"

"हमें आप ही से मिलना है।" मैं बोला। मेरी आवाज में जो कँपकँपी थी, उससे मुझी को डर लगा। क्षोभ भी हुआ।

शाण्डिल्यनाथ ने त्रिशूल उठा लिया था। वह अचानक मेरी तरफ झपट पड़ा। जरूर वह मुझे त्रिशूल झोंक ही देता, किन्तु उसी समय स्वामी शिवानन्द लपक कर सामने खड़े हो गए और बोले, "क्षमा कीजिए, शांडिल्यनाथ ! हमें पंडितजी ने भेजा है।"

'पंडितजी' सुनकर अघोरी रुक गया। उसकी क्रोधित आँखों से आग बरस रही थी। स्वामी शिवानन्द मेरी ओर इशारा करते हुए बोले, "यह मेरे मित्र हैं। इन्हीं का एक मित्र आपकी अवज्ञा करने का फल भुगत रहा है। हम क्षमा माँगने आए हैं।"

"हट जाओ सामने से।" उसकी आवाज में क्रोध का ज्वालामुखी धधक रहा था, "तुमने यहाँ आने की हिम्मत कैसे कर ली ? फौरन चले जाओ, वरना तुम्हें भी मूठ मारकर यमलोक पहुँचा दूँगा।"

वह हमारा एक शब्द भी सुनने को तैयार नहीं था। उस स्त्री को साथ लेकर वह फर्राटे से जंगल में कहीं गायब हो गया।

मैं और स्वामी शिवानन्द विमूढ़ खड़े रह गए।

सुबह, नित्य कर्मों से निबट कर, हम उन्हीं कन्नड़ विद्वान के सामने बैठे थे। रात को जो हुआ, वह हमने उन्हें संक्षेप में बता दिया था। सुनकर उन्होंने आश्चर्य से कहा था, "वह सुगन्ध मोहनिद्रा की थी। मैं तो इसी पर चकित हूँ कि आप दोनों कैसे उस अघोरी तक पहुँच पाए। बीच में ही मोहनिद्रा में लुढ़क कैसे नहीं गए ? शाण्डिल्यनाथ भी इसी बात पर चकित और कुपित हुआ होगा। इसीलिए वह बिना कुछ सुने चला गया।"

विद्वान ने बताया कि वशीकरण की साधना में अघोरी के सामने जो स्त्री बैठी हुई थी, वह एक प्रसिद्ध स्थानीय व्यापारी की पत्नी थी। पति को पूरी तरह वश में रखने के लिए ही वह शाण्डिल्यनाथ से वशीकरण की साधना करवा रही थी।

"आप तंत्र-मंत्र की शक्ति में कितना विश्वास करते हैं ?" मैंने जानकारी के लिए पूछा।

"विश्वास ?" उनके स्वर में आश्चर्य कम, आघात अधिक था, "मैंने इस रहस्य का अध्ययन करने के पीछे अपना पूरा जीवन दे दिया है। क्या मैंने विश्वास के बिना ही ऐसा किया होगा ?"

"आप किस निष्कर्ष पर पहुँचे ?" मैंने घुमाकर दुबारा पूछा।

"ऐसा है, मित्रवर ! इस संसार में तो चारों तरफ गूढ़ शक्तियाँ ही भरी पड़ी हैं। हम उन्हें पहचान नहीं पाते हैं। अर्थ यह तो नहीं कि हम उन पर अविश्वास ही करने लगें ?" उन्होंने उत्तर दिया, "जब हम जादू को मान्यता दे सकते हैं, तो अघोर तंत्र-मंत्र को क्यों नहीं ? गूढ़ शक्तियों का भी एक विज्ञान है, लेकिन ऐसा कि जिसे समझना फिलहाल सम्भव नहीं है।"

"गूढ़ शक्तियों में विज्ञान नहीं, अज्ञान भी तो काम करता हो सकता है।" मैंने कहा।

"देखिए, अज्ञान की कोई सीमा नहीं है। अज्ञान कब, कहाँ, किस रूप में प्रकट होगा, कौन बता सकता है ? जिस तरह ज्ञान की कोई सीमा नहीं, उसी तरह अज्ञान की भी क्या सीमा हो सकती है ?" वह गम्भीरता से बोले। उनके लहजे से लगा, जैसे इस विषय पर ज्यादा टोकाटाकी उन्हें पसन्द नहीं है। आंशिक विषयांतर के लिए मैंने कहा, "आपने ये दुर्लभ पुस्तकें एकत्र की हैं। इनसे न जाने कितना ज्ञान आपने प्राप्त किया होगा। यह अमूल्य ज्ञान आप किसे दे कर जायेंगे, कुछ सोचा तो होगा ?"

"ज्ञान प्राप्त करना जितना आसान है, उतना किसी को देना आसान नहीं।"

मैंने अब, अपनी राय उनके सामने रखी। कहा कि तंत्र-मंत्र में स्वयं की कोई शक्ति नहीं है। शक्ति तो मानव के अपने मन में छिपी है। तंत्र-मंत्र से जो मनोबल बढ़ता है, उसी से मन की शक्तियाँ जागती और चमत्कार दिखाती हैं। मन की शक्तियाँ ही भूत, भ्रम और भगवान को प्रस्तुत करती हैं। गुरु चैतन्यानन्द के साथ मैंने जो अनुभव लिए थे, वे मैंने उनके सामने रखे। बताया कि मन की शक्तियों पर मेरा अटूट विश्वास किन आधारों पर है।

उन्होंने व्यंग्य से मेरी ओर देखते हुए पूछा, "फिर भी आप अपने मित्र को भय-मुक्त क्यों नहीं कर पाए ?"

"यही मुझे भी समझ में नहीं आ रहा।" मैंने पराजय के स्वर में कहा, "जीवन में इतना निराश मैं पहले कभी नहीं हुआ। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सत्य क्या है, लेकिन उसी को मैं सामने नहीं रख पा रहा।"

वह गहराई से हँसे, "मैं बताता हूँ, आपकी भूल कहाँ हो रही है।"

सत्रह

बैंगलोर में हड़कम्प



मैंने गौर से देखा उन वृद्ध महाशय की ओर। मेरी कौन-सी भूल की ओर वह इशारा करने जा रहे थे ? अपनी भूलों में मेरी दिलचस्पी हमेशा रही है। बहुत मुश्किल होता है, अपनी भूलें खुद पकड़ पाना। दूसरे बताते हैं, तभी आपको पता चलता है, भूल कहाँ हुई। दिलचस्पी भूल को सिर्फ पहचानने में नहीं होनी चाहिए। पहचान कर भूल को सुधारने में भी उतनी ही दिलचस्पी होनी जरूरी है। इसीलिए मेरी सावधान नजर उन वृद्ध महाशय पर स्थिर हो गई।

"अवश्य !" मैंने नम्रता से कहा, "मेरा मनोबल जगजीत के काम क्यों नहीं आ सका ? कहाँ हुई मुझसे भूल ? कृपया बताएँ। मैं आपका आभारी रहूँगा। हमेशा।"

वह संजीदगी से बोले, "मैं पक्के यकीन के साथ कह सकता हूँ, सोमपुरा जी कि आप मनुष्य के अहं की उपेक्षा किया करते हैं। इसीलिए आपकी बात जगजीत के गले से नीचे नहीं उतरी। अपनी इस भूल को सुधार कर देखिए तो सही। फ़िर आपको कभी व्याकुलता नहीं होगी कि आप सत्य को पहचानते तो हैं, मगर उजागर नहीं कर पाते।"

मैंने जरा आश्चर्य से कहा, "किन्तु मैंने, अपनी जानकारी में, कभी किसी के अहं को चोट नहीं पहुँचाई। जगजीत के भी अहं को मैंने कभी आहत नहीं किया था।"

"काश ! ऐसा होता। आपने निश्चित रूप से जगजीत के अहं को कुचला था, भले ही अनजाने में। मेरी बात को यूँ समझिए..................... " उन्होंने मुस्कराकर कहा, "कभी न भूलिएगा, मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति का भी एक अहं होता है। उस पर चोट लगेगी, तो वह दिन को भी दिन मानने के लिए तैयार न होगा। मसलन, जगजीत.........आप उससे कहते हैं कि तुम्हारा मन निर्बल है, इसी निर्बलता के कारण अघोरी का भय तुम पर सवार हुआ है। निस्संदेह आप सत्य कह रहे हैं, किन्तु आपका मित्र इसे स्वीकार क्यों करेगा ? क्योंकि स्वीकार करते ही उसका मन निर्बल साबित हो जाएगा। क्या इससे उसके अहं पर चोट नहीं पहुँचेगी ? ठीक विपरीत, ऐसे लोगों को जब पता चलता है कि उन पर भूत या अघोरी सवार हो गया है, तब उनके अहं की गहरी संतुष्टि होती है, क्योंकि तब वे स्वयं को विशिष्ट व्यक्ति मानकर चल सकते हैं। इसीलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने ज्ञान को गूढ़ और गुप्त रखा। वे जानते थे कि यदि ज्ञान को सरल और सार्वजनिक बना दिया गया, तो ज्ञान अपना महत्त्व ही खो बैठेगा। ज्ञान की ओर कोई आकर्षित ही न होगा। जो ज्ञान ग्रहण करे, उसका अहं भी सन्तुष्ट होना चाहिए कि उसने कोई कठिन कार्य सम्पन्न किया। लेकिन आप मनुष्य की इसी विचित्रता को ताक पर रख कर आगे बढ़ना चाहते हैं। इसीलिए आपको अब तक सफलता नहीं मिली है। आपने कितनी सरलता से कह दिया कि अघोरी का भय तुम पर सवार है। अरे, इस के बजाए अगर कोई झाड़ने-फूँकने वाला आता, तो कैसा धूमधड़ाका हो जाता। वह दस तरह की क्रियाएँ करता, मंत्र मारता। आपके मित्र को भी लगता कि वाह ! मुझ जैसे विशिष्ट व्यक्ति पर कितना भयंकर भूत चढ़ा। मामूली भूत तो मुझ पर चढ़ने की हिम्मत की नहीं कर सकता इस भयंकर भूत को उतारने के लिए बेचारे फूँकने वाले को कितनी सारी क्रियाएँ करनी पड़ीं, जाने कहाँ-कहाँ के मंत्र मारने पड़े। इसीलिए मैं कहता हूँ कि हमारे ऋषि-मुनि सच्चे थे। उन्होंने ज्ञान को 'राह चलते मिलने वाली चीज' नहीं बनने दिया। उन्होंने ज्ञान को गूढ़, गुप्त और रोमांचक रूप दे दिया। आप भी यही कर देखिए। लोग आपकी पूजा करेंगे। आपके कदमों पर लोटपाट हो जायेंगे।"

"किन्तु लोगों से ऐसा करवाना तो सरासर अपराध है।" मैंने जवाब दिया, "यह सत्ता-लालसा है और सत्ता-लालसा व्यक्ति की पतन की खाई में धकेलती है। इस लालसा को मैं अक्षम्य पाप समझता हूँ। ज्ञानियों ने ज्ञान को गूढ़ इसलिए बनाया कि ज्ञानियों की सत्ता इसी उपाय से टिकी रह सकती थी। यह गूढ़ता ज्ञान की रक्षा के लिए नहीं, बल्कि स्वयं की सत्ता सुरक्षित रखने के लिए थी। ज्ञान को भला रक्षा की क्या आवश्यकता ? सुगन्ध को डिब्बे में बंद करके नहीं रखा जा सकता।"

"मैं आपसे सहमत नहीं, क्योंकि यह सत्ता ही है जिससे ज्ञान की रक्षा होती है। ज्ञान को भी रक्षा की आवश्यकता हुआ करती है।" उन्होंने दृढ़ता से कहा।

"क्षमा कीजिएगा, मुझे इसमें ढोंग दिखाई पड़ता है। सत्ताखोरी से कभी कोई शुभ कार्य नहीं हो सकता। इतिहास साक्षी है, सत्ताखोरी ने हमेशा मनुष्य का सत्यानाश किया

है। बलवान निर्बल पर, बुद्धिमान मूर्ख पर, ज्ञानी अज्ञानी पर, धनवान निर्धन पर सत्ता करने की लालसा रखते हैं। यहीं से भ्रष्टाचार अस्तित्व में आता है। सत्तालोलुप हमेशा चाहते हैं कि जो सत्ता के ताबे में हैं तो हमेशा निर्बल, निर्ज्ञान और निर्धन ही बने रहें। कुदरत ने मनुष्य और मनुष्य के बीच कोई फर्क नहीं रखा है। कुदरत के लिए तो सभी समान हैं। वास्तव में यह मनुष्य ही है जिसने मनुष्य और मनुष्य के बीच फर्क पैदा किया है। इस फर्क को मिटाना भी मनुष्य को ही होगा।"

यहाँ मैं सहसा चुप हो गया। मुझे अपने आवेश का पता चल गया था। उन महाशय को चुनौती देने से बचना बहुत आवश्यक था। अभी उनकी सहायता के बिना हमारा गुजारा था ही नहीं।

"अब आप..... अपने मित्र के लिए क्या करेंगे ?" उन्होंने पूछा।

"प्रयत्न ! केवल प्रयत्न !" मैंने उत्तर दिया, "सिवा इसके मैं और कर भी क्या सकता हूँ। फिलहाल इतना जरूर है कि हम अघोरी से मिलकर, उससे माफी माँगकर, जगजीत को अभय-वचन दिलाना चाहेंगे, किन्तु मुझे मालूम है, निश्चित रूप से मालूम है कि यह केवल तात्कालिक उपाय है। इसमें स्थायित्व नहीं है। तात्कालिक खतरा टल जाने के बाद मैं जगजीत को फिर से समझाऊँगा। समझाने का प्रयत्न करूँगा। प्रयत्न के सिवा मैं और क्या करूँ ? अधिकतम प्रयत्न के साथ मैं उसे बताऊँगा कि वह अघोरी की मूठ का शिकार नहीं, बल्कि अपने ही मनोभ्रम का शिकार हुआ है।"

"शुभेच्छाओं के सिवा मैं आपको क्या दे सकता हूँ ? वृद्ध विद्वान ने पूछा !

"आशीर्वाद ! मैंने केवल एक शब्द का उत्तर लौटाया।

दोपहर को मैं और स्वामी शिवानंद फिर से मैसूर शहर में घुसे। वहाँ एक होटल वाला हमें पहचानता था। चार-पाँच दिन पहले हम उसी के होटल में ठहर चुके थे। वहाँ से मैं बैंगलोर एस. टी. डी. कर प्रमोद से बात करना चाहता था। मैनेजर से हमने बैंगलोर के होटल का नम्बर लगाने के लिए कहा। लाइन मिलने के इन्तजार में मैं और शिवानंद जी बाहर लॉज में बैठ गए। हम दोनों जगजीत के ही बारे में सोच रहे थे, किन्तु थे खामोश। दसेक मिनट बाद नम्बर लगा।

फोन पर होटल का मैनेजर ही था। मैंने उससे प्रमोद को बुलाने के लिए कहा। मैनेजर बहुत व्यग्र था। स्पष्ट भी था। कहने लगा, "भाई सा'ब। अब आप जल्दी-से-जल्दी अपने मरीज को यहाँ से ले जाइए। मेरा होटल खाली हुआ जा रहा है। अगर यही चलता रहा, तो मुझे होटल बन्द करके भीख माँगनी पड़ेगी।"

"लेकिन.......ऐसी भी आखिर क्या बात है ?" मैंने चिंतित होकर पूछा।

"यह आप अपने साथी से ही पूछिए। सुनिए, अगर आपने होटल का कमरा रात तक खाली नहीं किया, तो मुझे मजबूरन पुलिस में खबर करके आपके दोस्त को अस्पताल में भरती करवाना पड़ेगा। यह होटल है, पागलखाना नहीं।" फिर उसने फोन प्रमोद को दे दिया।

"क्या है, प्रमोद ?"

"भाई सा'ब ! यहाँ तो मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा है। कल रात यहाँ जो हुआ, वह ऐसा है कि......" प्रमोद हिचक कर रुक गया।

"चुप क्यों हुए, प्रमोद ? जगजीत कैसा है ?" मैंने पूछा। मेरी व्यग्रता सीमा लाँघने लगी थी।

कुछ पल खामोशी छाई रही। फिर प्रमोद ने बहुत धीमे-धीमे बताना शुरू किया, "कल रात नींद की दवा लेने के बाद जगजीत आराम से सो गया था। मैं भी निश्चिंत होकर होटल के साथियों के साथ ताश खेलने छत पर चला गया था। शरद-पूर्णिमा होने के कारण बहुत सारे लोग छत पर चढ़े हुए थे। उनके साथ ताश खेलने में रात के दो कब बज गए, पता न चला। अचानक जगजीत की चीखें सुनाई पड़ीं। मैं भागा। कमरे पर मैंने बाहर से ताला लगा दिया था। वह ज्यों-का-त्यों लगा हुआ था। ताले और दरवाजे को खोल कर मैं अन्दर घुसा। जगजीत का पूरा चेहरा मैंने लहु-लुहान देखा। वह बचाओ, बचाओ की चीखें लगा रहा था। भाई सा'ब ! उसके चहरे पर एक लम्बा घाव हो गया है। गाल से लेकर मस्तक तक उसका चेहरा फट गया है। मुझे तो समझ में ही न आया, ऐसा हुआ कैसे। मैंने जगजीत से ही पूछा, ऐसा कैसे हुआ। वह भयभीत नजरों से मुझे चुपचाप घूरता रहा था। फिर अचानक रोने लगा और बोला, 'प्रमोद ! अभी-अभी वह अघोरी यहाँ आया था। मेरी जान लेने के लिए उसने त्रिशूल चलाया। चिल्लाकर बोला कि खत्म कर दूँगा। त्रिशूल सीधा मेरे चेहरे में घुस गया। मैं चीख उठा। मुझे तड़पता छोड़ कर वह तसल्ली से चला गया। वह दुबारा आएगा प्रमोद ! वह मुझे नहीं छोड़ेगा। मेरी जान लेकर ही रहेगा। बचाओ, प्रमोद, मुझे बचाओ।'...भाई सा'ब ! क्या करूँ ? जगजीत बुरी तरह घबरा गया है। होटल में भी लोग भूत का नाम ले-ले कर आतंक फैला रहे हैं। कुछ समझ में नहीं आता।

सब मैंने स्तब्ध होकर सुना। अविश्वास से मैंने अपना एक-एक शब्द तौलते हुए पूछा, "प्रमोद, क्या कहा तुमने ? अघोरी वहाँ आया था ?"

"हाँ, भाई सा'ब।"

"तुमने उसे देखा ?"

"मैंने नहीं, जगजीत ने देखा।"

"उसने केवल दुःस्वप्न देखा है। अंधेरे में वह डर गया है और कुछ नहीं।" मैंने बौखला कर कहा, "अघोरी वहाँ कैसे आ सकता है ? उस वक्त तो वह चामुँडा टेकरी पर था। मैं और स्वामी शिवानंद उस पर नजर रखे हुए थे।

"लेकिन, भाई सा'ब।" प्रमोद की आवाज थर्राने लगी, "जगजीत के चेहरे पर जो लम्बा घाव हो गया है वह ठोस सबूत है कि अघोरी प्रकट हुआ था। त्रिशूल मारकर गायब हो गया। उतना लम्बा और गहरा घाव कोई अपने चेहरे पर खुद नहीं लगा सकता। चौदह टाँके लगे हैं।"

"प्रमोद !" मैंने मुट्ठी भींचकर कहा, "मैं सिर्फ एक बात जानता हूँ अघोरी वहाँ नहीं पहुँचा था। जगजीत को संभालो। कहो कि धीरज रखे। उसके घाव के बारे में मैं अभी

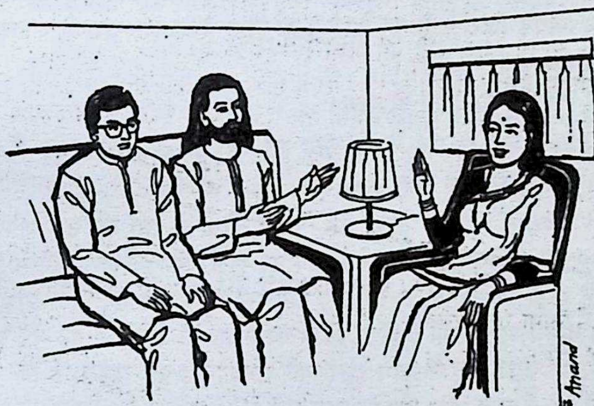
कुछ नहीं कह सकता। मुझे तो सारी बात पर ही यकीन नहीं हो रहा.. लेकिन तुम कह रहे हो, तो सच ही होगा। बहरहाल......हम रात तक वहाँ वापस आ रहे हैं। तुम जगजीत को किसी भी तरह संभाल कर रखो। समझे, प्रमोद ?"

"रात तक जरूर आ जाइए, भाई सा'ब।"

मैंने थरथराकर रिसीवर रखा दिया। एकदम हताश होकर मैं स्टूल पर बैठ गया। मैंने खूब गहरी साँसें लीं और पलकों को जोर से भींच दिया। आखिर मैं शिवानंद जी से मुखातिब होकर दृढ़ता से बोला,"हर बात की एक हद होती है।" प्रमोद से हुई सारी बात मैंने उन्हें बताईं। फिर कहा, "अब तो पुलिस की ही मदद लेनी होगी। अघोरी को पकड़ने के लिए पुलिस साथ ले जानी होगी।

अठारह

वह स्त्री और पुलिस



थाना होटल के नजदीक ही था। मुझे और शिवानंद जी को वहाँ पहुँचते देर न लगी। इस मेज से उस मेज पर और इस कमरे से उस कमरे में हमें इतना ज्यादा भटकना पड़ा कि तबीयत खुश्क हो गई। आखिर मैंने पुलिस अधिकारियों को धमकाया कि मैं एक अमेरिकन कम्पनी का प्रतिनिधि हूँ और खास उसी कम्पनी के लिए फोटोग्राफी करता हुआ इधर आया हूँ। अगर मेरी बात नहीं सुनी गई तो मैं कमिश्नर साहब से शिकायत करूँगा। कागज-पेंसिल लेकर सब-इंस्पेक्टर मेरी शिकायत लिखने बैठ गया। मैंने कहा, "केवल शिकायत लिखने से बात नहीं बनेगी। पुलिस साथ लेकर तुरन्त मुझे एक अघोरी बाबा को पकड़ना है। उसने मेरे दोस्त के कत्ल की साजिश कर रखी है।"

"इसके लिए आपको पहले मुझे सारी बात सुनानी होगी।" सब-इंस्पेक्टर ने कहा। मैंने उसे सारी बात सुनाई। वह खिलखिला कर हँसने लगा। बोला, "बिना सिर-पैर की इन बातों के आधार पर मैं एक निर्दोष संन्यासी को गिरफ्तार करलूँ ? क्या कहते हैं आप ? क्या आज अप्रैल की पहली तारीख है ?

बहुत समझाया, किन्तु वह मानने को तैयार न हुआ। असलियत यह थी कि यदि उसकी जगह खुद मैं होता, तो मैंने भी मानने से साफ इन्कार कर दिया होता।

थकान और हताशा से चूर होकर हम उसी वृद्ध के घर वापस पहुँचे। पुलिस का जो अनुभव हमें हुआ था, हमने उन्हें सुनाया। फिर कहा कि अब आप ही कोई दूसरा उपाय सुझाएँ। अघोरी और जगजीत को आमने-सामने खड़े करना और अघोरी का अभय-वचन जगजीत को दिलवाना—यह न केवल अनिवार्य था, बल्कि इसमें क्षण-क्षण की जो देरी हो रही थी, उसमें जगजीत पर जान का खतरा बढ़ता जा रहा था। विद्वान महाशय को मैंने यह भी बताया कि गाल से लेकर मस्तक तक जगजीत का चेहरा अचानक कैसे फट गया था और दुःस्वप्न में उसने किस प्रकार अघोरी को त्रिशूल चलाते देखा था।

विद्वान महाशय गहरे सोच में डूब गए। फिर बोले, "एक ही उपाय समझ में आता है। रात को आपने जिस स्त्री को अघोरी के साथ देखा था, उसकी सहायता यदि ली जाए, तो शायद बात बन जाए।"

"कैसे ?" मैंने उत्कण्ठा से पूछा।

"आप लोग यहाँ से गए, उसके बाद वह स्त्री मुझसे मिलने आई थी।"

मैं और शिवानंद जी एक साथ बोल उठे, "सचमुच ?"

"हाँ !" विद्वान महाशय कहते रहे, "आप लोगों ने रात को उसे शपथ लेते सुना था। वह समझती है कि उसका रहस्य आप पर खुल गया है। उसे नहीं मालूम कि आप लोग कन्नड़ भाषा के जानकार नहीं हैं। वह भयभीत होकर मेरे पास आई। अघोरी से बातचीत के समय आपने जो 'पंडित जी' शब्द बोला था, उसी से वह मेरे बारे में समझ गई थी। आकर बोली कि मैं आप दोनों को समझाऊँ। वह चाहती है कि जो भयानक शपथ उसने ली है उसे आप नितांत गुप्त रखें।"

"क्या है उसकी भयानक शपथ ?" मैंने अचरज से पूछा।

बताएँ या न बताएँ, इस हिचक में विद्वान महाशय कुछ पल चुप रह गए फिर सम्भल कर बोले, "उसने अपना पहला बेटा अघोरी को दे देने का वचन दिया है।"

मैं और स्वामी शिवानंद स्तब्ध रह गए। शिवानन्द जी कुछ देर बाद ही बोल सके, "यह तो सचमुच भयंकर है।"

"यह हमारे सोचने का मुददा नहीं है।" विद्वान महाशय ने शान्ति से कहा, "अघोरी से वशीकरण का वरदान पाकर यदि वह स्त्री अपने पति को पा सकती है तो होने वाली अनेक सन्तानों में से सिर्फ एक वह अघोरी को दे सकती है। इसमें अजूबा क्या है ? मेरी राय में तो .....आपको इस स्त्री से अवश्य मिलना चाहिए। जाकर कहें कि उसकी शपथ की जानकारी आपको है। अघोरी को मनाने में यदि वह आपकी सहायता नहीं करेगी, तो आप जबान खोल देंगे।"

यह ब्लैक-मेलिंग में हाथ डालने वाली बात थी। मैं और स्वामी शिवानंद, दोनों, सत्य के इतने आग्रही हैं कि ब्लैक-मेलिंग की हम सोच भी नहीं सकते थे। मैंने उलझन

में पड़कर शिवानंद जी की ओर देखा। वह सोच कर बोले, "हम यह काम अपने निजी स्वार्थ के लिए तो करेंगे नहीं। हम तो केवल जगजीत की जीवन-रक्षा के लिए ऐसा करेंगे। समय भी इतना कम है कि........."

सच पूछें, तो यह बहाने ही थे। विपत्ति के तनाव ने हमारे विवेक को सुप्त कर दिया था। एक भी सही निर्णय हम नहीं ले पा रहे थे। आज महसूस होता है कि हमें जगजीत को प्रमोद के भरोसे छोड़ कर अघोरी की खोज में निकलना ही नहीं चाहिए था। धैर्य और दिलासा देते हुए हमें जगजीत के ही पास मौजूद रहना चाहिए था। उसके साहस को संजोने का अनथक प्रयास करने के बजाए हम उस अघोरी बाबा के पीछे लगे हुए थे।

वृद्ध विद्वान से पता लेकर हम उस स्त्री के घर पहुँचे। वृद्ध ने हमें एक सिफारिशी चिट्ठी भी लिख कर दी थी। एक मंजिल के उस खूबसूरत बंगले के सामने जीप रोककर हमने दरबान को वही चिट्ठी थमा दी, जिसे वह अंदर ले गया।

कुछ पल बाद वही स्त्री गैलेरी में दिखाई दी। सादा वस्त्रों में वह सौम्य लग रही थी। चेहरे पर आशंका पुती होने के बावजूद वह कम रौबीली नहीं थी। दूर से अनुमति का संकेत देकर वह वापस भीतर चली गई। दरबान ने हमें प्रवेश करने दिया। नौकर ने हमें एक विशाल, आधुनिक ड्राइंग रूम में बिठाया। फिर वह अपनी मालकिन को बुलाने चला गया।

मालकिन आकर सामने बैठी। टूटी-फूटी हिन्दी में जब हमने उससे बातचीत शुरू की, तब ड्राइंग-रूम में सिवा हम तीनों के चौथा कोई नहीं था। सब दरवाजे-खिड़कियाँ बंद कर दिए गए थे। रात को हमने उस स्त्री को जिस दशा एवं मुद्रा में देखा था। उसे याद कर वह भारी संकोच अनुभव कर रही थी, ऐसा मुझे लगा। मैंने उसे संक्षेप में जगजीत की कथा सुनाई।

बहुत ज्यादा हिचकते हुए, रुक-रुक कर, हिन्दी के सही शब्दों को सोच-सोच कर बोलने की तरह उसने हमें जो-कुछ बताया, उसका सार यही था कि वह स्वयं भी महसूस करने लगी थी कि अघोरी ने उसे कुचक्र में फँसा लिया है। शाण्डिल्यनाथ के परिचय में वह साल भर पहले आई थी। पति-प्रेम और पुत्र-लालसा से प्रेरित होकर वह शाण्डिल्यनाथ की भक्ति करने लगी थी। उस अघोरी ने न मालूम कितनी बार उससे बड़ी-बड़ी रकमें ऐंठी थीं—मंत्र-साधना के नाम पर। कल रात तो उसने प्रथम पुत्र का ही दान माँग लिया था। छुटकारे की कोई राह न सूझने के कारण वह चुपचाप सब सहे जा रही थी।

ये बातें बताती हुई वह रो पड़ी। मैं अकुलाने लगा। हम आए हैं मदद माँगने और हालात ऐसे हैं कि मदद देकर जाएँ। शिवानंद जी से सलाह-मशविरा करके मैंने उससे कहा, "आपको पुलिस में शिकायत दर्ज करानी चाहिए।"

"नहीं, नहीं !" उसका रंग उड़ गया, "फिर तो बात सारी दुनियाँ पर खुल जाएगी। मेरे पति को पता चल जाएगा। मुझे आत्म-हत्या करनी पड़ेगी।"

"बहरहाल.......आप, जगजीत को माफ कर देने के लिए, अघोरी को राजी तो कर सकती हैं। न ?"

"बिल्कुल नहीं।" वह बोली।

हम तीनों थोड़ी देर खामोश बैठे रह गए।

"एक तरीका हो सकता है।" वह बोली।

हमने उसकी ओर कुछ आशा से देखा।

"मेरे एक मित्र हैं। वह किसी इंस्पेक्टर को पहचानते हैं। ठहरिए, उनसे पूछती हूँ।"

उसने एक जगह फोन किया। कन्नड़ में उसने क्या बातें कीं, हम कुछ न समझ पाए। स्वभाव से वह हमें निस्संदेह अच्छी लगी थी। सुंदरता में भी कम नहीं थी। फिर भी उसका पति क्यों उसे नहीं चाहता था ? मैं न समझ सका।

आखिर उसने रिसीवर रखकर हमें बताया, बात होगई है। वह इंस्पेक्टर आपकी सहायता करेगा, लेकिन सारी कार्यवाई कहीं भी दर्ज नहीं होगी। मेरे बारे में आप किसी से कुछ नहीं कहेंगे, ऐसी आशा रखती हूँ।"

हमने उसे अपनी ओर से आश्वस्त किया। उसने हमें एक पता लिख कर दे दिया। धन्यवाद देकर हमने विदा ली।

वह इंस्पेक्टर महा अनाड़ी निकला। फैले हुए बदन के कारण वह दूसरों से बिल्कुल जुदा दिखाई पड़ता था। बात-बात में वह 'बास्टर्ड' और 'सन ऑफ अ बिच' जैसी गालियाँ बकने का आदी था। जीप पर मुक्का मारते हुए उसने कहा, "बताओ, साला कहाँ है। बास्टर्ड ? डंडे मार-मार कर सीधा न कर दूँ, तो कहना।"

जीप में इन्स्पेक्टर को अपने साथ बिठाकर हमने चामुंडा टेकरी का कोना-कोना छान मारा। कहीं अघोरी की परछाईं भी दिखाई न दी। एक-दो जगह पता चला कि वह अभी-अभी यहाँ था, अभी-अभी चला गया।

उन्नीस

पुतले का वध



सूर्य डूबने की तैयारी कर रहा था। मैं और स्वामी शिवानन्द बहुत निराश हो चुके थे। प्रमोद से हमने कहा था कि रात तक लौट आयेंगे। रात तो यहीं हो गई। न जाने उस बेचारे पर क्या गुजर रही होगी। बार-बार कचोट हो रही थी कि जगजीत की माँ और बीबी को हम अभी तक कुछ भी सूचित नहीं कर सके थे। मैंने शिवानन्द जी से कहा, "कुछ भी हो, यदि आज अघोरी का पता न चला, तो कल मैं सीधा बैंगलोर चला जाऊँगा और जगजीत को ज़ल्दी-से-जल्दी उसके घर पहुँचाऊँगा।"

महिषासुर की प्रचंड मूर्ति के पास ड्राइवर जीप को अचानक धीमा करने लगा।

"क्या है ?" मैंने पूछा।

वह बोला, "मूर्ति के पीछे किसी की झलक दिखाई दी।"

हमने जीप आगे बढ़ाई। मूर्ति के पीछे अघोरी शाण्डिल्यनाथ खड़ा दिखाई दे गया। मेरे मुँह से निकल पड़ा, "वही है।"

आगे कुछ बोल सकूँ, इससे पहले ही वह अनाड़ी इंस्पेक्टर जीप से कूद चुका था। गालियाँ देता हुआ वह अघोरी की तरफ दौड़ पड़ा। लपक कर उसने शाण्डिल्यनाथ का

हाथ पकड़ लिया, "साला बास्टर्ड ! चल थाने में। दस साल के लिए अन्दर न करवा दूँ, तो कहना।"

एक विकट गर्जना के साथ शण्डिल्यनाथ ने झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया फिर उसने क्रोध से सुलगती आँखों से मेरी और स्वामी शिवानन्द की तरफ इस प्रकार देखा कि हमारी तो जैसे चेतना ही सुन्न पड़ गई।

एकाएक शाण्डिल्यनाथ ने अपने झोले से मिट्टी का एक पुतला बाहर निकाला। पुतले की लम्बाई एक बीते से अधिक नहीं थी। उसे मुझे दिखाकर वह दाँत पीसता हुआ बोला, "तुमने अपने दोस्त की मौत बुला ली है।"

और उसने पुतले की गर्दन मरोड़ कर फेंक दी। शेष पुतले को भी फेंककर पैरों से रौंदते हुए उसने कहा, "चलो, इंस्पेक्टर ! देखता हूँ, तुम मुझे कैसे बंद करते हो।"

इंस्पेक्टर का सारा गुस्सा हवा हो चुका था। भय से वह थरथर काँपने लगा था। उसके होंठ हिलते थे, किन्तु आवाज नहीं फूटती थी। अब तो अघोरी को छूने की भी उसमें हिम्मत नहीं थी।

स्वामी शिवानन्द किसी तरह आगे आए। उन्होंने शाण्डिल्यनाथ को शान्त करने का बेहद प्रयास किया, किन्तु उनकी गिड़गिड़ाहट का भी कोई असर न हुआ।

हमें निराश होकर लौटना पड़ा। अघोरी के विरुद्ध कुछ भी कर सकने का साहस हममें अब नहीं था। मेरी आँखों के सामने उसी पुतले की टूटी हुई गर्दन घूम रही थी।

इंस्पेक्टर न जाने क्या बके जा रहा था। उसे बाजार में उतारकर मैं और स्वामी शिवानन्द उन्हीं कन्नड़ विद्वान के यहाँ आ पहुँचे। जो कुछ हुआ था, सब बताया। उन्होंने भी हमें तुरन्त जगजीत के पास लौट जाने की सलाह दी। साथ में एक यंत्र भी दिया। कागज पर अंकित वह एक 'रक्षा-कवच' था। बोले, "यह कितना उपयोगी रहेगा, पता नहीं, लेकिन जगजीत से कहें कि इसे हमेशा अपने साथ रखे। ईश्वर ने चाहा, तो कल्याण ही होगा।"

आठेक बजे हम रवाना हो गए।

मैसूर पीछे छूट गया था। सूनी सड़क पर जीप भाग रही थी। हम चुप थे। प्रथमा की मंद चाँदनी में पृथ्वी विचित्र और डरावनी लग रही थी। अचानक मुझे कुछ याद आया। मेरी नजरें शिवानन्द जी पर ठहर गईं, "आपने अघोरी का चेहरा ध्यान से देखा ?"

"क्यों ?" उन्होंने आश्चर्य से पलकें उठाईं।

"अघोरी से हमारी दो मुलाकातें हुई हैं।" मैं बोला, "दोनों बार इतनी हड़बड़ी में और इतने कम समय के लिए कि उस पर नजर ठहराने का मौका ही न मिला। उसके जो फोटो हमारे पास हैं, उन सभी में गाल से लेकर मस्तक तक गहरी चोट का लम्बा निशान है, किन्तु मैं ऐसा कोई निशान शाण्डिल्यनाथ के चेहरे पर न देख सका। क्या आपने देखा ?"

"देखा तो मैंने भी नहीं।" शिवानन्द जी बुदबुदाए।

मैंने कहा, "फोटोग्राफों में जो चेहरा प्रिण्ट हुआ है, वह लगता तो शाण्डिल्यनाथ का ही है, दोनों के बीच काफी समानता है, किन्तु उस अघोरी के चेहरे पर चोट का निशान जब है ही नहीं, फिर वह फोटोग्राफों में कैसे आ गया ?"

कुछ क्षण चुप्पी छाई रही। फिर स्वामी शिवानन्द जी बोले, "कल रात....प्रमोद ने जगजीत की चोट के बारे में जो बताया है, उसे याद करिये।"

उसी क्षण मैं चौंक पड़ा। प्रमोद ने कहा था, जगजीत के गाल से लेकर मस्तक तक चेहरा इतना फट गया है कि चौदह टाँके लगाने पड़े...मैं थरथर काँप उठा। आखिर इस संयोग का अर्थ क्या है ?

चन्द्रमा बादलों के पीछे छिप जाने से सब ओर अंधकार छा गया था। जगजीत के साथ दोस्ती के अनेक दिन मेरी आँखों के सामने से अचानक गुजरने लगे। कैसे वह हँसता और हँसाता था, कैसे चिढ़ता और चिढ़ाता था, कैसे खाता और खिलाता था..

जगजीत, जगजीत और जगजीत के ही विचारों से मन भर आया।

जगजीत हमारी जीप के पीछे दौड़ रहा था। "बचाओ। बचाओ।" का उसका आर्तनाद हमें स्पष्ट सुनाई दे रहा था। मैंने ड्राइवर से जीप रोकने के लिए कहा। ड्राइवर ने जब अपना चेहरा मेरी ओर घुमाया, तो मैं सन्न रह गया। वह उसी अघोरी का चेहरा था। उसने अट्टहास करके जीप और तेजी से दौड़ा दी। जगजीत भी उतने ही वेग से हमारे पीछे दौड़ने लगा। उसे जीप में खींच लेने के लिए मैंने हाथ बढ़ाया। उसने भी हाथ बढ़ाया। वह मुझे न छू सका। मैं चिल्लाए जा रहा था, "जीप रोको। मेहरबानी करके जीप रोको।" जवाब में केवल भयानक अट्टहास सुनाई पड़ता। मैंने जगजीत के पीछे अघोरियों की पूरी टोली दौड़ती देखी। सब अघोरी ललकारते हुए चीख रहे थे। अब तो जीप रोकने में भी मौत थी। एक अघोरी ने जगजीत पर प्रचण्ड त्रिशूल फेंका। त्रिशूल भयंकर वेग से आने लगा। मैंने चिल्लाकर जगजीत से कहा कि वह हट जाए। वह हट गया। त्रिशूल निशाना चूक गया। जगजीत को लगने के बजाय वह जीप के टायर में आ घुसा। टायर फट पड़ा। भयानक धमाका हुआ।

मैं जाग गया। मेरे मुँह से हल्की चीख निकल चुकी थी। मैं पसीने से तर-ब-तर हुआ जा रहा था। स्वामी शिवानन्द मुझे झकझोरते हुए पूछ रहे थे, "क्या हुआ ? क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं। भयानक स्वप्न...." मैं बुदबुदाया।

बातें सूझ नहीं रही थीं, तो भी मैं स्वामी शिवानन्द से बातें करने लगा। चुप रहकर मैं नींद को दुबारा आमंत्रित करना नहीं चाहता था। फिर वही सपना शुरू हो जाएगा, मैं जानता था। क्या उस सपने को अघोरी संप्रेषित कर रहा था ? या मेरा ही आशंकित मन उसे देख रहा था ?

लगभग पौन घण्टे की लगातार ड्राइविंग के बाद एक छोटे गाँव में ड्राइवर ने जीप रोक दी और कहा, "मुझे नींद आ रही है। चाय पीए बगैर आगे नहीं चलूँगा।"

इस विलम्ब को चुपचाप झेल लेने के सिवा चारा भी क्या था। एक छोटे होटल में घुस कर हमने तीन चाय का आदेश दिया। चुस्कियाँ लेते हुए मैंने शिवानन्द जी से

कहा, "कुछ स्पष्ट हुआ ? चोट का निशान अघोरी के चेहरे पर न होने के बावजूद फोटोग्राफों में क्यों है ?"

वह बुदबुदाए, "इसका उत्तर समय ही देगा।"

सचमुच इसका उत्तर समय ने ही दिया। उस समय भले ही मैं कुछ बूझ नहीं पाया था, किन्तु आज, बरसों बाद, मैं सच्चाई का अंदाजा लगा सकता हूँ।

मूठ मार कर शाण्डिल्यनाथ जब जा रहा होगा, तब उसने डरावने ढंग से जगजीत को अपना त्रिशूल जरूर दिखाया होगा। इस हरकत ने जगजीत के रहे-सहे आत्म-बल को भी समाप्त कर दिया होगा। त्रिशूल का निशाना जगजीत ने अपने चेहरे पर महसूस किया होगा। बस, उसके अवचेतन में एक भय बैठ गया कि अघोरी त्रिशूल चलाकर उसके चेहरे को बींधने वाला है। उसके मानस में अघोरी का चेहरा तो अंकित था ही, साथ में त्रिशूल का घाव भी अंकित हो गया।

दोनों आशंकाओं ने मिलकर एक नई तस्वीर तैयार की—अघोरी के चेहरे पर त्रिशूल के घाव का लम्बा, गहरा निशान।

यही मिलीजुली तस्वीर 'थाटोग्राफ' के रूप में उन रीलों पर अंकित हो गई, जिन्हें जगजीत ने एक्सपोज किया था।

त्रिशूल के 'काल्पनिक वार' ने जगजीत के एक कान को भी चीर दिया था। यह आशंका भी 'थाटोग्राफों' में उभर कर रही। प्रत्येक 'थाटोग्राफ' में अघोरी का कान फटा हुआ ही अंकित हुआ।

होटल के बंद कमरे में अघोरी सचमुच प्रकट नहीं हुआ था। फिर भी जगजीत ने उसे देखा। इसमें अजूबा नहीं है, क्योंकि मनुष्य का आशंकित मन अँधेरे में साँप न हो, तो भी उसे देख लेता है। जब साँप दीख सकता है, तो अघोरी भी दीख सकता है। चुनौतीभरा प्रश्न तो यह है कि जगजीत का चेहरा उतनी बुरी तरह फट कैसे गया ? प्रश्न जितना रोमांचक है, उत्तर उतना रोमांचक नहीं। इसका विवेचन पहले ही हो चुका है कि मनुष्य का नियंत्रित मन जितने चमत्कार कर सकता है, उतने ही चमत्कार अनियंत्रित मन भी कर सकता है। अनियंत्रित मन का भी पूरा असर मानव शरीर पर साफ दिखाई पड़ता है।

भय के तीखे आवेग में दिल की धड़कन रुक जाती है। इसी तरह, भय या आशंका के अन्य शारीरिक प्रभाव भी, इतनी ही नाटकीयता से, प्रकट हो सकते हैं। कोई यदि सोच ले कि भरी जवानी में मेरे सारे बाल जरूर सफेद हो जायेंगे, तो उसके साथ सचमुच यही होता है। यदि किसी ने सोच लिया कि मुझे ज़रूर लकवा हो जाएगा, तो उसे सचमुच लकवा हो जाता है। उस रात......डरे हुए जगजीत ने अंधकार में जब अघोरी की आकृति देखी, तो यही समझा कि अघोरी का त्रिशूल उसके चेहरे पर चल चुका है। उसका चेहरा ऐसे फट गया, जैसे त्रिशूल का वार सचमुच हुआ हो। अनियंत्रित मन के प्रभाव से अंगों का टेढ़ा हो जाना, गल जाना, फट पड़ना आदि कदापि असम्भव नहीं है।

अनियंत्रित मन का प्रभाव प्रकृति और विज्ञान के सभी नियमों को तोड़ देता है। चमत्कार यानी क्या ? प्रकृति और विज्ञान के नियमों का टूटना यानी चमत्कार। डॉक्टर के थर्मामीटर और स्टेथोस्कोप जगजीत को छूते ही खराब हो जाते थे। यह विज्ञान के नियम टूटने का ही चमत्कार था, जिसे जगजीत के अनियंत्रित मन ने सर्जित किया था।

बैंगलोर की रोशनियाँ जब दिखाई पड़ीं, तब आधी रात कब की बीत चुकी थी। मेरा मन आशंकाओं से धड़क रहा था। सारे शहर में मुर्दनी छाई हुई थी, जिसे चीरती हुई हमारी जीप झपट रही थी। दूर से मैंने देखा, हमारे होटल के सामने, सड़क पर, एक छोटी-सी भीड़ जमा है। इतनी रात गए, भीड़ के जमा होने का कारण सहसा मेरी समझ में न आया। मैंने स्वामी शिवानन्द की ओर देखा। वह भी आशंका से मेरी ओर ही देख रहे थे। जीप रुकी न रुकी कि हम दोनों कूद कर उतर पड़े।

लोगों को हटाता हुआ मैं भीड़ के मध्य तक पहुँचा। मुझे जोर से चीखने का मन हो आ गया, किन्तु मैं न चीख सका। मेरा स्वर मर चुका था।

होटल के सभी कमरों की रौशनियाँ जल रही थीं। चौथी मंजिल के जिस कमरे में हमें ठहराया गया था, उसकी एक खिड़की खुली थी। उसी के ऐन नीचे, सड़क पर, जगजीत पड़ा हुआ था। उसकी खोपड़ी फट चुकी थी। वहाँ से खून बहे जा रहा था। जगजीत के जिन्दा होने का सवाल ही नहीं था। जैसा कि प्रमोद ने फोन पर बताया ही था, जगजीत के गाल से लेकर मस्तक तक एक लम्बा चीरा पड़ा था, जिसके टाँके खुल गए थे। वहाँ से भी खून का रेला बह रहा था। जगजीत का बायाँ कान भी नीचे से फटा हुआ था।

पुलिस ने अपनी पोथी में नोट किया—लम्बी, असाध्य बीमारी से ऊबकर जगजीत नामक एक पंजाबी नौजवान ने आधी रात को होटल की चौथी मंजिल के कमरे से कूदकर आत्म-हत्या कर ली।

बीस

आत्मा का होना न होना



जिस आग को तापते हुए मैं और निकुम्भआनन्द बैठे हुए थे, वह बुझने लगी थी। निकुम्भ ने उसे कुरेद कर तेज करने के प्रयास के साथ पूछा, "अघोरियों की मंत्र-शक्ति का ऐसा भयानक अनुभव होने के बावजूद आपने उनके इस गुप्त साधना-शिविर में आने का साहस कैसे कर लिया ?"

मैंने ठण्डे, शांत स्वर में कहा, "मैं यहाँ जगजीत की मौत का बदला लेने आया हूँ।"

निकुम्भआनन्द मेरी ओर ऐसे देखने लगा, जैसे किसी पागल को देख रहा हो। वह बोल उठा, "अघोरियों को आपने अभी तक ठीक से पहचाना नहीं है, महाशय ! हालांकि उनकी प्रचण्ड मंत्र-शक्ति आपकी नजरों के सामने ही आपके अपने एक दोस्त की बलि ले चुकी है। मैं यही कह सकता हूँ, आपकी हथेली दीवार पर चिपका देने वाला निर्मलआनन्द तो हमारा एक बिल्कुल नया और सामान्य अघोरी है। पहुँचे हुए घाघ अघोरियों को अभी आपने देखा ही कितना है ? मैसूर के शाण्डिल्यनाथ भी जिनके सामने

फीके लगें, ऐसे अनेक अघोरी भारत में फैले पड़े हैं।" निकुम्भ के शब्दों में चेतावनी तो थी ही, उपहास भी कम नहीं था।

सुबह होने को थी। ठण्डा वातावरण सहसा कठोर लगने लगा। ठंडक को नकारने के लिए या फिर........जगजीत को याद करके जो क्षोभ हुआ था, उसे झकझोर कर गिरा देने के लिए मैंने अपनी हथेलियाँ बुझती आग पर सेंकनी शुरू कर दीं।

"निकुम्भआनन्द !" मैं हँसने के प्रयास के साथ बोला, "मौत का बदला लेने का तात्पर्य यह नहीं कि मैं अघोरियों को मल्ल-युद्ध के लिए ललकारूँगा या जितनी सिद्धियों का प्रदर्शन वे मेरे सामने करेंगे, उनसे अधिक सिद्धियों का प्रदर्शन मैं उनके सामने कर दिखाऊँगा। बदला लेने का तरीका मेरा अपना है।"

"इससे पहले कि आप आगे बढ़ें, मैं याद दिलाना चाहूँगा कि मैं भी एक अघोरी हूँ। अघोरियों के विरुद्ध सुनने की मेरी सीमाएँ अवश्य होंगी।" निकुम्भआनन्द जरा आवेश में आकर बोल रहा था।

"मुझे मालूम है। मुझे याद भी है। सच पूछें, तो मैं अघोरियों के विरुद्ध कुछ बोलने आया भी नहीं हूँ।"

"तो ?"

"मैं अघोरियों की सच्चाई समझने आया हूँ।"

"हमसे बदला लेने का आपका तरीका क्या है ? बताने की दया करेंगे ?" पुनः निकुम्भ ने व्यंग्य किया।

"अभी मैं आप लोगों को समझ रहा हूँ। जब समझ लूँगा, तब बताऊँगा। अभी तो यहाँ मैंने एक ही दिन बिताया है।" मैंने उत्तर दिया।

निकुम्भ ने कहा, "आप बचने की कोशिश कर रहे हैं।"

"नहीं, निकुम्भ जी।" मैंने गम्भीरता से कहा, "गुरु चैतन्यानन्द ने मुझे कल्पना-योग की दीक्षा दी है। कल्पना-योगी हमेशा आत्म-सम्मानी होता है और आत्म-सम्मानी हमेशा सत्य की खोज करता है। सत्य की खोज तो मेरा कर्त्तव्य है उसी को पूरा करने मैं यहाँ आया हूँ। मेरे मन में यदि अहंकार होता, तो यहाँ आए बगैर ही मैंने अघोरियों की शक्ति को झूठ और असम्भव मान लिया होता। साक्षात् अनुभव लिए बिना ही मैंने आप लोगों की उपलब्धियों को भ्रम और हाथ की सफाई कहकर टाल दिया होता। अहंकारी व्यक्ति बैठा रहता है, खोज करने के लिए गतिशील नहीं होता। आत्म-सम्मानी व्यक्ति निरन्तर सत्य के पीछे गति करता है। अपनी इसी गति के कारण मैं यहाँ आया हूँ......"

"ठहरिए, महाशय !" निकुम्भआनन्द ने टोक दिया, "आप व्यर्थ ही ऊँची बातें कर रहे हैं। आपके आने का उद्देश्य तो बहुत ही भिन्न है। स्वयं आपने स्वीकार किया है कि आप जगजीत की मौत का बदला लेने के लिए...."

मैंने भी उसे टोकते हुए कहा, "नहीं ! बदला लेने का अर्थ वह नहीं है, जो आपने समझा होगा। आपका जब इतना ही आग्रह है, तो लीजिए, बताता हूँ। बदला लेना, मेरे

अनुसार, यह है कि मैं आप लोगों की सिद्धियों की व्यर्थता साबित कर दूँ। आत्मा की मुक्ति के लिए शक्ति का अर्जन, इसी उद्देश्य से आप लोग अघोरी बने हुए हैं न ? किन्तु मैं पूछता हूँ, "आत्मा है भी या नहीं है ? यदि वह है ही नहीं, तो उसकी मुक्ति कैसी और मुक्ति के लिए शक्ति का अर्जन कैसा ?"

"मैं इसी प्रश्न को आपके तन-मन में जगाना चाहता हूँ। यदि मैं सफल हो जाता हूँ, तो निश्चित जानिए कि अपनी समस्त सिद्धियाँ आप लोगों को व्यर्थ लगेंगी। मेरे गुरु एक अघोरी ही थे। अपनी सिद्धियों पर वह भी कम मुग्ध नहीं थे, किन्तु जीवन के अन्तिम दिनों में उन्हें व्यर्थता का अनुभव हुआ। उन्हें लगा कि परमेश्वर वैसा नहीं है, जैसा उन्होंने माना। आत्मा वैसी नहीं है, जैसी वह समझते रहे। स्वर्ग और नर्क भी वैसे नहीं हैं, जैसे वह मानते रहे। उनकी व्यग्रता की सीमा न रही। व्यग्रता के इसी दौर में मैं उनके परिचय में आया। वह अपनी सारी सिद्धियाँ मुझे देने की सोच रहे थे, किन्तु अचानक उन्होंने मुझे वापस भेज दिया, बीबी-बच्चों के पास। उनका तर्क यह था कि सन्यास में पलायन है और पलायन में मुक्ति नहीं है। मुक्ति तो सत्य की खोज में है, सत्य की स्वीकृति में है। संसार में वापस भेजने से पहले उन्होंने मुझे कल्पना योग की दीक्षा दी, ताकि मैं सत्य को खोजना सीख सकूँ और पुराने सत्यों को छोड़कर नवीनतम सत्यों को स्वीकार करने से कभी न हिचकूँ।"

"जो मुझे मेरे गुरुदेव ने दिया है, वही मैं आपको देना चाहता हूँ। आत्मा और परमात्मा को लेकर हजारों वर्षों से जो मान्यताएँ चली आ रही हैं, उन्हें जाँच कर तो देखिए। वे कितनी सत्य हैं ? कितनी असत्य हैं ?"

"आखिर वह आत्मा कैसी है और कहाँ है, जिसकी मुक्ति के लिए आप सब इतनी भयानकता के साथ शक्ति-संचय में लगे हुए हैं ? देखिए पुनः दोहरता हूँ, मैं आप लोगों की सिद्धियों को नकारता नहीं हूँ। मैं इतना अहंकारी नहीं हूँ कि उन्हें व्यर्थ ही नकारता रहूँ। मैं तो उन्हें स्वीकार करता हूँ, फिर भी पूछना चाहता हूँ, 'जिस आत्मा के कल्याण के लिए ये सारी सिद्धियाँ हैं, स्वयं उस आत्मा का अस्तित्व ही कब सिद्ध हुआ है ?'"

निकुम्भआनन्द का चेहरा तमतमा आया, "हम अघोरी एक की आत्मा दूसरे में स्थापित कर देते हैं, दूसरे की आत्मा तीसरे में पहुँचा देते हैं, स्वर्ग-नर्क में भटकती आत्मा को पृथ्वी पर बुलाकर उससे साक्षात् वार्तालाप कर सकते हैं। इधर आप कहते हैं कि आत्मा है ही नहीं।"

मैं दृढ़ता से बोला, "आज तक एक बार भी, कम-से-कम मेरे सामने, साबित नहीं हुआ है कि आत्मा है। वह अमर है या नहीं, बार-बार जन्म लेती है या नहीं, वह परमेश्वर का ही एक अंश है या नहीं, एक की आत्मा को दूसरे में स्थापित किया जा सकता है या नहीं, इत्यादि प्रश्न बाद के हैं। पहला प्रश्न तो यही है कि आत्मा है भी या नहीं।"

निकुम्भ ने कहा, "अच्छा ही है कि आप एक ऐसे शिविर में आए हैं, जहाँ आत्मा से आपका साक्षात्कार जितनी बार चाहेंगे, उतनी बार करवाया जा सकता है। आपने अभी तक बताया नहीं कि हम अघोरियों से बदला लेने के लिए आप क्या तरीका आजमायेंगे।"

"मैं इसका उत्तर दे चुका हूँ।" मैंने कहा, "यदि मैं अघोरियों के सामने उनकी सिद्धियों को व्यर्थ साबित कर देता हूँ, तो जगजीत की मौत का बदला मुझे अपने-आप मिल जाता है।"

निकुम्भ खिलखिला कर हँस पड़ा, "हम अघोरियों का अहं इतना साधारण या नरम नहीं होता, जितना आप सोच रहे होंगे।"

"हाँ, मैं जानता हूँ। सत्य अथवा कठिनाइयों की ओर से आँखें मूँदे रखूँ, ऐसा नादान मैं नहीं। इसके बावजूद मैं प्रयास करना चाहता हूँ।"

"आज मैं देवी के समक्ष आपके प्राणों की रक्षा के लिए प्रार्थना करूँगा।" और निकुम्भआनंद फिर से मेरे उपहास में हँस दिया।

मैंने आकाश की ओर देखा। अघोरियों के साथ मेरा दूसरा दिन प्रारम्भ होने वाला था। पहाड़ के पीछे से पूर्व दिशा के गाल पर लालिमा उभरने लगी थी।

कुछ वर्ष पहले कुम्भ के मेले में एक पहुँचे हुए योगी से मेरा परिचय हुआ था। वह आत्मा और परमात्मा के सन्दर्भ में किसी भी भ्रम के शिकार नहीं थे। मन की शक्तियों को वह पूर्णतया स्वीकार करते थे। मैंने अपनी कुछ जिज्ञासाएँ उनके सामने रखी थीं। जवाब देने के लिए वह तुरन्त योग-मुद्रा में बैठ गए थे।

हम दोनों से जरा फासले पर बड़ा-सा एक पत्थर पड़ा था। वजन बीसेक किलो रहा होगा। उन्होंने मुझे पत्थर को देखते रहने के लिए कहा।

पाँचेक मिनट बाद, मेरे घोर आश्चर्य के बीच, वह पत्थर अपने-आप हिलने लगा। फिर जमीन से अधर भी उठ गया। सहसा, आकाश से, हमारे आसपास छोटे-छोटे पत्थर बरसने लगे। योगी ने यह चमत्कार दसेक मिनट तक लगातार दिखाया फिर सब शान्त हो गया।

"यह मन की शक्ति है।" उन्होंने कहा था, "लोगों को यह बात समझ में नहीं आती। इसीलिए, मात्र लोगों की सुविधा के लिए, इसे हम दैवी शक्ति कह देते हैं। वास्तविकता में तो यह मन की ही शक्ति है। जिन्हें इस शक्ति पर विश्वास न हो, उनसे पूछ कर देखना, यह पृथ्वी, सूर्य, ये अनेक ग्रह-उपग्रह, यह आकाशगंगा, यह प्रचण्ड ब्रह्माण्ड....ये सब अधर में कैसे घूम रहे हैं। इन्हें इतना प्रचण्ड वेग किसने दिया है। किस अगोचर की ओर ये गतिमान हैं। किस प्रचण्ड महाशक्ति के कारण इनका अस्तित्व है। यदि उस महाशक्ति की कल्पना आप कर सकते हों, उस पर रंचमात्र भी विश्वास कर सकते हों, तो मन की शक्तियों पर भी विश्वास अवश्य करें।"

उन योगी जी ने यह भी कहा था, यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वर की मानसिक शक्ति का ही प्रताप है। ईश्वर नामक महाशक्ति ने इस बह्माण्ड की कल्पना को। कल्पना करने से ही बह्माण्ड अस्तित्व में आ गया। उस महाशक्ति की विलक्षण कल्पनाशीलता का एक सूक्ष्म अंश मनुष्य को भी मिला है। ईश्वर ने यदि ब्रह्माण्ड की कल्पना की है, तो मनुष्य ने स्वयं ईश्वर की कल्पना की है। क्या यह मामूली बात है कि ब्रह्माण्ड की

कल्पना करने वाले ईश्वर की कल्पना मनुष्य ने की है ? मनुष्य अपनी कल्पना-शक्ति को, अपनी मानसिक क्षमताओं को, अभी पहचानता ही कहाँ है ? यदि ईश्वर अपनी कल्पना-शक्ति से इस अतल ब्रह्माण्ड को अधर में घुमा सकता है, तो क्या मुझ जैसा मनुष्य एक मामूली पत्थर को कुछ क्षणों के लिए भी अधर में नहीं उठा सकता ? मैंने केवल तीव्र कल्पना की कि पत्थर अधर में उठ गया है और वह सचमुच उठ गया। जो सूक्ष्म चमत्कार मैंने दिखाया है, उसका अन्य कोई स्पष्टीकरण नहीं है।"

इक्कीस

जन्म-पुनर्जन्म के बहीखाते



जंगल में नित्य कर्मों से निबटकर, निकुम्भआनंद के साथ मैं वापस अपने कमरे की ओर जा रहा था। सहसा माता अदिति की पुकार सुनकर हम रुक गए। ज्यों ही हम उन के निकट पहुँचे, वह बोलीं, निकुम्भ ! आज इनका परिचय बाबा अलखआनंद से अवश्य कराना।"

"दोनों पूर्व-परिचित हैं, माँ !" निकुम्भआनंद ने कहा, "मंडला से यहाँ आते समय यह अलखआनंद जी के साथ थे।"

"अच्छा ! किन्तु आत्मा को बुलाने की जो अलौकिक शक्ति बाबा अलखआनंद के पास है, उसका परिचय हमारे अतिथि को न होगा। बाबा अपना प्रयोग अतिथि को दिखाएँ, इसकी व्यवस्था तुम अवश्य करना।"

"निस्संदेह !" निकुम्भआनंद चिहुँक पड़ा। उसने कनखियों से मेरी ओर देखा, जैसे व्यंग्य कर रहा हो, "क्या साक्षात्कार के बाद भी आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं करोगे ? पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को मानोगे नहीं ?"

मैंने भी अपनी रगों को रोमांच से झंकृत होते अनुभव किया। माता अदिति का आभार मानकर, निकुम्भ को साथ लिए हुए, मैं अपने कमरे की ओर लौट चला।

"मृतक की आत्मा बुलाने के प्रयोग तो आपने देखे ही होंगे ?" चलते-चलते निकुम्भआनंद ने पूछा।

"कई।" मैं बोला।

"बाबा अलखआनन्द जो प्रयोग करते हैं, वैसा आपने जीवन में कभी देखा तो दूर, सोचा भी न होगा।" निकुम्भआनंद ने अत्यंत दृढ़ता और विश्वास से कहा।

"मैं तो आत्मा के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करता। मृतक की आत्मा बुलाने का कोई भी प्रयोग मुझे कितना रोमांचक लग सकेगा ?"

"किन्तु आप तो कल्पना-योगी हैं न !" निकुम्भ ने मेरे शब्दों से मुझी पर वार किया, "सत्य को आप परिवर्तनशील समझते हैं। आज तक का आपका सत्य भले ही यह रहा हो कि आत्मा नहीं है किन्तु बाबा अलखआनंद का प्रयोग देखने के बाद आप एक नया सत्य अवश्य पा जाएँगे। आप भी कहेंगे कि आत्मा है और निश्चित रूप से है। और यदि आत्मा है तो पूर्वजन्म भी है और पुनर्जन्म भी है। आप अपने पुराने सत्य के साथ चिपके रहने की जिद तो नहीं करेंगे न ? नए सत्य को अंगीकार करते हुए आपको कष्ट तो नहीं होगा ?"

"कदापि नहीं।" मैं गंभीरता से बोला, "किन्तु सत्य के नाम पर जो भी प्रस्तुत किया जाएगा, उसे मैं पूरी तरह जाचूँगा।"

"अवश्य ! अवश्य !"

अनायास हम दोनों एक तने पर बैठ गए। पुराने वृक्ष का वह तना तिरछा उगा हुआ था। उस पर चढ़ने और बैठने में हमें कोई असुविधा न हुई। मैंने पूछा, "निकुम्भ जी ! आत्मा के बारे में अपनी मान्यताएँ मैंने आपके सामने रख दीं। क्या आप भी अघोरियों की मान्यताएँ मुझे बतायेंगे ?"

"क्यों नहीं !" निकुम्भ उत्साहित होकर बोला, "हम उस विचारधारा के विरुद्ध हैं, जो देवत्व को सृष्टि का कारण मानती है। हमारे अनुसार, शक्ति ही इस सृष्टि का कारण है। आत्मा एक सनातन तत्व है। यह तत्व शक्ति-स्वरूप में अवतरित होना चाहता है। लिंग और योनि शक्ति के धारक हैं। इन्हीं के संयोग से आत्मा अवतरित होती है। वह शरीर में रहती है। आत्मा के दो भेद हैं—स्त्री आत्मा और पुरुष आत्मा। इसी तरह, शक्ति के भी दो रूप हैं—घोर और अघोर। घोर शिव का रुद्र स्वरूप है। अघोर शिव स्वयं हैं। घोर मरणशील है। अघोर अमरणशील है। घोर और अघोर, दोनों, अग्नि के ही रूप हैं। अग्नि यानी शक्ति। घोर अपने धनुष से काल-रूपी बाणों की वर्षा करता है। ताकि मृत्यु प्रकट हो और शरीर के बंधन से आत्मा को मुक्त करें। अघोरी मंत्र साधते हैं। अघोरी की आत्मा चंद्रलोक में पहुँचती है। चंद्रलोक का देवता आत्मा से पूछता है, 'तू कौन है ?' आत्मा कहती है, 'जो तू है, वही मैं हूँ। 'चंद्रलोक के द्वार खुल जाते हैं। आत्मा प्रवेश करती है। चंद्रलोक से आत्मा ब्रह्मलोक में जाती है। वहाँ विजरा नामक नदी है। इल्य नामक वृक्ष के पास सालज्य नामक नगरी है और......"

"आगे का वृत्तांत मुझे मालूम है।" मैंने निकुम्भआनंद को टोक दिया।

वह भूतपूर्व डॉक्टर सहसा खिलखिला कर हँस पड़ा, "सुनिए तो सही ! सुन्दर कथा है।" उसने हँसते-हँसते आग्रह किया।

मैं बोला, "ब्रह्म और आत्मा के संवाद तक 'कौषितकी उपनिषद' मैंने पढ़ रखा है।"

"तो क्या आप विजयशालिनी मंत्र की शक्ति से परिचित हैं ?" निकुम्भआनंद ने आश्चर्य से पूछा।

"उसके बारे में पढ़ा अवश्य है। किसी तांत्रिक से उसका अनुभव नहीं ले सका हूँ।" मैं बोला।

"उधर देखिए।" उसने उंगली से मेरा ध्यान एक ओर आकर्षित किया।

मंडला से जो अलखआनन्द मुझे अपने साथ यहाँ लाया था, वह अपने दोनों पैर फैलाकर उधर खड़ा था। दोनों हाथ उसने सीने पर मोड़ रखे थे। उसके चेहरे पर कठोरता थी। उसकी बड़ी-बड़ी लाल आँखें आकाश की ओर टिकी थीं। वह पलक नहीं झपक रहा था। आकाश में उड़ता जो भी पंछी उसकी दृष्टिरेखा में आ जाता, वह उसी क्षण निर्जीव होकर ऐसे गिर पड़ता, जैसे अचानक गोली लगी हो। अन्य अघोरी दौड़-दौड़ कर उन गिरते निर्जीव पंछियों को अधर में ही पकड़ रहे थे। मुझसे देखा न गया। निर्दोष पंछियों पर त्राटक का वह संहारक प्रयोग भैंसे के बलिदान से भी अधिक घृणास्पद और त्रासजनक था।

मैं एक ब्राह्मण के जवान बेटे से मिल चुका हूँ, जो उर्दू का ज्ञाता न होते हुए भी, अचानक, फर्राटे से उर्दू बोलने लगता था। लोग यही समझते थे कि उस पर किसी मुसलनान का जिन्न चढ़ता है। बाद में, एक मौलवी जी को बुलाकर जाँच करवाई गई कि उस युवक की उर्दू का अर्थ क्या है। पता चला कि वह ब्राह्मण युवक, वर्षों पहले रेडियो पर सुने हुए किसी समाचार प्रसारण को ही दोहराता रहता था। उस भाषण के अलावा, अन्य किसी भी प्रकार की उर्दू उसे नहीं आती थी।

यदि यह 'भूत चढ़ना' नहीं था, तो क्या था ? यह केवल अवचेतन मन का चमत्कार था। असीम शक्तियों का स्वामी अचेतन, किसी कारणवश, किसी विशेष क्षण में, अचानक जागृत हुआ। उसने उर्दू भाषण के एक-एक शब्द को, सही-सही उच्चारण के साथ याद रख लिया। बाद में भी यही अवचेतन मन समय-समय पर जागृत होता रहा। प्रत्येक जागरण के समय उस युवक ने फर्राटे से वही उर्दू बोली।

नन्हे-नन्हे बच्चे अपने पुनर्जन्म की कथाएँ कहने लगते हैं। पूर्वजन्म के रिश्तेदारों और स्थलों को वे सही-सही पहचान लेते हैं। यह सब भी अवचेतन का ही चमत्कार है। उस ब्राह्मण युवक ने रेडियो पर सुनी उर्दू जिस प्रकार अपने अवचेतन में याद रख ली थी, उसी प्रकार बड़ों की बातों पर कान लगाकर बैठे बच्चे भी, कभी-कभी, कुछ बातों को अपने अवचेतन में याद रख लेते हैं। यदि सूक्ष्मतापूर्वक जाँच करें, तो पता चलेगा कि

पूर्वजन्म के जितने भी सम्पर्क-सूत्रों को किसी चमत्कारी बच्चे ने पहचाना है, वे केवल ऐसे ही सूत्र हैं, जिनके बारे में घर के बड़े-बूढ़ों के बीच या आस-पड़ोस में कहीं, अक्सर बातें होती रही हैं। चमत्कारी बच्चा, जाने-अनजाने में, उन्हीं बातों को दोहरा रहा है। अहं तो बच्चे में भी होता है न। चमत्कारी बातें करके बच्चा सबके आकर्षण का केन्द्र बन जाता है। यह उसके अहं की सीधी संतुष्टि है। इस संतुष्टि से परे, न तो कोई पूर्वजन्म है और न ही कोई पुनर्जन्म।

इस सन्दर्भ में मुझे अपने गुरु चैतन्यानन्द जी के शब्द हमेशा याद आते हैं। उनकी स्पष्ट अनुभव-वाणी यही कहती थी—

मनुष्य जब अपनी कल्पना शक्ति का उपयोग करता है, तब ईश्वर तक पहुँचता है, लेकिन जब केवल अपनी बुद्धि का उपयोग करता है, तब अपने-आप में फँसकर रह जाता है। बुद्धिवादी हो जाने के कारण ही मनुष्य इतना स्वकेंद्रित हो गया कि उसने जैसा व्यक्तित्व स्वयं का था, वैसा ही व्यक्तित्व ईश्वर को भी दे दिया। ईश्वर को एक महाशक्ति मानने के बजाए उसने एक व्यक्ति मान लिया। व्यक्ति भी ऐसा, जो धर्म-अधर्म की अदालत खोलकर बैठा हो, जो धर्मात्माओं और अधर्मियों को अलग-अलग छाँटकर उन्हें या तो सुख देता हो या दुःख देता हो.....किन्तु ईश्वर कोई व्यक्ति तो है नहीं। वह तो केवल एक महाशक्ति है। यह केवल मनुष्य का अहंकार ही है, जिसने मनुष्य जैसा ही व्यक्तित्व ईश्वर को दे दिया है।

गुरुदेव ने स्पष्ट कहा था...मनुष्य की बुद्धिवादिता की सीमा बड़ी जल्दी आ जाती है। बुद्धि की सीमा है विज्ञान। विज्ञान यानी नियम। विज्ञान की तरह बुद्धि भी नियमों की जंजीरों में जकड़ी रहती है...जबकि कल्पनाशक्ति नियमों को स्वीकार ही नहीं करती, यदि करती होती, तो मनुष्य ईश्वर की कल्पना कभी न कर पाया होता, क्योंकि ईश्वर की अलौकिक कल्पना विज्ञान अथवा तर्क के नियमों पर आधारित न तो है और न हो सकती है। मनुष्य विज्ञान और तर्क से ऊपर उठा, तभी वह ईश्वर की कल्पना कर सका। मनुष्य ने बुद्धि के बंधन तोड़े, तभी वह ईश्वर तक पहुँच सका।

इसके बाद का खेल सहसा बिगड़ गया। बुद्धि के जो बंधन टूटे थे, उनका शिकंजा मनुष्य पर फिर से कस गया। बुद्धि के नशे में चूर कुछ मनुष्यों ने कहा कि ईश्वर है ही नहीं। शेष मनुष्यों ने ईश्वर को अपना सेवक समझ लिया। जन्म देने के लिए ईश्वर, पालन-पोषण के लिए ईश्वर, कर्म का फल देने के लिए ईश्वर, सुकर्म और कुकर्म के बहीखाते सम्भालने के लिए ईश्वर, मृत्यु के लिए ईश्वर, मरणोपरान्त गति के लिए भी ईश्वर। मनुष्य ने क्षण-क्षण और कदम-कदम पर ईश्वर से अपनी सेवा करवानी शुरू कर दी। ऐसी सेवा से मनुष्य के अहंकार को असीम संतुष्टि मिली। बुद्धि की महत्ता ज्यों-ज्यों बढ़ी, त्यों-त्यों अहंकार का भार भी मनुष्य के चेतन-अचेतन पर बढ़ता चला गया।

इसी अहंकार के कारण मनुष्य ने आत्मा और उसके अमरत्व की कल्पना की। मनुष्य ने कहा—'आत्मा कभी नहीं मरती।' वास्तव में मनुष्य कह रहा था, 'मैं कभी नहीं मरता।'

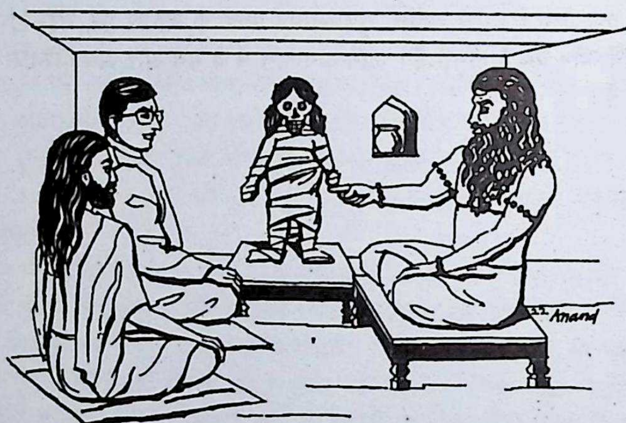
आत्मा के अमरत्व की कल्पना करते ही पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के बहीखाते खुल गए।

पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के कई किस्सों की जाँच मैंने स्वयं कर देखी है। अधिकांश किस्सों में मैंने मनुष्यों के उसी अहंकार का चमत्कार देखा, जो आज के बौद्धिक मनुष्य का पिंड छोड़ने को तैयार है ही नहीं। बौद्धिक मनुष्य भी अपने अहं की तुष्टि के लिए किस प्रकार चमत्कारों पर विश्वास करने लगता है, इसकी विशद चर्चा उन कन्नड़ विद्वान से हुई ही थी।

पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के शेष किस्सों में मैंने मनुष्य के अवचेतन की अलौकिक शक्ति के दर्शन किए हैं। संस्कार और अज्ञान जब मन की शक्तियों को दबाते हैं, तब मन विद्रोह करता है। यह विद्रोह उस व्यक्ति को कभी तो ढोंगी बना देता है और कभी भ्रमित भी कर देता है। ऐसे व्यक्ति, सुनी-सुनाई बातों के आधार पर, नई-नई चमत्कारिक बातें सोचने और बकने लगते हैं। जाने-अनजाने में वे भ्रम और अंध-विश्वास के प्रचारक बन जाते हैं।

बाईस

जगजीत की 'आत्मा'



केवल अपने दृष्टिपात से ही उड़ते पक्षियों की जान निकाल लेने का वह प्रयोग बाबा अलखआनन्द ने कोई दस मिनट तक जारी रखा। साठ-सत्तर पक्षी मर कर आकाश में गिर गए। अघोरियों ने एक जगह उनका ढेर लगा दिया। त्राटक के कारण अलखआनन्द की आँखें सुर्ख हो गई थीं। काफी देर बाद उसने हमारी ओर नजर घुमाई। कल उसने मेरी जो उपेक्षा की थी, वह आज भी ज्यों-की-त्यों थी। निकुम्भ ने माता अदिति का संदेश उसे दिया। मैंने भी नम्रतापूर्वक बताया कि मृतक की आत्मा बुलाने का प्रयोग देखने के लिए मैं कितना उत्सुक हूँ। थोड़ा सोचने के बाद उसने कहा, "वह 'पूतलिका प्रयोग' है। आप उसे दिन के प्रकाश में देखना चाहेंगे या रात्रि के अंधकार में ?"

"निस्संदेह दिन के प्रकाश में।" मैंने कहा।

"दोपहर के भोजन के बाद मुझसे मिलिए।"

"धन्यवाद !"

रात भर का जगा हुआ था। अब कुछ खाना और सोना अनिवार्य हो गया था। मैंने

अघोरियों से विदा ली। अघोरी भी सारी रात जागते और सुबह से दोपहर तक सोते थे। दिन में सोने से मच्छरों के त्रास से मुक्ति भी अपने-आप मिल जाती थी।

तीनेक घण्टे सोने के बाद मैंने भोजन की तैयारी की। उस दौरान मेरे दिमाग में आत्माओं के ही विचार घूमते रहे। गुरु चैतन्यानन्द के शब्दों को मैंने बार-बार याद किया। आत्मा, परमात्मा और भूतात्मा आदि के सन्दर्भ में उन्होंने मुझे जो दृष्टि दी थी, वैसी आज तक किसी ने नहीं दी। गुरुदेव की वाणी ने भावनात्मक संकट के प्रत्येक अवसर पर मुझे नैतिक बल और आत्म-सम्मान दिया है। जब सभी दिशाएँ डूबने लगती हैं, तब, आज भी, गुरुदेव की प्रेरणा ही मेरा मार्ग-निर्देशन करती है।

लगभग बारह बजे निकुम्भआनन्द मुझे बुलाने आ पहुँचा। तब तक मैं भोजन बनाकर, खा-पीकर, निवृत्त हो चुका था। खम्बों वाले बरामदे को पार करते हम दोनों आगे बढ़े।

चौगान में कल के जैसा ही धमाल मचा हुआ था। यज्ञवेदी के चारों ओर बैठकर कई अघोरी आहुतियाँ दे रहे थे। छः-सात अघोरियों को मैंने एक भैंसे को खींचकर यज्ञवेदी की तरफ ले जाते देखा। मैंने निकुम्भ से पूछा, "बलि आज भी दी जाएगी ?"

"जब तक साधना चलेगी, तब तक रोज। अघोरियों को भी भोजन तो रोज ही चाहिए न !" उसने हँसकर उत्तर दिया।

मध्य का एक बड़ा कमरा मैंने खुला देखा। खोपड़ियों के ढेर के पास बैठकर चार अघोरी मिट्टी की एक बड़ी-सी मूर्ति बना रहे थे। निकुम्भआनन्द ने बताया, "वह चामुंडा की मूर्ति बनेगी।"

बगल में ही, एक तख्त पर, वही लड़की सोई हुई थी, जिसे कल वामदेव उठाकर लाया था और जिस पर पूतलिका प्रयोग किया गया था। उसकी ओर संकेत करके निकुम्भ ने कहा, "इस लड़की के बलिदान के बाद, इसकी आत्मा की स्थापना इसी मूर्ति में की जाएगी। इसे हम 'प्राण-प्रतिष्ठा' कहते हैं।"

सुनकर मेरे दिमाग में ऐसे भाले चलने लगे कि आगे कुछ पूछने का इरादा ही मैंने छोड़ दिया।

बरामदे के अंत में हम बाईं ओर मुड़ गए, जिससे एक नया ही बरामदा शुरू हो गया। 'यू' आकार के उस मकान के दूसरे छोर पर हम पहुँच गए। वहाँ एक कमरे में अलखआनन्द हमारे ही इंतजार में बैठा था। मैं उसके सामने बैठ गया। हमारे बीच कोई बातचीत न हुई और समय बीतने लगा। कभी मैं अलखआनन्द की ओर देख लेता, तो कभी फर्श की ओर।

चारों दीवारों पर नजर फेर कर मैं फिर से अलखआनन्द को ही देखने लगता। ज्यों ही उसकी आँखों से आँखें टकरातीं, त्यों ही मुझे एक खिंचाव-सा महसूस होता। दृष्टि का यह सम्पर्क ज्यों ही टूटता, त्यों ही सिर घूमने लगता। उसकी विशाल दाढ़ी के बाल, सीने के बालों के साथ, एक-रूप हो गए थे। इससे लगता था कि दाढ़ी पेट तक फैल गई है। बार-बार उसकी सम्मोहक आँखों में ताकने का मन होता था। उन लाल

आँखों की भयानक शक्ति मैंने आज सुबह ही साक्षात् देखी थी। चीत्कार भी किए बिना जो पंछी निर्जीव होकर आकाश से गिरे थे, उसका ढेर मेरी आँखों के सामने घूमने लगा। एकबारगी मुझे भी ऐसा लगा, जैसे मैं एक पंछी हूँ और मर कर उसी ढेर में पड़ा हूँ। मैं अपने मन पर अलखआनन्द का स्वामित्व नहीं चाहता था। आत्म-सम्मान जगाकर मैंने मन-ही-मन उसका प्रतिकार किया।

अलखआनन्द कसमसा उठा। जिस आसन पर वह बैठा था, उसके नीचे से उसने एक पुतला बाहर निकाला। लगभग ढाई फीट ऊँचे उस पुतले को उसने अपने नजदीक एक आसन पर खड़ा कर दिया। पुतला विचित्र था। भयानक भी कम नहीं था। मानव खोपड़ी को रंग कर उसका चेहरा बनाया गया था। खोपड़ी में, आँख के दोनों छिद्रों में, एक-एक बड़ी-सी कौड़ी इस प्रकार लगाई गई थी कि वह पुतलियों की तरह हिल सके। सिर पर नकली बाल चिपकाए गए थे। दाँतों के आसपास लाल रंग लगाकर होंठ बनाए गए थे। खोपड़ी के जबड़े का भाग भी सही-सलामत था, जो हिल-डुल सकता था। इससे ऐसा लगता, जैसे खोपड़ी मुँह खोलती और बन्द करती है। खोपड़ी के नीचे, चिथड़े ठूँस कर बनाया गया हो, ऐसा बेडौल शरीर था।

अलखआनन्द उस पुतले से जरा दूर हटा। पुतले की ओर देखता हुआ वह मंत्रोच्चार करने लगा। एक ही सुर में बोले जा रहे उन मंत्रों में तीव्र सुर भी रह-रह कर आभास दे जाते। शांत वातावरण और निरन्तर एक ही सुर में मंत्रोच्चार के कारण झपकी-सी आने लगती और मैं चौंक जाता। अनुमान न रहा कि ऐसा कितने समय तक चलता रहा। अचानक मैंने पाया कि खोपड़ी की आँखों की जगह जो कौड़ियाँ लगी हैं, वे दाएँ-बाएँ घूम रही हैं। पुतले ने मुँह खोलना और बंद करना शुरू किया, मानो दाँत किटकिटा रहा हो। मैंने स्वयं को अधिकतम सावधान कर लिया।

अलखआनन्द का गम्भीर स्वर मैंने सुना, "आप किस मृतक की आत्मा से बात करना चाहते हैं ?"

पल भर तो मैंने सोचा कि किसी जीवित मनुष्य का नाम लेकर, उसकी आत्मा को बुलाने की मसखरी कर देखूँ। अगले ही पल मैंने इस विचार को छोड़ दिया और कहा, "मैं अपने स्वर्गीय मित्र जगजीत की आत्मा से बात करना चाहूँगा।"

सन्नाटा छा गया।

धीरे-धीरे अलखआनन्द के होंठ फकड़ने शुरू हुए। अस्पष्ट शब्द सुनाई देने लगे। कुछ मिनटों बाद उस पुतले में फिर से हरकत होने लगी। अचानक पुतले ने अपना चेहरा अलखआनन्द की ओर घुमा दिया।

अलखआनन्द ने हौले से पूछा, "तू कौन है ?"

बहुत दूर से, न जाने किन गहराइयों से, आवाज आ रही हो, इस तरह पुतले के मुँह से ये शब्द सुनाई दिए, "जगजीत ! मैं जगजीत की आत्मा हूँ।"

अलखआनन्द ने मेरी ओर उंगली उठाकर पूछा, "इन्हें पहचानता है ?"

पुतले ने मेरी ओर चेहरा घुमाया। थोड़ी देर मानो वह मुझे ताकता रह गया। खोपड़ी की आँखों के काले छिद्रों में लगी कौड़ियाँ घूमने लगीं। सहसा वे स्थिर हो गईं। कुछ पल बाद वही गहरी और गम्भीर आवाज सुनाई दी।

"हाँ.....यह मेरा दोस्त है।"

"नाम ?"

"सुरेश सोमपुरा।"

"वह तुझसे कुछ सवाल पूछना चाहते हैं। तुझसे बात करने को उत्सुक हैं। क्या तू बात करेगा ? जवाब देगा ?" अलखआनन्द ने पुतले से पूछा।

थोड़ी शांति के बाद पुतले ने कहा, "हाँ !"

इस पर अलखआनन्द मेरी ओर देखकर बोला, "लीजिए, अपने मित्र की आत्मा से बात करिए।"

"जगजीत। तुमसे मिलकर बड़ी खुशी हुई।" मैं बोला।

"मुझे भी ऐसी ही खुशी हुई।"

अब मैं पूर्णतया चैतन्य हो गया था। अलखआनन्द ने मुझ पर मोहनिद्रा का जो प्रयोग किया था, उसके बचे-खुचे प्रभाव से भी मैं छूट गया था। ऐसा केवल इसलिए संभव हो सका था कि मैं कल्पना-योगी था। मेरा आत्म-सम्मान बहुत जगा हुआ था। धीरे-धीरे मेरी समझ में आने लगा था कि मुझे क्या दिखाया और क्या सुनाया जा रहा है।

"क्या सचमुच तुम जगजीत की आत्मा हो ?" मैंने सावधानी से पूछा।

"हाँ।"

"आत्मा होने के नाते क्या तुम गोचर-अगोचर की तमाम बातें बता सकते हो ?"

"हाँ।"

"बताओ, 'माइक्रोडोल' का फार्मूला क्या है ?"

कमरे में सन्नाटा छा गया। अलखआनन्द और निकुम्भआनन्द, दोनों मेरी ओर ताकने लगे।

पुतले ने अपनी खोपड़ी अलखआनन्द की ओर घुमा दी। थोड़ी देर तक उन दोनों के बीच कुछ खुसर-फुसर चलती रही। फिर अलखआनन्द ने मुझसे कहा, "आपका प्रश्न, आपके दोस्त की आत्मा को समझ में नहीं आ रहा है।"

"आश्चर्य !" मैं बोला, "मेरा प्रश्न तो बड़ा ही सरल है।"

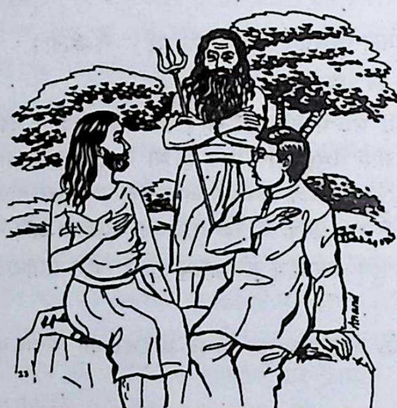
"आप क्या पूछना चाहते हैं ?" अलखआनन्द के स्वर में उलझन थी।

"जगजीत एक फोटोग्राफर था। इसी नाते मैंने यह सवाल उससे पूछा। 'माइक्रोडोल' फिल्म डेवलप करने का एक प्रसिद्ध केमिकल है। यह केमिकल कैसे बनाया जाता है, यही मैंने जगजीत से पूछा है। जगजीत की आत्मा के पास यह सीधी-सादी जानकारी होनी ही चाहिए।"

कमरे में फिर से सन्नाटा छा गया।

तेईस

अलखआनन्द की उलझन



बाबा अलखआनन्द के चेहरे पर उलझन की रेखाएँ और भी गहरी हो चुकी थीं। आखिर उसने गम्भीरता से कहा, "मत भूलिए, आप एक आत्मा से बात कर रहे हैं। आत्माओं से कभी दुनियावी सवालात नहीं पूछने चाहिए। दुनियावी बातों से आत्माओं का नाता टूट चुका होता है। आप कोई आध्यात्मिक जिज्ञासा सामने रखिए। आत्मा अवश्य जवाब देगी।"

फिर से पुतले ने अपना चेहरा मेरी ओर घुमा दिया।

मैंने पूछा, "मृत्यु के बाद आत्मा की क्या गति है ? आत्मा कहाँ जाती है ?"

पुतले ने अपने धीर-गम्भीर स्वर में बोलना शुरू किया। उसकी कौड़ियाँ हिलतीं, तो ऐसा लगता, मानो वह आँखें झपका रहा है। उसका जबड़ा हिल रहा था। यही लगता था, जैसे पुतला ही जवाब दे रहा है। शब्द के उच्चारण के साथ जबड़े की हरकत का मिलान नहीं था, लेकिन तो भी यही लग रहा था, जैसे आवाज पुतले के मुँह से आ रही है।

"शरीर से मुक्त होकर आत्मा चन्द्रलोक पहुँचती है। चन्द्रलोक का देव आत्मा से पूछता है, 'तू कौन है ?' आत्मा कहती है, 'जो तू है, वही मैं हूँ।' इस पर चन्द्रलोक के द्वार खुल जाते हैं। आत्मा प्रवेश करती है। वहाँ से आत्मा ब्रह्मलोक में चली जाती है। ब्रह्मलोक तक पहुँचाने वाले मार्ग को देवायान कहते हैं। इस ब्रह्मलोक में एक सरोवर है। विजरा नामक नदी है। उसके किनारे इल्य नामक घना वृक्ष है। थोड़े अन्तर से सालज्य नामक नगरी है। इस नगरी के मध्य में अपराजित नामक महल है। महल में ऐसा मंडप है जो सारे आकाश पर आच्छादित है। सुन्दर आसन रखे हैं। सोने का चमचमाता पलंग है। मानसी और चाक्षुसी नाम की दो नारियाँ पुष्प एकत्र कर मालाएँ गूँथ रही हैं। यहाँ आत्मा ब्रह्मा से मिलती है। इस मिलन से पहले वह विजरा नदी में स्नान कर अपनी जरा से मुक्त हो चुकी होती है। अनेक अप्सराएँ आत्मा को ब्रह्म के अलंकारों से सजाती हैं। इसके बाद आत्मा अपने पाप-पुण्य का त्याग करती है। फिर वह सालज्य प्रदेश में पहुँचती है। यहाँ वह ब्रह्म के रस और तेज को ग्रहण करती है। इसके बाद......"

मैं खिलखिलाकर हँस पड़ा।

पुतला चौंक कर चुप हो गया। अलखआनन्द ने चकित दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैंने हँसते-हँसते ही पुतले से कहा, "ओए ! जगजीत। धरम-करम की ये बातें तुझे कहाँ से पता चलीं ? गुरुद्वारे में तो ये बातें कोई सुनाता नहीं। ये तो अघोर पंथ की बातें हैं। क्या मरने से पहले तू अघोरी हो गया था ? वाह, भई, वाह !" और मैंने फिर से हँसना शुरू कर दिया। मेरी यह हँसी नकली नहीं थी। सचमुच मैं इतना प्रसन्न था कि हँसी रोक नहीं पा रहा था।

पुतला शांत, चुपचाप, खड़ा रह गया था। अचानक टोकने और खिलखिलाने के लिए अलखआनन्द मुझसे रुष्ट हो गया। धमकी के स्वर में उसने कहा, "आप आत्मा को बुलाकर उससे मजाक नहीं कर सकते। आत्मा नाराज हो गई तो आपको नुकसान पहुँचा सकती है।"

"अरे, यह तो मेरे जिगरी दोस्त की आत्मा है।" मैंने हँसना जारी रखा, "यह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ेगी अलखआनन्द जी ! अब आप इस आत्मा को विदा कर दें। मुझे और कुछ नहीं पूछना है। मुझे आपके प्रयोग से संतोष हुआ है।"

अन्तिम वाक्य बोलते समय मैं संजीदा हो जाने की ज्यादा-से-ज्यादा कोशिश कर रहा था।

थोड़ी ही देर में मैंने और निकुम्भआनन्द ने वहाँ से विदा ले ली। मैंने निकुम्भ का हाथ पकड़ लिया। खींचता हुआ मैं उसे जंगल के अन्दर ले गया। वहाँ एकांत में मैं पेट पकड़कर हँसने लगा। निकुम्भ बार-बार हँसी का कारण पूछता था, लेकिन हँसी रुकती, तभी तो मैं बताता।

आखिर मैंने कहा, "आत्मा का अस्तित्व साबित करने का एक और प्रयोग आज असफल हो गया। मुझे बेहद खुशी है कि आज भी मेरी ही मान्यताएँ सच्ची साबित हुई हैं। आत्मा नहीं होती, निकुम्भ ! कहीं नहीं होती।"

"आप इस प्रयोग को असफल मानते हैं ?"

"हाँ, पूर्णतया असफल !" मैं बोला, "अलखआनन्द के पास केवल शब्द-भ्रम पैदा करने की विद्या है। मेरे प्रश्नों के उत्तर जगजीत की आत्मा नहीं, बल्कि स्वयं अलखआनन्द दे रहा था। जगजीत पंजाबी था। इसके बावजूद उसने गुरु ग्रंथ साहिब के अनुसार आत्मा की गति बयान नहीं की। उसने तो अघोर पंथ के अनुसार आत्मा की गति बयान की। इसी से मैं समझ गया कि जो आवाज मैं सुन रहा हूँ, वह स्वयं अलखआनन्द की आवाज है।"

"लेकिन............ " निकुम्भआनन्द ने टोकना चाहा। मैंने उसे रोककर अपनी ही बात जारी रखी, "शब्द-भ्रम की कला को अंग्रेजी में 'वेण्ट्रीलोक्विज्म' कहते हैं। जिस तरह हिप्नोटिस्ट आज कोई अजूबा नहीं है, उसी तरह 'वेण्ट्रीलोक्विस्ट' भी कोई अजूबा नहीं है। इस विद्या का जानकार मन-ही-मन इस प्रकार बोल सकता है कि उसका स्वर कहीं और से आता महसूस होता है। स्वर किसी स्थान विशेष में गूँज सकता है और किसी व्यक्ति विशेष के मुँह से भी सुनाई पड़ सकता है। 'वेण्ट्रीलोक्विस्ट' अपने हाथ की करामात से पुतले के चेहरे और होठों के हावभाव नियंत्रित रखते हैं। अलखआनन्द की खूबी यह है कि पुतले के हावभाव का संचालन वह हाथ की करामात से न करके, अपनी मानसिक शक्ति से करता है।

निकुम्भआनन्द चकित-सा मेरी ओर देख रहा था।

मैंने आगे कहा, "संदेह तो मुझे तभी हो गया था, जब मैंने 'माइक्रोडोल' वाला सवाल किया और जवाब न पा सका। अलखआनन्द ने 'माइक्रोडोल' का नाम भी कभी न सुना होगा। अगर वाकई जगजीत की ही आत्मा आई होती, तो 'माइक्रोडोल' का फार्मूला उसने झट बता दिया होता। अलखआनन्द ने मेरे मन पर अधिकार करके इसका जवाब खोजने की कोशिश की, किन्तु उसे इसमें भी सफलता न मिली, क्योंकि मैंने अपने स्वाभिमान को पूरी सावधानी के साथ जगा रखा था।"

मैं रुका। निकुम्भ की आँखों में आघात का भाव था। वह कुछ बोल नहीं पा रहा था।

"किन्तु एक बात मुझे माननी ही पड़ेगी।" मैंने कहा, "आत्मा को बुलाने के जितने भी प्रयोग आज तक मैंने देखे हैं, उनमें सर्वश्रेष्ठ प्रयोग अलखआनन्द का ही है। इस दृष्टि से वह निस्संदेह बधाई का पात्र है, किन्तु.....आम आदमी की भाषा में यदि 'वेण्ट्रीलोक्विस्ट' का वर्णन करना होगा, तो मैं उसे 'ठग' ही कहूँगा। इस दृष्टि से.... आपका अलखआनन्द एक बेहतरीन ठग है। वह कितना बड़ा अघोरी है, मुझे नहीं मालूम, किन्तु वह एक बहुत बड़ा ठग है, यह मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ।"

उस वक्त हम एक बड़ी शिला पर बैठे हुए थे। आसपास क्या है, इसका होश हमें नहीं था। अचानक पत्ते खड़कने की आवाज सुनकर मैंने और निकुम्भआनन्द ने पलट कर पीछे देखा। निकुम्भ के मुँह से, रोकते-रोकते भी, एक हल्की चीख निकल पड़ी।

मेरे ऐन पीछे, दोनों हाथ सीने पर मोड़ कर, बड़ी दृढ़ता के साथ अलखआनन्द खड़ा था। उसकी आँखों में क्रोध धधक रहा था। निस्संदेह उसने मेरे शब्द सुन लिए थे।

सीने पर मुड़कर भिंचे हाथों के नीचे उसका भयंकर त्रिशूल मौजूद था। सूर्य की किरणें त्रिशूल की तीनों नोकों पर चमक रही थीं। ज्यों ही मैंने पलट कर देखा, त्यों ही त्रिशूल की नोकों पर बैठे तीन-तीन सूर्य मेरी आँखों में चुभने लगे। साक्षात् मृत्यु मेरे सामने खड़ी थी।

मेरा हृदय एक पल के लिए मानो धड़कना ही भूल गया। अगले पल वह जोरों से धड़कने लगा। निकुम्भ की दशा भी बुरी थी। कुछ देर तक हम तीनों एक-दूसरे को ताकते रह गए।

अलखआनन्द की थरथराती उंगलियाँ त्रिशूल को छूने लगी थीं। वह फैसला नहीं कर पा रहा था कि त्रिशूल मेरे सीने में उतार दे या नहीं। सहसा उसके चेहरे पर ऐसा भाव आया, जैसे उसने फैसला कर लिया है। वह मेरी दिशा में बढ़ने लगा। मैं पलट कर भागा नहीं। भागने का कोई अर्थ नहीं था। यदि उसने मुझे त्रिशूल मारने की सोच ली है, तो वह मार कर रहेगा, मैं भागूँ चाहे न भागूँ। मैं स्थिरता से खड़ा रहा। अलखआनन्द बिल्कुल नजदीक आकर रुक गया। खामोशी अलखआनन्द ने ही तोड़ी।

"मुझे आपसे कुछ प्रश्न पूछने हैं।" उसने मुझसे कहा।

मुझे आश्चर्य हुआ। अलखआनन्द के मुँह से इन शब्दों की मैंने कदापि आशा नहीं रखी थी। मेरी बढ़ी हुई धड़कन शांत होने लगी। आश्चर्य के साथ-साथ मुझे खुशी भी कम नहीं हो रही थी। अघोरियों के त्रिशूल के सामने मैं निहत्था भला कैसे टिकता ? किन्तु संवादों के क्षेत्र में उनसे टक्कर लेने के लिए मैं सदैव प्रस्तुत था।

मैंने कहा, "क्षमा कीजिएगा, आपके लिए अभी-अभी मैंने 'ठग' जैसा शब्द इस्तेमाल किया। आपको अवश्य क्षोभ हुआ होगा, किन्तु...मैं इतना उत्तेजित था कि...अचानक वैसा शब्द मेरे मुँह से निकल गया। आपकी तांत्रिक उपलब्धियों को मैं नकार नहीं सकता। आपने केवल मानसिक शक्ति से पुतले को संचालित किया। यह मामूली उपलब्धि नहीं है।"

"मेरे प्रश्नों के उत्तर दीजिएगा ?" उसने बीच में ही टोकते हुए पूछा।

"उत्तर देकर मुझे प्रसन्नता ही होगी।" मैंने कहा।

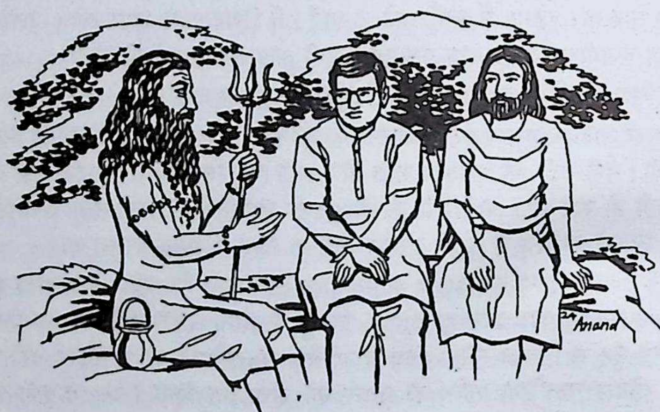
"आत्मा, परमात्मा और मुक्ति आदि को लेकर आप क्या सोचते हैं, यह मुझे मालूम है।" अलखआनन्द बोला, "मंडला के जिस ब्राह्मण के यहाँ हमारी भेंट हुई थी, उसी ने मुझे आपके विचारों से अवगत करा दिया था। तभी से मैं आपसे रुष्ट था। आत्मा के बारे में जो आप सोचते हैं, उससे मैं सहमत नहीं हूँ, लेकिन.........आज मैं जानना चाहता हूँ, आपके तर्क आखिर क्या हैं। आखिर किस आधार पर आपने तर्कों का महल खड़ा किया है ?"

"मेरा महल तर्कों का नहीं, अनुभवों का है।" मैंने कहा।

वह मुस्कराया, "शब्दों से खेलना आपको खूब आता है। शाब्दिक खेल में आप शायद मुझसे आगे निकल जायें, किन्तु एक बात याद रखिएगा। टेढ़े और ऊँचे शब्दों का इस्तेमाल करके आप मुझे भ्रमित नहीं कर सकेंगे।"

चौबीस

छल की स्वीकृति



"आपको भ्रमित करके मुझे क्या मिलेगा ? कुछ नहीं।" मैंने अलखआनन्द से कहा, "क्योंकि मुझे जो पाना था, वह तो मैं अपने गुरु श्री चैतन्यानन्द जी से दीक्षा लेकर ही पा चुका हूँ। गुरु ने मुझे जो समझ दी है, जो अनुभव दिया है, उसी आधार पर मैं आपके प्रश्नों के उत्तर दूँगा। मैं आपको भ्रमित या परास्त करने के लिए नहीं, बल्कि अपने विचार आपको बताने और आपके विचार स्वयं जानने के लिए बात करूँगा। आप भी मेरे प्रश्नों के उत्तर देने के लिए प्रस्तुत हैं या नहीं ?"

"मैं प्रस्तुत हूँ।" अलखआनन्द ने निस्संकोच कहा।

"सर्वप्रथम....क्या आप स्वीकार करते हैं कि जगजीत की आत्मा से बात करवाने का जो प्रयोग आपने अभी दिखाया, उसमें आपने मेरे साथ छल किया था ?" मैंने सावधानी के साथ शुरू किया। अलखआनन्द इसका उत्तर 'हाँ' में देता है या 'ना' में, मेरे लिए यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण था।

अलखआनन्द ने निकुम्भ पर दृष्टि डाली, जैसे वह तय नहीं कर पा रहा था कि निकुम्भ की उपस्थिति में यह सारा संवाद होना चाहिए या नहीं। अकस्मात् मैंने

अलखआनन्द के चेहरे पर एक चमक देखी। वह आत्म-सम्मान जागृत होने की चमक थी। स्वयं आत्म-सम्मानी होने के नाते मैंने उस चमक को तुरन्त पहचान लिया। अब अलखआनन्द सत्य को छिपा नहीं सकेगा। आत्म-सम्मानी व्यक्ति कभी सत्य को छिपा नहीं सकता। वह तो हमेशा सत्य की खोज करता है, उसे छिपाएगा कैसे।

'हाँ !' अलखआनन्द ने कहा, "मैंने आप से छल किया था।"

"अलखआनन्द जी !" मैं बोल उठा, "इस स्वीकृति से आपके प्रति मेरे मन में अत्यधिक सम्मान जाग गया हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ।"

"औपचारिकताओं की आवश्यकता नहीं।" अलखआनन्द बोले, "आपने स्वयं देखा होगा। हम अघोरी औपचारिकताओं में विश्वास नहीं रखते।"

मैं और निकुम्भ बैठ गए। अलखआनन्द भी बैठे। उन्होंने मुझसे पहला सवाल किया, "आप किस आधार पर आत्मा को अस्वीकार करते हैं ?"

मैंने उत्तर दिया, "मैं आत्मा और परमात्मा, दोनों को स्वीकार करता हूँ, अस्वीकार नहीं। मैं केवल यह कहता हूँ कि आत्मा और परमात्मा, दोनों का स्वरूप वैसा नहीं है, जैसा हम सोचे बैठे हैं। हजारों वर्षों से हमारी धार्मिक मान्यताएँ ज्यों-की-त्यों चली आ रही हैं, जबकि मानव का ज्ञान और अनुभव कहाँ-से-कहाँ पहुँच चुका है। नए ज्ञान और नए अनुभवों को समाहित करने के लिए हमें अपने धर्म का नया संस्कार करना ही पड़ेगा। धर्म के उद्धार के लिए परमात्मा बार-बार जन्म लेता है, ऐसा हजारों वर्ष पहले माना जाता था। इसका अर्थ यह नहीं कि आज भी इसी को आँख मूँद कर स्वीकार कर लें। हमें आँखें खुली रखनी हैं। हमें पुरानी मान्यताओं की जाँच लगातार करनी है। यदि कोई पुरानी मान्यता झूठी साबित होती है, तो उसे छोड़ देने और नई मान्यता को स्वीकार कर लेने में हमें रंचमात्र भी संकोच नहीं होना चाहिए। उदाहरण के लिए, प्राचीन ग्रन्थों में लिखा मिल जाएगा कि सूर्य पृथ्वी की परिक्रमा करता है। आज इस पुरानी मान्यता को हम गलत पाते हैं। हमने नई मान्यता स्वीकार कर ली है कि स्वयं पृथ्वी ही सूर्य की परिक्रमा करती है, न कि सूर्य पृथ्वी की। इसी प्रकार, हम जानते हैं कि चन्द्रमा केवल एक छोटा-सा उपग्रह है। वहाँ कोई अलौकिक चन्द्रलोक नहीं है। फिर हम कैसे यह मान सकते हैं कि आत्मा चन्द्रलोक में जाती है और वहाँ का देव उससे पूछता है, 'तू कौन है ?' और आत्मा कहती है, 'जो तू है, वही मैं हूँ' मनुष्य के भेजे हुए कई यंत्र चन्द्रमा तक पहुँच चुके हैं। उन वैज्ञानिक यन्त्रों ने सिद्ध किया है कि चन्द्रमा पर कोई अलौकिक तत्व नहीं है। अरे, वहाँ तो वायु जैसा लौकिक तत्व भी नहीं है। वहाँ चन्द्रलोक हो, उससे आगे ब्रह्मलोक हो.......इत्यादि मान्यताएँ अब हमें त्याग देनी होंगी। धर्म पुराना पड़ चुका है। मानव को नए धर्म की खोज करनी होगी।"

अलखआनन्द ने सब कुछ ध्यान से, पूर्ण मनोयोग से सुना। वह उतने मनोयोग से सुन रहे थे, इसी पर निकुम्भ को कम आश्चर्य नहीं था। निकुम्भ का आश्चर्य उसके नेत्रों से स्पष्ट झलक रहा था।

अलखआनन्द ने गहरी साँस ली। मेरी आँखों में सीधे देखकर उन्होंने पूछा, "नई मान्यता के अनुसार....आत्मा का रूप क्या है ?"

"गुरु चैतन्यानन्द जी ने मुझे जो दीक्षा दी है, वह मुझे बहुत सटीक मालूम पड़ती है।" मैं बोला, "इसीलिए मैं आत्मा को एक इकाई नहीं मान पाता। उसे मैं दो इकाइयों का संयोग मानता हूँ। आत्मा दो तत्वों के मेल से बनी है। यदि हमें आत्मा की मान्यता को आगे चलाना ही हो, तो हम कह सकते हैं कि आत्मा का एक तत्व है चेतना और दूसरा तत्व है भावना।"

"और यदि आत्मा की मान्यता को आगे न चलाना हो ?" अलखआनन्द की भौंहों पर बल पड़ चुके थे।

मैंने कहा, "तो हम 'आत्मा' शब्द को ही गलत और भ्रामक मान सकते हैं। उसे छोड़कर हम 'चेतना' शब्द को स्वीकार कर सकते हैं। तब हम कह सकेंगे कि शिशु-जन्म एक नई चेतना का ही जन्म है। माता-पिता के देह-मिलन से, माता-पिता की चेतनाओं के अंश लेकर, शारीरिक और वैज्ञानिक नियमों से पूर्णतया सिद्ध होकर, एक नई चेतना धरती पर आती है। यही शिशु जन्म है। इसका पूर्वजन्म नहीं था। इसका पुनर्जन्म नहीं होगा। मृत्यु के समय यह चेतना बुझकर समाप्त हो जाएगी।"

"लेकिन आप तो आत्मा को केवल चेतना नहीं मानते। उसे चेतना और भावना का संयोग मानते हैं। इसका अर्थ क्या है ?"

"मुझे नहीं लगता कि मृत्यु व्यक्ति की पूर्ण समाप्ति है। मृत्यु के बाद भी व्यक्ति का कुछ-न-कुछ शेष रह जाता है। इसी शेष तत्व को मैं 'भावना' कहता हूँ। हर व्यक्ति अपनी भावनाएँ पीछे छोड़कर मरता है। आशावादी जब मरता है, तब लोग उसकी आशा की भावना को याद करते हैं। निराशावादी जब मरता है, तब लोग उसकी निराशा की भावना को याद करते हैं। बुद्ध त्याग-मूर्ति थे। वह अपने पीछे त्याग की भावना छोड़कर गए। गाँधी प्रेम-मूर्ति थे। वह अपने पीछे प्रेम की भावना छोड़कर गए।" मैंने कहा, "मृत्यु के समय आत्मा का एक तत्व तो, जिसे हम चेतना कहते हैं, पूर्णतया बुझ जाता है, किन्तु दूसरा तत्व भावना—जीवित रहता है। मृतक की भावनाओं को जीवंत व्यक्ति ग्रहण कर लेते हैं। जैसे—पिता की अतृप्त महत्त्वाकांक्षा पुत्र को मिलती है, पुत्र उसे जीवित रखता और तृप्त करता है। जो गाँधी जैसा बनने की चेष्टा करता है, वह गाँधी की भावनाओं को ही तो जीवित करता है...........यों, मृत्यु किसी भी व्यक्ति को पूर्णतया समाप्त नहीं करती। कर ही नहीं सकती।"

"मैं आपसे असहमत नहीं हूँ।" अलखआनन्द बोले, "जो आप कह रहे हैं, वैसा तो होता ही है। इसके बावजूद, मुझे लगता है कि आप नास्तिकों की तरह बातें कर रहे हैं।"

"मैं नास्तिक नहीं हूँ।" मैंने स्पष्ट किया, "असल में....झगड़ा उस शाश्वत प्रश्न का है, जिसका उत्तर न नास्तिक दे सकते हैं, न आस्तिक। नास्तिकों से पूछिए, 'ब्रह्माण्ड का रचयिता यदि ईश्वर नहीं है, तो ब्रह्माण्ड आया कहाँ से ?' नास्तिक कहेंगे, 'ब्रह्माण्ड तो शुरू से है।' आस्तिकों से पूछिए, 'ब्रह्माण्ड का रचयिता यदि ईश्वर है, तो ईश्वर का रचयिता कौन है ?' आस्तिक कहेंगे, 'ईश्वर तो शुरू से है।' मुझे ये दोनों उत्तर, उत्तर जैसे ही नहीं लगते। मेरी राय में......इस शाश्वत प्रश्न का उत्तर जब कोई दे ही नहीं

सकता, तो हमें इसमें उलझना ही नहीं चाहिए। हमें इस प्रश्न से आगे निकल जाना चाहिए।

"कैसे" ?

"सोचने का यह जिद्दी तरीका हमें छोड़ देना चाहिए कि जो नास्तिक नहीं है, वह आस्तिक है और जो आस्तिक नहीं है, वह नास्तिक है। हमें एक नए धर्म का विचार करना चाहिए, जिसमें आस्तिकता या नास्तिकता का प्रश्न ही न उठे। प्रश्न उठे केवल मानवता और अमानवता का। यदि कोई मानव अपने मानव-धर्म का पूर्णतया पालन करता है, तो वह आस्तिक हो या नास्तिक, क्या फर्क पड़ेगा ? मानव-धर्म को मैं 'स्व-धर्म' के नाम से पहचानता हूँ। यह कल्पना-योगी का धर्म है। मैंने इसी की दीक्षा ली है।"

"यह कल्पना-योग क्या है ?" अलखआनन्द ने प्रश्न किया।

मैंने उत्तर दिया, "संक्षेप में कह सकते हैं कि.........सत्य की ओर निरन्तर गति करने के लिए अपनी कल्पना-शक्ति को जगाना और उसे आत्म-संयम से नियंत्रित रखना ही कल्पना-योग है। कल्पना-योगी आत्म-सम्मानी होता है, किन्तु अहंकारी नहीं। कल्पना-योगी अत्यधिक मानव होता है।"

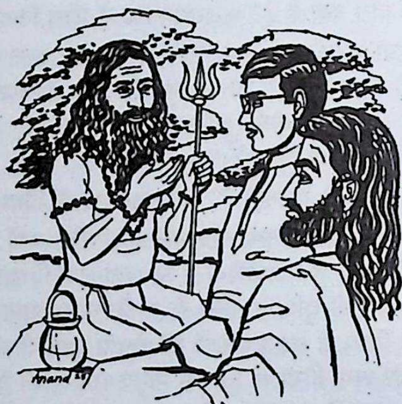
"अघोरी मानव होते हैं या नहीं ?" अलखआनन्द ने सीधा प्रश्न पूछा।

"मानवता मानवीय देह के साथ नहीं, बल्कि मानवीय कर्मों के साथ जुड़ी हुई है।" मैंने कहा, "क्षमा कीजिएगा, मुझे अघोरियों में मानवता नहीं दिखाई पड़ती। अघोरियों की सिद्धियाँ केवल अहंकार की तुष्टि के लिए हैं, न कि मानव समाज की उन्नति के लिए। आपने अपनी त्राटक विद्या से उड़ते पक्षियों की चेतना बुझा दी थी। देखते-देखते आपने मरे हुए पक्षियों का ढेर लगा दिया था। इससे मानव समाज का क्या कल्याण हुआ ? हाँ, आपको अपनी शक्ति का परिचय अवश्य मिल गया। इससे आपके अहंकार में वृद्धि हुई। सिवा इसके और क्या हुआ ? साथी अघोरियों ने आपकी वाहवाही की। इससे आपके अहंकार में और वृद्धि हुई। मरणोपरांत आप इस संसार में केवल अहंकार की भावना ही छोड़कर जायेंगे। मानव आपको मानव के रूप में याद नहीं कर सकेंगे। आप केवल एक अघोरी के रूप में याद किए जायेंगे। मानव शायद आपको याद भी न करें। आप केवल अघोरियों द्वारा याद रखे जायेंगे।"

अलखआनन्द के चेहरे का रंग पलटने लगा था। मैं सहसा समझ न पाया, उन्हें क्रोध आ रहा है या पश्चाताप हो रहा है। न जाने कितनी रहस्यमय चिनगारियाँ उनकी तेजस्वी आँखों में जलीं और बुझ गईं। सहसा वह मुझे घूरना छोड़कर नीचे देखने लगे। मैं उसी पल समझ गया, वह अपनी हार स्वीकार करने की तैयारी में हैं।

पच्चीस

मनोमंथन के बावजूद



बाबा अलखआनन्द ने सहसा दृष्टि उठाकर गहरी, खूब गहरी साँस ली। दूर-दिगंत में देखते हुए, स्वयं से ही बातें करने की तरह उन्होंने कहा, "आपका कथन असत्य नहीं लग रहा, सुरेश जी ! किन्तु यह सत्य भी नहीं लग रहा। मैं बरसों से इसी बौखलाहट में हूँ। सच मानिए, इसी बौखलाहट के कारण अभी मैं आपकी बातें सुन रहा हूँ। मेरी जगह कोई दूसरा अघोरी होता, तो अब तक आपके सीने में अपना त्रिशूल धँसा चुका होता। हम उस व्यक्ति से घोर घृणा करते हैं, जो हमारे विश्वासों को डिगाना चाहे ....लेकिन मैं बरसों से एक विचित्र बौखलाहट में घूम रहा हूँ। अपने भीतर से मुझे लगता रहा है कि आत्मा का जो स्वरूप मुझे गुरुजनों द्वारा समझाया गया है, वह सही नहीं है। कहीं-न-कहीं उसमें भ्रम अवश्य है। आत्मा और परमात्मा का स्वरूप अवश्य कुछ और है, लेकिन यह 'कुछ और' क्या है ? मैं किससे पूछूँ ? सभी गुरु और सभी धर्म मुझे भ्रमित करते महसूस होते हैं। हारकर मैं अपने अघोरी धर्म से ही चिपका हुआ हूँ। जैसा भी है, आखिर यह मेरा धर्म है। मैं इसका सम्मान करता हूँ। बार-बार यह नितांत व्यर्थ लगने लगता है, किन्तु मैं क्या करूँ ? अघोर धर्म मेरे लिए सार्थक न सही, उपयोगी तो है ही। इसी के कारण मैं सम्मानित हूँ। मेरे पास इसका कोई विकल्प ही नहीं है ..... "

अलखआनन्द की ऐसी बेबाक बातें सुनकर मैं कुछ तो दहल गया और कुछ द्रवित भी हो गया। उनका एक-एक शब्द मेरे लिए कल्पनातीत था। अकस्मात् उनके प्रति मैंने बड़ा भाईचारा महसूस किया।

मैं पूछे बिना न रह सका, "अलखआनन्द जी ! ऐसे मनोमंथन के बावजूद आपने अघोर धर्म स्वीकार कैसे कर लिया ?"

"मैंने स्वीकार नहीं किया है। मैं तो शुरू से ही इसमें हूँ।"

"मैं..समझा नहीं।"

"समझाता हूँ, लेकिन पहले 'हाँ' या 'ना' में उत्तर दीजिए, 'ईश्वर है या नहीं ?'

"है। ईश्वर निश्चित रूप से है।" मैंने दृढ़ता से कहा, "कब से है, कैसे है, आदि प्रश्नों के उत्तर न मेरे पास हैं, न किसी के पास, किन्तु मैंने हमेशा अनुभव किया है कि यह ब्रह्माण्ड ईश्वर के ही कारण है। ब्रह्माण्ड अपने-आप नहीं है। ईश्वर अवश्य अपने-आप है, किन्तु ब्रह्माण्ड तो ईश्वर के ही कारण है और ईश्वर की इच्छानुसार है। ईश्वर एक महा-चेतना है। यही महा-चेतना ब्रह्माण्ड के प्रत्येक परमाणु में फैली हुई है। मानव भी इसी ब्रह्माण्ड का एक परमाणु होने के कारण ईश्वरीय महा-चेतना का एक अंश है। यदि मैं अपनी कल्पना शक्ति को दिशा देकर मुक्त करूँ, तो वह ईश्वर की ही ओर जाएगी। अघोरियों ने भी अपनी कल्पना-शक्ति को मुक्त किया है, किन्तु दिशा देकर नहीं। इसीलिए वह ईश्वर की ओर नहीं जाती। वह भ्रम की ओर जाती है।"

"भ्रम ?" अलखआनन्द तिलमिला कर मेरी ओर देखने लगे।

"हाँ !" मैंने कहा, "चमत्कारिक सिद्धियाँ अर्जित कर केवल अपने अहंकार को तुष्ट करना, किन्तु यह मान लेना कि इन्हीं सिद्धियों के कारण हम ईश्वरीय चेतना से संलग्न हो रहे हैं, यह भ्रम नहीं तो क्या है ?"

"ओह ! खैर....आप अपनी बात कहते रहिए।" अलखआनन्द का स्वर बुझा हुआ था।

"मैं तो अपने उसी सवाल को दोहराना चाहता हूँ, 'अघोर धर्म पर आपकी पूर्ण श्रद्धा नहीं मालूम पड़ती। फिर भी आप अघोरी बने हुए हैं। यह कैसे ?'"

"ऐसा न कहें कि मुझे अघोर धर्म पर श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा के बिना कोई व्यक्ति अघोरी बन ही नहीं सकता। श्रद्धा हमारी पहली शर्त है। फिर भी, बार-बार मैंने चाहा है कि अपनी श्रद्धा की सार्थकता को जाँच कर देखूँ। आपकी बातें सुनकर मेरे मन में सोया पड़ा एक पुराना और भयानक तूफान फिर से जाग गया है। मैं नहीं जानता, इसका क्या इलाज करूँ। बहरहाल, मैं आपके इस प्रश्न पर आता हूँ कि मैं अघोरी क्यों हूँ।"

"जी।"

"जब से मैं याद कर सकता हूँ, तब से मैं इन्हीं अघोरियों के साथ हूँ। मैं नहीं जानता, मेरे माता-पिता कौन हैं। क्या आपको मालूम है, अघोरी कहाँ से आते हैं ? उनकी जमात कैसे बढ़ती है ? अघोरी कभी संतानोत्पत्ति नहीं करते। अघोरियों की

जमात कभी तो विशिष्ट मानसिक शक्तियों के बच्चों का पता लगाकर उनका अपहरण करती है और कभी.........किसी सांसारिक व्यक्ति की विशिष्ट सेवा करके, बदले में, उसका एकाध बच्चा दान में ले लेती है। शायद ही कभी निकुम्भआनन्द जैसे किसी पढ़े-लिखे व्यक्ति को स्वेच्छा से इस जमात में शामिल होने दिया जाता है। अव्वल तो लोग स्वेच्छा से अघोरी बनते नहीं और यदि बनना चाहें, तो भी हम बनने न दें। बचपन से नहीं, बल्कि वयस्क होने के बाद जो हमारी जमात में शामिल होता है, उसे हमेशा संदेह से ही देखा जाता है। निकुम्भ को इस संदेह-दृष्टि का अनुभव होगा।"

"तांत्रिक मैथुन में विश्वास रखने के बावजूद अघोरी संतानोत्पत्ति कैसे नहीं करते ?" मैंने अचरज से पूछा।

"संतान यानी मोह-माया। अघोरी मोह-माया से हमेशा बचते हैं। कोई भी अघोरी कभी किसी अघोरी की संतान नहीं होता। निस्संदेह हम तांत्रिक मैथुन में, प्रकृति-स्वरूप नारी को अधिकाधिक भोगने में विश्वास रखते हैं, किन्तु न भूलिए कि तांत्रिक मैथुन में भी नारी देह में शुक्राणु की स्थापना कभी नहीं होती। यही तो है अघोरियों का संयम। नारी देह में स्खलित हो जाने वाला अघोरी अपने धर्म से भी स्खलित हो जाता है। धर्म में वापस स्वीकृत होने के लिए उसे कठोरतम दंड भुगतना पड़ता है।"

"ओह !"

"जब से होश में आया हूँ, मैंने अपने आसपास अघोरियों के ही दर्शन किए हैं। हम कहीं टिक कर नहीं रहते। भटकना ही हमारा धर्म है। भटकने के बीच ही हम शिक्षा और दीक्षा प्राप्त करते हैं। मुझे अघोरियों ने ही शिक्षित और दीक्षित किया है। जब मैं चमत्कारिक सिद्धियों के प्रयोग सीख गया, तो मैंने अपनी शक्ति में असीम वृद्धि अनुभव की। मेरी नजर पड़ती और वृक्ष सूखने लगते। मेरी आँखें घूमतीं और पशु तड़पने लगते। मेरी दृष्टि-सीमा में आते ही पक्षी मरकर गिर जाते। मैं स्वयं को देवी शक्तियों से विभूषित मानने लगा। स्वयं पर मैंने महाशक्ति चामुंडा की असीम कृपा अनुभव की। मैं क्षणमात्र में मनुष्यों पर काबू पा लेता था। पशु-पक्षी भी मेरे वशीकरण को पूर्णतया स्वीकार करने को बाध्य थे। न केवल इतना, बल्कि मेरे एक आदेश पर आत्माएँ आकर सामने खड़ी हो जाती थीं। मैं उन्हें देख सकता था, अनुभव कर सकता था, उनसे बातें कर सकता था, फिर एक दिन अचानक मुझे संदेह हुआ....... "

"कैसा संदेह ?" मैंने बुदबुदाहट में पूछा।

"यही कि आत्माएँ क्या सचमुच मेरे सामने आती हैं ? मैं उन्हें देखता अवश्य हूँ, किन्तु क्या वे सचमुच मेरे सामने होती हैं ? क्या यह केवल दृष्टि-भ्रम नहीं है कि मैं उन्हें देखता हूँ ? मैं, अपनी पूरी मानसिक शक्ति के साथ, किसी आत्मा को देखना चाहता हूँ और इसीलिए वह मुझे दिखाई पड़ती है। वास्तव में, यह मेरी अपनी इच्छा है, जो दृष्टि-भ्रम पैदा करके मुझे आत्मा दिखाती है। यदि मैं ईश्वरीय आकृति देखना चाहूँगा, तो ईश्वरीय आकृति दिखाई पड़ेगी। यदि पिशाच देखना चाहूँगा, तो पिशाच दिखाई पड़ेगा। सामने कुछ होता ही नहीं है। यह केवल मन की माया है, जो सामने साकार होती है।

इस अहसास ने मेरे भीतर एक सन्नाटा खींच दिया। जिन आत्माओं को साधने के पीछे मैं जीवन होम रहा हूँ, उन आत्माओं का अस्तित्व ही मुझे संदेहास्पद लगने लगा। आप मेरी विकलता की कल्पना नहीं कर सकते। यह तूफान मैंने अपने सीने में बरसों से बंद कर रखा है। खुद पर जोर-जबर्दस्ती करके इस तूफान को कभी अगर मैंने भुला भी दिया, तो भी मन का मायाजाल क्या इतनी ही आसानी से कट सकता है ? देखिए, आज वही तूफान मेरे भीतर फिर से घुमड़ पड़ा है। आप इसके निमित्त बने हैं। मैं आप पर रुष्ट नहीं हूँ। मैं आपका आभारी हूँ।"

"यह मेरा सौभाग्य है।" मैंने आत्मीय स्वर में हौले से कहा।

"इसके बावजूद, ऐसा न समझें कि मैंने आपको सत्य मान लिया है। सत्य केवल इतना है कि मैं आपको असत्य सिद्ध नहीं कर पा रहा। लेकिन केवल इतने ही से आपको सत्य कैसे मान लूँ ?"

"न मानिए।" मैंने मुस्करा कर कहा, "मेरा 'कल्पना-योग' भी यही कहता है, "कभी भी किसी सत्य को जाँचे-परखे बिना स्वीकार मत करो। एक सत्य से हमेशा अगले सत्य पर निकल जाओ, क्योंकि प्रत्येक सत्य से आगे कोई अगला सत्य हमेशा होता है।"

"क्या कभी आपने 'परकाया-प्रवेश' देखा है ?" अलखआनन्द ने अचानक पूछा।

"नहीं। उसके बारे में सुना अवश्य है।"

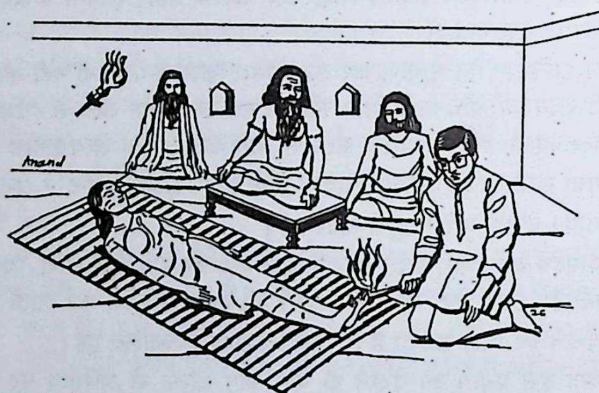
"वामदेव यह प्रयोग करते हैं।" निकुम्भ बड़ी देर बाद कुछ बोला, "परात्पर जी भी कर सकते हैं। इसमें एक की आत्मा दूसरे की काया में प्रवेश कर जाती है।"

"देखने को मिल सकता है ?" मेरी जिज्ञासा प्रज्ज्वलित हुई।

"क्या इस प्रयोग को देखने के बाद आप आत्मा के अस्तित्व पर विश्वास कर लेंगे ?" अलखआनन्द ने पूछा।

"जो मुझे सत्य लगता है, उसे मैं हमेशा स्वीकार करता हूँ। मेरी मान्यताएँ जड़ नहीं हैं।" मैंने कहा।

छब्बीस
परकाया-प्रवेश



शाम तक का समय बीत गया। एक और भैंसे का बलिदान। उस लड़की को बुलवा कर वामदेव ने फिर से पूतलिका प्रयोग किया। मिट्टी के पुतले में वह अपने हथियार की नोंक चुभोता और मासूम, बेसुध लड़की वेदना की चीखें मारने लगती।

निकुम्भ ने पूछा, "यह कैसे होता है ? इस चमत्कार का क्या स्पष्टीकरण है आपके पास ? कल स्वयं आपने स्वीकार किया था कि शाण्डिल्यनाथ ने पुतले की गर्दन मरोड़ कर फेंक दी और उधर, दूसरे शहर में, आपके दोस्त जगजीत के प्राण निकल गए। ऐसे प्रयोगों में, पुतले और व्यक्ति के बीच क्या सम्बन्ध हो सकता है ?"

मैंने सोचते हुए कहा, "मैंने यह दावा कभी नहीं किया कि सभी मानसिक चमत्कारों के रहस्य मैं जानता हूँ। फिर भी, मेरी सामान्य बुद्धि जो कहती है, उसके अनुसार यदि भय निरंकुश हो जाए, तो वह चक्रवृद्धि ब्याज की तरह बढ़ता है। जगजीत के मन में अघोरी का भय निरंकुश हो चुका था। वह क्षण-क्षण बढ़ता और गुणित होता रहा। शाण्डिल्यनाथ ने यदि पुतला न बनाया होता, पुतले की गर्दन यदि उसने मरोड़ कर फेंक न दी होती, तो भी जगजीत का अंत लगभग निश्चित हो चुका था। मूठ मारने की धमकी शाण्डिल्यनाथ ने जिस क्षण दी, उसी क्षण से जगजीत के मन में भय का बीज

पड़ चुका था। यही बीज अंकुरित हुआ और वह वट वृक्ष की तरह बढ़ता चला गया.... पुतले की गर्दन मरोड़े जाने के साथ जगजीत के प्राण निकलने का सीधा सम्बन्ध नहीं है। रही बात इस बेसुध लड़की पर हो रहे पूतलिका प्रयोग की। यहाँ भी पुतले और लड़की के बीच सीधा सम्बन्ध नहीं है। वामदेव जब पुतले को हथियार चुभोता है, तब वास्तव में वह अपनी मानसिक शक्तियों द्वारा केवल एक आदेश देता है—लड़की को पीड़ा महसूस करने का आदेश। इसी मानसिक आदेश के कारण लड़की पीड़ा का चीत्कार करती है। यदि वामदेव पुतले में हथियार घोंपे बिना ही पीड़ा होने का मानसिक आदेश देगा, तो भी लड़की अवश्य चीखेगी। पुतला तो आदेश का बहाना मात्र है।"

"मैं कैसे आपके अनुमान को सत्य मान लूँ ?" निकुम्भ ने पूछा।

मैंने गम्भीरता से कहा, "यदि लड़की के चीत्कार का सम्बन्ध मानसिक आदेश के साथ नहीं, बल्कि केवल पुतले के साथ है, तो एक काम करिए। वामदेव को यहाँ से हटा दीजिए। फिर आप, अपने हाथों से, पुतले पर आघात करिए। लड़की नहीं चीखेगी।"

"इस प्रयोग के स्वामी वामदेव हैं। वह मुझे दखल का अधिकार क्यों देंगे ?" निकुम्भ हँसा।

मैं गम्भीर ही बना रहा, "लेकिन यदि वैसा हो सके, जैसा मैंने कहा, तो निश्चित जानिए कि लड़की को कोई पीड़ा नहीं होगी। यदि आप सोचते हैं कि लड़की की आत्मा पुतले में कैद है और इसी वजह से पुतले की पीड़ा लड़की को महसूस होती है, तो आप भ्रम में हैं। लड़की की आत्मा, या कहिए कि चेतना, लड़की के ही पास है, न कि पुतले के पास। पुतला पूर्णतया निर्जीव है।"

"किन्तु पुतले पर वामदेव द्वारा किए गए आघात को लड़की ग्रहण कैसे कर लेती है ?" आघात जब वामदेव के हाथों होता है, तभी कैसे लड़की को पीड़ा होती है ?" निकुम्भ ने पूछा।

मैंने कहा, "मुझे इस लड़की का इतिहास नहीं मालूम, किन्तु यह मुझे वामदेव द्वारा अत्यधिक प्रभावित लगती है। वामदेव ने इस पर पूरा मानसिक अधिकार जमाया हुआ है। यह कब हुआ, कितनी अवधि में और किस पद्धति से हुआ, मैं नहीं जानता। लड़की ने वामदेव के सामने पूर्ण मानसिक समर्पण कर दिया है। यदि वामदेव आदेश देगा, 'मर जाओ।' तो यह उसी पल मर जाएगी। फिलहाल, वामदेव का आदेश केवल इतना है, 'पीड़ा से चीखो।' और लड़की पीड़ा से चीखती है। बेसुध होते हुए भी लड़की वामदेव के मानसिक आदेश को कैसे समझती है, कैसे उसका पालन करती है—इसके पीछे वामदेव की चमत्कारिता को ही स्वीकार करना होगा।"

सूर्यास्त के बाद यज्ञ-वेदी के सामने से अघोरियों की भीड़ हटने लगी। वे भोजन करने चले गए। मैंने भी कमरे में लौटकर, झटपट कुछ पका कर, पेटपूजा कर ली। जैसा कि निकुम्भ ने सूचित किया था, तांत्रिक मैथुन-नृत्य आज भी होने वाला था। न केवल आज, बल्कि रोज। मैंने निकुम्भ से कहा था कि ऐसे नृत्य के बाद मैं उससे भाग ले चुके किसी एक जोड़े से बात करना चाहता हूँ। निकुम्भ बोला था, "भाता अदिति और

परात्पर जी की अनुमति के बिना यह असम्भव है, किन्तु मुझे आशा है कि अनुमति मिल जाएगी। मैं प्रयास करूँगा।"

काले आकाश में तारे स्पष्ट झिलमिलाने लगे थे। चौगान में मशालों की रोशनी काँप रही थी। झींगुरों की तीखी तान से सन्नाटे में दरारें पड़ती जा रही थीं। सहसा निकुम्भ आ पहुँचा। बोला, "आपको 'परकाया-प्रवेश' का प्रयोग दिखाने के लिए वामदेव जी तैयार हो गए हैं। तुरन्त चलिए।"

मुझे और चाहिए भी क्या था ?

बरामदे को पार करते, खुले-अधखुले कमरों के सामने से गुजरते, हम दोनों अंततः उस कमरे में आ पहुँचे, जहाँ उसी लड़की को सुलाया गया था, जिस पर अभी थोड़ी देर पहले पूतलिका प्रयोग हुआ था। अगर-धूप की विचित्र सुगन्ध कमरे में लबालब भरी थी। मशाल में जलते तेल की गंध उस सुगंध के साथ मिलकर डर की अनुभूति दे रही थी।

निर्जीव की तरह लेटी लड़की के पास ही, वामदेव एक ऊँचे आसन पर विराजमान था। मैंने बाबा भैरवनाथ को भी वहाँ उपस्थित देखा। मेरी ओर देखकर वह मुस्करा दिए। उन दोनों का अभिवादन कर मैं एक आसन पर बैठ गया। कुछेक नितांत औपचारिक बातों के बाद वामदेव ने मुझसे पूछा, "आप जीवित और मृत शरीर के बीच पहचान तो कर सकते हैं न ?"

"किसी डॉक्टर जैसी निश्चित पहचान तो नहीं, लेकिन औसत पहचान तो कर ही सकता हूँ।" मैंने उत्तर दिया।

"आगे आकर देखिए। यह लड़की जिन्दा है या मरी हुई ?" वामदेव ने तपाक से कहा।

मैं उठकर लड़की के पास गया। उसका शरीर पूर्णतया निश्चेष्ट था। मैंने उसके हृदय पर कान रखा। धड़कन की कोई आवाज नहीं थी। मैंने उसकी नाक के सामने हाथ रखा। साँस बिल्कुल नहीं चल रही थी। मैंने सिटपिटा कर कहा, "यह तो मर गई है।"

"पूरी तसल्ली कर लीजिए।" वामदेव ने गर्वीले स्वर में कहा।

मैंने निकुम्भ की ओर देखा, "यह डॉक्टर थे। इनसे कहिए कि जाँच करें।"

"उनके निर्णय पर आप संदेह तो नहीं करेंगे ?"

मैंने सिर हिलाकर 'न' कही। निकुम्भआनन्द ने लड़की की नब्ज देखी। नब्ज बिल्कुल नहीं चल रही थी। "इसकी मृत्यु हो चुकी है।" निकुम्भ ने कहा।

अचानक मुझे लगा कि लड़की की मृत्यु की यह जाँच अधूरी है। मैंने वामदेव के सामने प्रस्ताव रखा, "मैं लड़की के पैर से अग्नि छुआना चाहता हूँ। यदि जीवित होगी, तो चीखेगी।"

"वह रही मशाल। आप स्वयं लाइए और छुआइए।" वामदेव ने जवाब दिया।

मैंने दीवार के पास पहुँच कर मशाल उठा ली। लौटकर मैं उस लड़की के पास आया। घड़ी भर मैं उसके मासूम चेहरे की ओर ताकता रह गया। उसके पूरे शरीर को

मैंने देखा। वह लाश की तरह पड़ी हुई थी। उसकी दोनों बाँहें शरीर के समानान्तर रख दी गई थीं। दोनों पैर भी सीधे और अकड़े हुए थे। मैंने उसके पैर के नाजुक अंगूठे पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। सोचा कि केवल अंगूठे पर ही मशाल का स्पर्श करूँगा। मेरे हाथ काँपने लगे थे। मस्तक पर पसीना छन रहा था। होंठ सूख गए थे। आँखें जल रही थीं। मैंने लड़की के अंगूठे पर जलती मशाल रख दी। कुछ ही सेकण्ड तक मैं उसके अंगूठे को जला सका होऊँगा। मशाल मेरे हाथ से छूटकर गिर गई।

लड़की ऐसे निश्चेष्ट पड़ी रही, जैसे उसने पीड़ा का कोई अनुभव न किया हो।

मैं लौटकर अपने आसन पर बैठ गया। वामदेव ने कहा, "इस लड़की में आत्मा नहीं है। इसकी आत्मा मैंने पुतले में कैद कर दी है। अब.....थोड़ी ही देर में, मेरी आत्मा मेरा शरीर छोड़कर इस लड़की के शरीर में प्रवेश करेगी।"

"हमें इसका पता कैसे चलेगा ?" मैने थर्राई आवाज में पूछा।

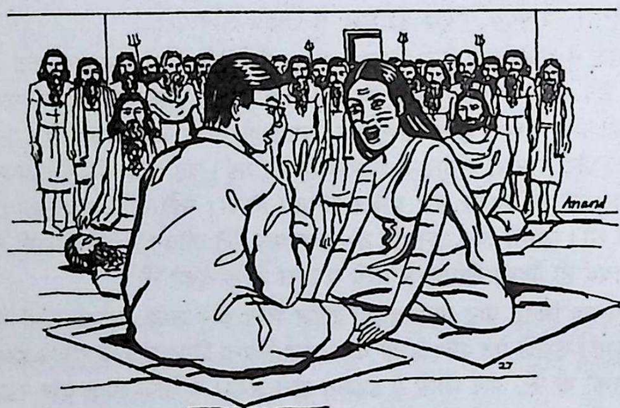
"चलेगा।" वामदेव ने एक ही शब्द में जवाब लौटाया।

वामदेव ने मंत्रोच्चार शुरू किया। उन मंत्रों की अनुभूति अत्यन्त तीव्र थी। उस तीव्रता को मैंने अपने अणु-अणु में अनुभव किया। निस्संदेह यह वामदेव की साधना और शक्ति का ही प्रमाण था। अपने सम्पूर्ण अस्तित्व के भीतर और बाहर मैंने परम शांति अनुभव की। जैसे समस्त संसार में निस्तब्धता छा गई। यहाँ तक कि मैंने अपनी साँसों में आती वायु को भी स्वच्छ और पवित्र अनुभव किया। मेरी साँसें अपने-आप जोर से चलने लगी थीं। उतनी तीव्र अनुभूति के मंत्रोच्चार मैंने जीवन में पहले कभी नहीं सुने थे। मैंने शायद ही किसी साधक में वैसी अद्‌भुत शक्ति देखी थी।

दस-पन्द्रह मिनट बाद वामदेव का शरीर शांत होने लगा। उसके अंगों में जड़ता का प्रवेश हुआ। उसके पेट और छाती का उठना-गिरना बिल्कुल रुक गया। इसके साथ ही उस लड़की के पेट और छाती में हरकत होने लगी। मैं साफ-साफ देख रहा था कि लड़की की साँस चलने लगी है। वामदेव में ज्यों-ज्यों मुर्दनी आती गई, त्यों-त्यों लड़की में चेतना आती गई। सहसा वामदेव अपने आसन पर लुढ़क गया। उसकी आँखें बन्द हो गईं। उसी क्षण लड़की ने आँखें खोलकर चारों ओर देखा। ऐसे अलौकिक चमत्कार को देखकर मैं हक्का-बक्का रह गया।

सत्ताईस

अनायास शत्रुता



एकबारगी तो मुझे यहाँ तक सन्देह हुआ, वामदेव ने कहीं मुझे सम्मोहित तो नहीं कर लिया ? मैंने खुद को चिकोटी काट कर देखा। मैं किसी सम्मोहन के प्रभाव में नहीं था। पूरे होश-हवास में था।

मैंने गिरे पड़े वामदेव के पास जाकर उसके सीने पर कान लगाया। मैं कोई धड़कन न सुन सका।

अचानक वह लड़की अपने आसन पर उठ बैठी। घड़ी भर पहले मैंने जिसे मरी हुई घोषित किया था, उसी को यों उठते देखकर भय के मारे मेरी जान सूख गई। मैंने अपने भय को अंकुश में रखने का अधिकतम प्रयास किया। उसी समय उस लड़की ने मेरी तरफ देखते हुए कहा, "मैं वामदेव की आत्मा हूँ। मुझसे जो पूछना हो, पूछिए।"

मुझे चक्कर आने लगे। पूरा कमरा डोलता और घूमता महसूस हुआ। लड़की के मुँह से वामदेव की मर्दाना आवाज निकल रही थी।

मेरी बोलती बंद हो चुकी थी। कुछ पल मैं खामोशी से बैठा रह गया। मुझे शांत

और संयत होने की आवश्यकता थी। मुझे अपने बिखरे हुए विवेक को बटोरना था। तमाशा देखने के लिए, कमरे में तब तक, खासी बड़ी भीड़ जमा हो चुकी थी।

मैंने अपनी नजर उस लड़की पर स्थिर की। वह मासूम लड़की उस वक्त भयंकर लग रही थी। उसके पूरे शरीर और चेहरे पर जो लेप लगाया गया था, जो भयानक हावभाव उसके चेहरे पर था, जो विकराल लालिमा उसकी आँखों में थी, उससे वह मासूम लड़की एक ही पल में साक्षात् कालिका जैसी हो उठी थी। उसने जब देखा कि मैं कुछ बोल ही नहीं पा रहा हूँ तो दोनों हाथ आगे की तरफ टिका कर वह मेरी ओर झुकी। मुँह फाड़ कर उसने 'हाआआआ' करते हुए मुझ पर अपनी गर्म साँस छोड़ी। उसकी साँस में गाँजे की वही तीव्र गंध थी, जिसे मैं वामदेव की साँसों में पहले महसूस कर चुका था। आश्चर्य का इतना बड़ा झटका मुझे लगा कि अपने विवेक को मैंने जो थोड़ा बहुत समेटा था, वह दुबारा बिखर गया।

मैंने बार-बार स्वयं को याद दिलाना शुरू किया, "मैं कल्पना योगी हूँ। मैं आत्म-सम्मानी हूँ। मैं सत्यान्वेषी हूँ। मैं ईश्वर नामक महाशक्ति का अंश हूँ। मेरा विवेक जागृत है, जागृत है, जागृत है ..."

धीरे-धीरे कुछ बातें मेरे मानस में स्पष्ट हुईं। यदि मैं सचमुच ऐसा मान कर चलता कि वामदेव की आत्मा ने ही लड़की के शरीर में प्रवेश किया है, तब भी गाँजे की गंध कोई भी आत्मा अपने साथ लेकर नहीं आ सकती थी। सभी प्राचीन ग्रन्थों में आत्मा का जो विवेचन किया गया है, उसके अनुसार आत्मा जब शरीर का त्याग करती है, तब शरीर से सम्बन्धित कुछ भी अपने साथ नहीं रखती। गंध तो शुद्ध रूप से शरीर से ही सम्बन्धित है। वामदेव के मुँह की गंध लड़की के मुँह से कैसे आ सकती है ? या तो लड़की को पहले से गाँजा पिलाकर तैयार रखा गया है या फिर .....'वेण्ट्रीलोक्विस्ट' जिस प्रकार अपनी आवाज को किसी अन्य के मुँह से सुना सकता है, उसी प्रकार वामदेव को अपने मुँह की गंध दूसरे के मुँह से निकालने की कला आती है।

किन्तु वामदेव तो बेजान होकर पड़ा है। क्या ऐसी निर्जीव स्थिति में भी वह अपनी कला का परिचय दे सकता है ?

अद्‌भुत !

वामदेव की महानता स्वीकार करनी ही पड़ेगी।

किन्तु—

इस महानता के बावजूद—

लड़की के शरीर में वामदेव की आत्मा नहीं है, नहीं है, नहीं है।

मैंने स्वयं को बार-बार चैतन्य करना शुरू किया। मुझे संदेह हो रहा था कि इस कमरे में जो भी मौजूद है, वह वामदेव के मानसिक शिकंजे में जकड़ा हुआ है। मैं उस शिकंजे को तोड़ने के लिए अकुला रहा था। मेरे तर्क डूब रहे थे। मैं उन्हें टटोल रहा था। आखिर मैंने पूछा, "वामदेव जी ! लड़की के शरीर में आपको कैसा लग रहा है ?"

"अच्छा लग रहा है। बहुत अच्छा।"

"लड़की के शरीर में आपने कैसे और कहाँ से प्रवेश किया ?"

"मैंने अपनी दैवी शक्ति से, नासिका द्वारा प्रवेश किया।"

"क्या आत्मा में याददाश्त होती है ?"

"नहीं।"

"याददाश्त किसमें होती है ?"

"याददाश्त मस्तिष्क में, शरीर में होती है।"

"वामदेव के शरीर से जब आप बाहर निकले, तब क्या आपकी याददाश्त उसी शरीर में छूट नहीं गई ?"

"छूट गई।"

"फिर भी आपको कैसे याद है कि आप वामदेव की आत्मा हैं ?" मैंने तपाक से पूछा।

लड़की के मुँह से कोई जवाब न निकला। अचानक उसने मुँह फाड़कर तीखी गंध का वही फूत्कार मुझ पर फेंका। मैं समझ गया कि यह जवाब को टालने की ही कोशिश है। मैंने सवालों का सिलसिला दुबारा शुरू किया।

"क्या आप वामदेव जी को पहचानते हैं ?" मैंने पूछा।

"मैं स्वयं वामदेव हूँ।" लड़की मर्दाना आवाज में बोली।

"वामदेव सिर्फ एक नाम है। यह नाम किसका है ? वामदेव जी के शरीर का या उनकी आत्मा का ?"

लड़की इस बार भी चुप रह गई। उसके चेहरे की विकरालता बढ़ रही थी, किन्तु मेरा विश्वास लौटने लगा था। लड़की के दुबारा चुप रह जाने से मेरी प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई थी। कमरे में जितने अघोरी मौजूद थे, सबके चेहरों पर आश्चर्य ही नहीं, व्याकुलता भी झलकने लगी थी। मैंने कनखियों से अलखआनन्द की ओर देखा।

अलखआनन्द एकदम स्तब्ध मालूम पड़े।

मैंने दुबारा अपना ध्यान लड़की पर केन्द्रित किया, "शरीर और आत्मा के बीच क्या सम्बन्ध है ?" मेरा अगला सवाल था।

लड़की ने रटेरटाए ढंग से कहा, "शरीर रथ है, आत्मा रथी है।"

"क्या शरीर को समिधा और आत्मा को अग्नि कहना बेहतर नहीं ?" मैंने पूछा।

"कोई अंतर नहीं है।"

"दोनों कथन झूठे हैं।" मैंने एकाएक चुनौती दी।

"साबित कर सकते हैं ?"

मैंने कहा, "शरीर दो प्रकार के होते हैं—नर और नारी। क्या ऐसे ही नर-नारी रथों में होते हैं ? समिधा क्या है ? समिधा लड़की है। क्या लकड़ी में भी नर-लकड़ी और

नारी-लकड़ी होती है ? नर-रथ और नारी-रथ को मिलाने से, या नर-लकड़ी और नारी-लकड़ी को मिलाने से, क्या कोई नया रथ या कोई नई लकड़ी जन्म लेती है ? जबकि नर शरीर और नारी शरीर के मिलन से एक नया ही शरीर अवतरित होता है। शरीर की तुलना रथ या लकड़ी से भला कैसे हो सकती है ? जब शरीर रथ नहीं है, तो आत्मा भी रथी नहीं है। जब शरीर समिधा नहीं है, तो आत्मा भी अग्नि नहीं है। यह केवल शब्द-जाल है। इसमें भ्रम है। इसमें ज्ञान नहीं है। किसी भी वस्तु से शरीर की तुलना नहीं हो सकती, क्योंकि शरीर में चेतना है। शरीर सम्पूर्ण चैतन्य है। चेतना या कहें कि आत्मा, शरीर में बाहर से नहीं आती। चेतना तो शरीर का जीवंत शरीर का स्वभाव है, शर्त है, शैली है। जन्म के समय शरीर अपनी चेतना, यानी आत्मा के साथ ही अवतरित होता है। मृत्यु के समय शरीर और उसकी चेतना, यानी आत्मा, साथ-साथ ही नष्ट होते हैं। जन्म के समय कोई आत्मा बाहर से आकर शरीर में नहीं घुसती। मृत्यु के समय कोई आत्मा शरीर से निकल कर बाहर उड़ान नहीं भरती। शरीर और आत्मा, यानी शरीर और चेतना तो आपस में ओतप्रोत हैं।''

''मूर्ख !'' लड़की के मुँह से वामदेव दहाड़ उठा। लड़की की आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ फूटने लगीं। लड़की हाथ-पैर जोरों से उछलने लगे।

मैंने हौले से कहा, ''आप तो सांसारिकों जैसा क्रोध कर रहे हैं। आत्माएँ इस प्रकार क्रोध नहीं किया करतीं।

माता अदिति कब मेरे पीछे आकर बैठ गई थीं, मुझे पता नहीं चला था। उन्होंने सहसा मेरे कान में बुदबुदा कर कहा, ''विवाद बंद कर दीजिए। प्रयोग प्रयोग होता है, विवाद नहीं। वामदेव जी से कहिए कि प्रयोग से आप संतुष्ट हुए हैं ताकि उनकी आत्मा वापस उन्हीं के शरीर में चली जाए।''

कुछ पल मैं चुप बैठा रहा। मैं सोच में डूब गया। माता अदिति की सलाह मुझे उचित मालूम पड़ी। इन तमाम अघोरियों के सामने, स्वयं अपने सामने भी, मुझे जो साबित करना था, वह मैंने साबित कर दिया था। इस प्रयोग से जो निष्कर्ष निकला था, उसे सभी अघोरियों ने समझा हो, चाहे न समझा हो, किन्तु अलखआनन्द अवश्य समझ गए होंगे। निकुम्भ भी समझ गया होगा। शायद माता अदिति के सामने भी कुछ स्पष्ट हुआ हो.............

मैंने उड़ती नजर से अलखआनन्द और निकुम्भ की ओर देखा। अलखआनन्द चेहरा झुकाए बैठे थे। न जाने क्यों, उनकी इस हारी हुई मुद्रा ने मुझे दहला दिया। निकुम्भ का रंग उड़ा हुआ था, किन्तु उसने चेहरा नहीं झुकाया था।

''वामदेव जी ! मैंने लड़की से कहा, ''परकाया प्रवेश के इस प्रयोग से मैं संतुष्ट हुआ हूँ। आपको कष्ट दिया, इसके लिए क्षमा चाहता हूँ। यदि आप वापस अपनी काया में चले जाएँ, तो बहुत आभार मानूँगा।''

किन्तु वामदेव की तथाकथित आत्मा ने लड़की के शरीर का त्याग जल्दी से नहीं किया। काफी देर तक लड़की भयानक धमाल करती रही। फिर क्रमशः उसने शांत होना

शुरू किया। माता अदिति ने उसे उसी तरह सुला दिया, जैसे वह पहले सोई हुई थी। वह पहले की तरह ही जड़ हो गई। वामदेव ने मंत्रोच्चार करते हुए अपनी चेतना को दुबारा ग्रहण किया। कमरे में उपस्थित अघोरी उसका जय-जयकार करने लगे। वामदेव ने गरिमामय मुद्रा में सबका अभिवादन स्वीकार किया। फिर उसने बड़ी खूंख्वार नजरों से मेरी ओर देखा। उन नजरों में तिरस्कार था, क्षोभ भी था। उन नजरों ने मुझे बता दिया कि मेरे और वामदेव के बीच, अनायास, एक शत्रुता प्रारम्भ हो चुकी है या होने ही वाली है..........

अट्ठाईस

मेरा मनोमंथन



ज्यों-ज्यों समय बीता, त्यों-त्यों मुझे यही लगता गया कि माता अदिति की सलाह मानकर, वामदेव की तथाकथित आत्मा को ज्यादा न छेड़कर, मैंने बुद्धिमानी ही की है। बाबा भैरवनाथ के साथ कुछ बातें करके हम बाहर निकल आए। निकुम्भ आगे-आगे चला, मैं कुछ डग पीछे रहा।

अचानक एक कमरे में से वितथनाथ निकल आए और मुझसे कहने लगे, "वामदेव महाघमंडी है। आज उसके घमन्ड को चूर-चूर होते देखकर मुझे प्रसन्नता हुई है।"

मैं इसके उत्तर में कुछ न बोल सका। वितथनाथ से क्षमायाचना करके मैं आगे चलने लगा। चौगान में मैथुन-नृत्य की तैयारियाँ चल रही थीं। मैं और निकुम्भ वहाँ से दूर हट कर अलाव के पास बैठ गए। जंगल की रात, एक बार फिर, भयानकता धारण करने लगी थी। हिंसक पशुओं की गुर्राहटें और दहाड़ें रह-रह कर सुनाई दे जातीं। सियार बार-बार रोने लगते।

अलाव के पास बैठते ही मन में एक विचार कौंध गया, 'यथासम्भव, कल सुबह ही, मुझे यहाँ से चले जाना चाहिए।'

जिज्ञासु मन अनेकानेक दलीलें कर कह रहा था कि लड़की के बलिदान तक मैं अवश्य रुक जाऊँ, किन्तु यहाँ रुकने में जो खतरे थे, वे मेरे सामने प्रकट होने लगे थे। बेशक मैंने अभयावस्था प्राप्त कर ली है, किन्तु अभय होने का अर्थ यह भी नहीं कि आप झपटती ट्रेन के सामने खड़े हो जाएँ, कुतुबमीनार से छलांग लगा दें या रक्तपिपासु अघोरियों के बीच जरूरत से ज्यादा रुके रहें।

वामदेव ने जिन शत्रुतापूर्ण नजरों से मुझे घूरा था, उन्हें भुलाना असम्भव था। मुझे एक मौन चेतावनी मिल गई थी। यहाँ और अधिक रुकने पर, अघोरियों के साथ अकारण ही बहसबाजी होती रहने का तेज खतरा था। इस चक्कर में मुझे अपनी जान से भी हाथ धोना पड़ सकता था। अघोरियों की नजर में, जो व्यक्ति अघोरी नहीं है, उसका मूल्य भुनगे से अधिक नहीं हुआ करता। कोई भुनगा यदि नागवार गुजरने वाली दलीलें करेगा, तो अघोरियों द्वारा वह किसी भी क्षण कुचल दिया जाएगा। मैं बिल्कुल नहीं चाहता था कि अघोरियों को नागवार गुजरने वाली दलीलें दूँ, किन्तु अनजाने में बार-बार यही हो रहा था। आगे भी यही होगा, यह लगभग निश्चित था। इसके खतरनाक परिणाम भुगतने के लिए मैं एकाएक तैयार नहीं था।

यदि मैं कल सुबह ही चला गया, तो बाजी अधूरी छोड़कर जाऊँगा, इस अहसास ने मुझे हताश कर दिया। दुविधा में फँसकर मैं बड़ी देर तक चुपचाप बैठा रह गया। निकुम्भ भी चुपचाप बैठा रहा। अवश्य उसके मन में भी कोई तीव्र मनोमंथन था। मेरी तरह उसे भी खामोशी की अत्यन्त आवश्यकता थी। मैं स्वयं से बार-बार पूछ रहा था, "यहाँ मैं क्यों आया हूँ ? तंत्र-मंत्र की वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक सच्चाई खोजने के लिए ही न ? क्या यह सच्चाई मैंने पा नहीं ली है ? दो ही दिनों में क्या मैंने बहुत-कुछ देख नहीं लिया है ? अघोरियों को उनके जीवन की, उनकी सिद्धियों की व्यर्थता समझाकर, अपने परम मित्र जगजीत की मौत का बदला लेना यहाँ आने का एक उद्देश्य यह भी था। वामदेव के प्रयोग को, अनेक अघोरियों की गवाही में, व्यर्थ साबित करके क्या मैंने अपने इस उद्देश्य को भी पूरा नहीं कर लिया ? अब मैं यहाँ और क्यों रुका रहूँ ?"

तब मुझे अनुमान नहीं था कि यहाँ मुझे पूरे पाँच दिन रुकना पड़ेगा। अघोरियों को ललकारने के बाद यहाँ से सकुशल वापस चले जाना मेरे लिए आसान रहने वाला नहीं था।

सहसा बाबा अलखआनन्द हम दोनों के पास आकर बैठ गए। बैठते ही बोले, "परकाया प्रवेश के इस प्रयोग को देखकर आपको कैसा लगा ? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं ?"

"प्रयोग आपने भी तो देखा। आपको कैसा लगा ?" मैंने प्रश्न के विरुद्ध प्रश्न किया।

"मुझे तो कुछ समझ में ही नहीं आ रहा।" वह बेबाक होकर बोले।

मैंने कहा, "अलखआनन्द जी ! मेरे अनुसार तो.....भयानक पुतले के मुँह से आत्मा की आवाज सुनाने का जो प्रयोग आपने दिखाया था, उसमें और वामदेव के प्रयोग में

मूलभूत अंतर कोई नहीं है। आप दोनों ही के पास शब्द भ्रम पैदा करने की अद्‌भुत शक्ति है। इस शक्ति को अद्‌भुत स्वीकार करने के बावजूद मैं जानता हूँ कि न तो आपने कोई आत्मा बुलाई थी और न वामदेव ने ही अपनी आत्मा को लड़की के शरीर में पहुँचाया था। मैंने आपको बताया था कि जिस प्रकार हिप्नोटिस्ट को आज कोई अजूबा नहीं माना जाता, उसी प्रकार 'वेण्ट्रीलोक्विस्ट' को भी अब अजूबा नहीं माना जाता। 'वेण्ट्रीलोक्विज्म' का जानकार, अपने मन में बोले गए शब्दों को, दूसरे व्यक्ति या पदार्थ में आरोपित कर सकता है। वामदेव ने अपने स्वर के साथ-साथ मुँह की गंध को भी लड़की के मुँह में स्थानान्तरित कर दिया था—वह भी तब, जब स्वयं वामदेव चैतन्य नहीं था, मैं इस सिद्धि को अद्‌भुत ही कहूँगा, किन्तु उसका सम्बन्ध किसी आत्मा-वात्मा से नहीं है। उस लड़की के माध्यम से मैंने वामदेव की तथाकथित आत्मा से जो बातचीत की थी। उसे आपने ध्यान से सुना तो होगा ही। क्या उस बातचीत के निष्कर्ष ऐसे नहीं हैं कि आत्मा के अस्तित्व की तमाम बातें आधार खोने लगें ?"

"फिर भी......वह लड़की मर कैसे गई ? मर कर भी वह जी कैसे गई ? कैसे उसने आपके साथ बातचीत की ?" अलखआनन्द सचमुच उलझन में थे।

मैंने उत्तर दिया, "यह भी कोई अलौकिक चमत्कार नहीं, बल्कि हमारी इस प्रकृति का ही एक रंग है। हिन्दी में एक शब्द है 'सुषुप्तावस्था'। अंग्रेजी में इसे 'हाइबरनेशन' कहते हैं। निकुम्भआनन्द इस शब्द से परिचित होंगे, क्योंकि वह डॉक्टर रह चुके हैं।"

मैंने निकुम्भ की ओर देखा। उसने 'हाँ' में सिर हिलाया।

मैंने आगे चलाया, "ठण्ड के दिनों में सर्प अपने बिल में घुस कर लगातार चारेक महीनों तक सोता रहता है। उस पूरे दौर में वह कुछ भी खाता-पीता नहीं। वह सुषुप्तावस्था में होता है। देखने में वह बिल्कुल मुर्दा लगता है। उसके शरीर में रक्त-संचार का कोई संकेत नहीं मिलता। इसके बावजूद, ठंड बीतते ही सर्प जीवित हो जाता है। यह चमत्कार ऐसा ही है, जैसे कोई लाश जी उठी हो। गर्मियाँ आने से पहले मेंढक गहरे कीचड़ में उतर जाता है। कीचड़ सूखने के साथ मेंढ़क भी सूख जाता है। ऐसे मेंढ़क को यदि कोई खोद कर निकाले, तो वह मरा हुआ ही लगेगा, लेकिन वह केवल सुषुप्त होता है। उसकी धड़कन रुकी हुई लगने के बावजूद, पूर्णतया रुकी नहीं होती। बड़ी देर-देर में एक-एक धड़कन की दर से उसका रुधिर संचरित हो रहा होता है। यही सुषुप्त मेंढ़क बारिश शुरू होते ही पूरे उल्लास के साथ जी उठता है। ध्रुव प्रदेशों में सफेद रीछ, शीत ऋतु के चारों महीने सुषुप्त होकर गुजारता है। सफेद रीछ की मादा, इसी सुषुप्तावस्था में बच्चों को जन्म देती है। बच्चे भी सुषुप्त ही पैदा होते हैं। मादा को प्रसव के कष्ट का कुछ पता भी नहीं होता। प्रकृति का कैसा अनोखा चमत्कार है। शीत बीतते ही बच्चे और माँ जी उठते हैं।"

अलखआनन्द मुझे आश्चर्य से देख रहे थे। ये वैज्ञानिक जानकारियाँ उनके लिए उतनी ही अलौकिक थीं, जितनी स्वयं उनकी सिद्धियाँ। वह बुदबुदाए, "लेकिन......आप ये जाकारियाँ मुझे क्यों दे रहे हैं ?"

मैंने गम्भीरता से कहा, "इसलिए कि जो लड़की मरी हुई दीख रही थी, उसे आप केवल सुषुप्त ही मानें। वामदेव के मानसिक आदेशों को ग्रहण करके वह सुषुप्त होती है, जागती है और फिर से सुषुप्त हो जाती है। वामदेव के सामने वह पूर्ण मानसिक समर्पण कर चुकी है। अन्ध-श्रद्धा की यह चरम सीमा है। वामदेव की आवाज उसके गले से निकलती है। वामदेव की गन्ध उसके मुँह से आती है। वामदेव की आँखों की लालिमा उसकी आँखों से झलकती है। वह बिल्कुल वामदेवमय हो चुकी है। उसकी समस्त चेतना पर वामदेव छा गया है। वामदेव जैसे प्रखर अघोरी के लिए, किसी अनपढ़ अन्धविश्वासी लड़की पर पूर्ण मानसिक अधिकार जमा लेना कोई मुश्किल काम नहीं है।"

"यानी.............परकाया प्रवेश का प्रयोग देखने के बाद भी आप आत्मा का अस्तित्व स्वीकार नहीं कर रहे ?" निकुम्भआनन्द ने घोर दुविधा से मेरी ओर देखा।

मैंने कहा, "आप ही बताइए, कैसे स्वीकार कर लूँ ?"

'प्लैन्शेट' की सहायता से जो आत्माएँ बुलाई जाती हैं, वे कहाँ से आती हैं ?" अलखआनन्द ने चुनौती की मुद्रा में मेरी ओर देखा।

मैंने बाबा अलखआनन्द को बताया कि 'प्लैन्शेट' के कई प्रयोग स्वयं मैं कर चुका हूँ। अनेक प्रयोग मैंने देखे भी हैं। मैंने स्वीकार किया कि शुरू में इन प्रयोगों ने मुझे अभिभूत कर दिया था। मुझे भी यही लगने लगा था कि आह्वान करने पर आत्मा सचमुच आती है और 'प्लैन्शेट' के जरिए बात करती है 'प्लैन्शेट' के अनुभवों ने मेरी मान्यताओं को ध्वस्त कर दिया था। इसका पता मुझे बहुत बाद में चला था कि 'प्लैन्शेट' मुझे केवल भ्रम के भँवर में फँसा रहा है।

उन्तीस

'प्लैन्शेट' की असलियत



'प्लैन्शेट' पर आत्मा बुलाने का प्रयोग बहुत सरल है। इसका बड़ा व्यापक इस्तेमाल हो रहा है। वास्तविकता से अनजान व्यक्ति, जो उच्च वैज्ञानिक शिक्षा से लैस भी होते हैं, इस प्रयोग को देखकर सचमुच अभिभूत हो जाते हैं। उनकी सारी वैज्ञानिकता धरी रह जाती है। आत्मा के अस्तित्व पर वे आँख मूँद कर विश्वास कर लेते हैं। मन-ही-मन पछताते भी हैं कि अब तक विश्वास क्यों नहीं किया था। जन-कल्याण को दृष्टि में रखकर, यहाँ, 'प्लैन्शेट' के रहस्य पर, विस्तार से लिख रहा हूँ।

हिन्दू धर्म की आत्मा की कल्पना को महात्मा बुद्ध ने चुनौती दी थी। इसके बावजूद, बौद्ध धर्म आत्मा का कोई विकल्प जनता के सामने नहीं रख सका था। बाद में, जैनों ने आत्मा की कल्पना को स्वीकृति दे दी। 'आत्मा है' यह साबित करने के लिए 'प्लैन्शेट' से मिलता-जुलता प्रयोग जैन सन्यासी भी दिखाया करते थे।

'प्लैन्शेट' का जो वर्तमान स्वरूप है, उसमें चिकनी सतह की किसी मेज को घेर कर तीन श्रद्धालु व्यक्ति बैठ जाते हैं। रोमन लिपि के सब अक्षर और आँकड़े उस मेज

पर बिखरे होते हैं। ये अक्षर और आँकड़े या तो मेज पर लिख दिए जाते हैं या कतरनों की शक्ल में फैलाए जाते हैं। मेज के बीच में काँच का गिलास रखकर, तीनों श्रद्धालु व्यक्ति अपनी-अपनी उंगली से गिलास को छूते हैं। इस स्पर्श को अखण्ड रखा जाता है। तीन में से कोई एक, अथवा तीनों व्यक्ति मिलकर, किसी मृतक की आत्मा का आह्वान करते हैं। लोगों के दावों के अनुसार गाँधी या बुद्ध जैसे महानुभावों की आत्माएँ भी 'प्लैन्शेट' पर बुलाई जा सकती हैं। वास्तविकता में, आत्मा आने का केवल भ्रम ही होता है। दावे के अनुसार--

तीनों श्रद्धालुओं की उंगलियों का स्पर्श पाकर, वह गिलास, सहसा, आत्मा को ग्रहण कर लेता है। गिलास अपने-आप सरकना शुरू करता है। मानो कोई अदृश्य शक्ति गिलास को धकेल रही हो, इस प्रकार वह उन बिखरे पड़े अक्षरों और आँकड़ों के बीच घूमने लगता है। पूछे जाने पर मृतात्मा अपना नाम बताती है। इसके लिए वह अपने नाम के रोमन हिज्जों का अनुसरण करके, गिलास को धकेलती हुई, ए-बी-सी-डी इत्यादि अक्षरों पर ले जाती है। प्रश्नों के उत्तर आत्मा 'हाँ' या 'नहीं' में देती है। 'हाँ' के लिए वाय-ई-एस और 'नहीं' के लिए एन-ओ अक्षरों कों गिलास क्रमवार सरक कर छूता है। कभी-कभी केवल 'हाँ' या 'नहीं' के बजाए पूरे-पूरे शब्दों या वाक्यों में भी आत्मा उत्तर देती है।

पूर्वजन्म और पुनर्जन्म में विश्वास रखने वालों की बातों ने मुझे जितना नहीं सताया था, उससे ज्यादा इस 'प्लैन्शेट' के तमाशे ने सताया था। 'प्लैन्शेट' के अनेक प्रयोग खुद किए। इसके अनेक विशेषज्ञों से मिलकर देखा। प्रयोगों में माध्यम बनते श्रद्धालु लोगों से भी कुरेद-कुरेद कर पूछा। तमाम बातों का मैंने मनोवैज्ञानिक पृथक्करण किया। इसके बाद ही मैं 'प्लैन्शेट' के रहस्य को समझ सका।

मन की गूढ़ शक्ति की चर्चा बार-बार की जा चुकी है। उसी गूढ़ शक्ति का यह अनोखा, किंतु सीधा-सादा तमाशा है। तीन श्रद्धालु व्यक्तियों की मिलीजुली मानसिक शक्ति जब प्रबल इच्छा करती है कि गिलास जरूर हिलेगा तो गिलास सचमुच हिलने लगता है। गिलास में कोई आत्मा आकर बैठती नहीं है। श्रद्धालु माध्यमों की स्वयं की इच्छा-शक्ति ही उसका संचालन करती है। मेरे इस निष्कर्ष पर यदि किसी को संदेह हो, तो उसे निम्न प्रयोग करना चाहिए।

'प्लैन्शेट' पर बैठने वाले तीनों श्रद्धालु व्यक्ति मिलकर, भूतकाल का कोई ऐसा प्रश्न खोजें, जिसका उत्तर तीनों में से एक को भी ज्ञात न हो। फिर वे 'प्लैन्शेट' में आत्मा को बुलाकर उस प्रश्न का उत्तर पूछें। बाद में इस उत्तर की जाँच करवा लें। उत्तर गलत निकलने की ही संभावना अधिक होगी। यदि उत्तर सही निकला भी, तो केवल संयोगवश ऐसा होगा। तीन में से एक भी माध्यम को उत्तर ज्ञात न हो, ऐसे कई प्रश्न बनाए जा सकते हैं। आत्मा से इन सभी प्रश्नों के उत्तर लेने पर, संयोग की महत्ता के बावजूद, निष्कर्ष यही निकलेगा कि आत्मा गलत उत्तर बताती है।

'प्लैन्शेट' पर तीनों माध्यम ऐसे बिठाएँ, जिनमें से एक को भी रोमन लिपि का रंचमात्र भी ज्ञान न हो। गिलास या तो सरकेगा ही नहीं और यदि सरकेगा भी, तो अललटप।

स्मरणीय है कि यदि तीन में से एक भी व्यक्ति को सही उत्तर मालूम होगा, तो आत्मा का उत्तर सही निकलने की सम्भावना अधिकतम रहेगी।

वास्तव में, उत्तर आत्मा नहीं देती, बल्कि वे तीनों व्यक्ति ही मिलजुल कर देते हैं। गिलास के साथ उंगली का स्पर्श अखंड रखने के फेर में जाने-अनजाने, गिलास को वे स्वयं ही सरका देते हैं। जब गिलास बिना धक्के के सरकता है, तब भी, तीनों माध्यमों की इच्छा-शक्ति के ही प्रताप से सरकता है।

ऐसे प्रयोगों में श्रद्धा रखने को सचेत करने के लिए दोहरा कर कहूँगा कि यदि सचमुच आत्मा होती है, तो भी उसका कोई नाम नहीं हो सकता। यह कथन मेरा अपना नहीं, बल्कि आत्मा का रूप-रंग तय करने वाले धार्मिक ग्रंथों का है। सभी ग्रंथों में आत्मा को स्मृतिविहीन और नामविहीन बताया गया है। लिहाजा, किसी भी व्यक्ति की आत्मा को, उसका नाम लेकर नहीं बुलाया जा सकता। आत्मा स्मृतिविहीन होने के कारण उसे यह याद हो ही नहीं सकता कि उसका नाम क्या था और क्या है।

इसके अलावा, आत्मा का तो पुनर्जन्म होने का कथन है न ! गाँधी या बुद्ध की आत्माओं को 'प्लैन्शेट' पर बुलाने वाले क्या एक बार भी ऐसा नहीं सोचते कि उन आत्माओं का कहीं पुनर्जन्म हो चुका होगा ?

यदि पुनर्जन्म नहीं हुआ है, तो भी सोचने की बात है कि आत्मा का परमात्मा के साथ विलय भी तो हो सकता है। विलय के बावजूद, पृथ्वी के क्षुद्र मानवों द्वारा आह्वान होने पर, आत्मा परमात्मा से जुदा कैसे होती है ? 'बातचीत' करके जब वह लौटती है, तब परमात्मा के साथ उसका नए सिरे से विलय किस प्रकार होता है ? ये वे प्रश्न हैं कि जिन पर गौर करते ही 'प्लैन्शेट' की निरर्थकता अपने-आप सामने आ जाएगी।

'प्लैन्शेट' में आई हुई आत्मा जब अपने भूतकाल की बातें करती है, तो ये बातें वे ही होती हैं, जिन्हें माध्यम बनकर बैठे तीन व्यक्तियों में से कोई-न-कोई अवश्य जान रहा होता है। कभी-कभी ये बातें इतनी बेपर की उड़ान होती हैं, जिनकी सच्चाई को जाँचा ही न जा सके। तीन में से एक भी माध्यम का मन यदि दिग्भ्रमित है, तो यही परिणाम सामने आएगा।

'प्लैन्शेट' में तो निर्जीव गिलास में आत्मा उतरती है। इसी तरह, कुछ जीवित व्यक्ति भी स्वयं में आत्मा को उतार सकने का दावा करते हैं। ऐसे प्रयोगों में भ्रम ही महत्त्व का रोल अदा करता है। जीवित माध्यम बनने वाला व्यक्ति, स्वयं इतना अंधश्रद्धालु होता है कि आत्मा के आगमन पर वह सपने में भी अविश्वास नहीं करता। अंधविश्वास की अति के ही कारण यह व्यक्ति अभिभूत होकर ऐसा व्यवहार करने लगता है, जैसे उसके शरीर में आत्मा सचमुच आ गई हो।

जीवित माध्यम बनने वाले व्यक्ति, कभी-कभी, जाने या अनजाने में, टेलिपैथी के नियमानुसार, सामने के व्यक्ति की विचार-प्रक्रिया को ग्रहण कर लेते हैं। उस व्यक्ति के ही मन के जवाबों को वे 'आत्मा द्वारा दिए गए जवाब' बनाकर पेश करने लगते हैं।

आत्मा का दिया हुआ एक जवाब यदि सच्चा निकल आता है तो उसका खूब ढिंढोरा पीटा जाता है। लेकिन यदि आत्मा के दिए एक हजार जबाब भी गलत निकल आएँ, तो लोग उनकी चर्चा नहीं करते। जनता के स्वभाव की इस विलक्षणता के कारण भी इस देश में ठगी का बाजार हमेशा गर्म रहता है।

जीवित माध्यम बनने वाले कुछ व्यक्ति, जिसकी आत्मा बुलानी होती है उसके मरने का दिन और समय पूछते हैं। यह मूर्खता और अज्ञान की पराकाष्ठा है। सब जानते हैं कि दिन और समय को पहचानने के जो भी तरीके अस्तित्व में हैं, वे सभी तरीके मनुष्य के खोजे हुए हैं। वे केवल पृथ्वी पर लागू हो सकते हैं। धर्म-ग्रंथों के अनुसार ही, आत्माएँ तो ब्रह्माण्ड में, सातवें आसमान में, विचरण करती हैं। पृथ्वी का दिनांक ब्रह्माण्ड में कैसे लागू हो सकता है। पृथ्वी का समय ब्रह्माण्ड में भला किस प्रकार किसी को समझ में आएगा ? इसके अलावा, स्वयं इसी पृथ्वी पर, एक ही क्षण में, अलग-अलग स्थानों में, अलग-अलग समय और अलग-अलग दिनांक होते हैं। इस भूलभुलैया के रहते, मृत्यु के दिन और समय के आधार पर, असंख्य आत्माओं के बीच से किसी एक खास आत्मा को ही आखिर कैसे बुलाया जा सकता है।

ऐसे अनेक प्रश्नों के रहते मैं कभी भी, परम्परागत अर्थ में, आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं कर पाता। बाबा अलखआनंद के सामने ये सारे तर्क मैंने रखे। किसी भी तर्क का उत्तर नहीं था उनके पास।

अलखआनंद के चेहरे पर दुविधा और ग्लानि के ऐसे हावभाव आ और जा रहे थे, जिनकी गहराई को नापना मेरे लिए सम्भव नहीं था।

जरा विषयान्तर करके, यहाँ माता अदिति के साथ हुई चर्चा अंकित कर लूँ। मुझे बुलाकर उन्होंने सबसे पहले तो यही चेतावनी दी की अघोरियों के साथ वाद-विवाद करते समय मैं बहुत सचेत रहा करूँ। फिर उन्होंने आत्मा के सम्बन्ध में मेरे विचार जानने की उत्सुकता व्यक्त की। मैंने गुरु चैतन्यानंद से प्रारम्भ करके बाबा अलखआनंद तक की अपनी सम्पूर्ण चर्चाओं का सार उनके सामने प्रस्तुत किया। मेरी मान्यताएँ किन अनुभवों पर आधारित हैं, सब बताया।

अलखआनंद उस भयानक पुतले में आत्मा नहीं बुलाते हैं। बल्कि शब्द-भ्रम का छल मात्र करते हैं। यह बात माता अदिति को भी नहीं मालूम थी। शब्द-भ्रम की कला के बारे में सुनकर उन्होंने बड़ा अचरज व्यक्त किया।

'वामदेव ने उस लड़की पर चरम मानसिक अधिकार जमा लिया है। लड़की वामदेव के ही आदेशानुसार जीने-मरने लगी है।' मेरी यह राय सुनकर वह तुरन्त बोलीं, "आपकी बात वजन रखती है। वामदेव एक लम्बे समय से उस लड़की के सम्पर्क में रहा

है। लड़की के माँ-बाप वामदेव के अनन्य भक्त हैं। जब हम लड़की को उठाकर यहाँ लाए, तब वह तेज बुखार की मरीज थी। बुखार के बाद, अचानक उसका शरीर ऐसे ठन्डा हो गया कि माँ-बाप ने उसे मरी हुई ही मान लिया। लड़की की नब्ज भी बंद हो चुकी थी। वामदेव ने लड़की उसके माँ-बाप से माँग ली। यह कह कर कि लड़की तो मर ही चुकी है। भक्त माँ-बाप इंकार न कर सके। जब वामदेव लड़की को उठाकर यहाँ लाया, तब भी वह लाश की तरह ही निढाल थी, किन्तु सच्चाई यह है कि वह जिन्दा थी और उसे यहाँ बलिदान के लिए लाया गया है। हम किसी लाश की बलि थोड़े ही दे सकते हैं। बहरहाल......लड़की के शरीर में वामदेव की आत्मा ने सचमुच प्रवेश नहीं किया था, आप की यह बात मुझे तथ्यहीन नहीं लग रही है।"

अघोरियों से व्यर्थ बहस न करने के बारे में एक बार और चेतावनी देकर माता अदिति ने मुझे विदा कर दिया था।

तीस
रंगे हाथ



चौगान के मध्य में दीक्षार्थी अघोरियों और सम्मोहित युवतियों का तांत्रिक मैथुन-नृत्य लय और गति की चरम सीमा पर पहुँचने लगा था। मैं और निकुम्भ उसे देखने के लिए थमे रह गए। तांत्रिक मैथुन का मूल शिवपुराण में है। शिव-पार्वती इस तंत्र के प्रणेता माने जाते हैं। बाह्य प्रकृति में यह तंत्र ब्रह्मचर्य के नितांत विरुद्ध होते हुए भी, मनोनिग्रह को जितना महत्त्व बह्मचर्य में दिया गया है, उतना ही इसमें भी। ब्रह्मचर्य के कारण उसके पालनकर्ताओं में जिस भ्रम का विस्तार हुआ, वैसे ही बल्कि उससे भी विकट भ्रम का विस्तार, इस तन्त्र के कारण वाममार्गियों में हुआ। मानव के सबसे तीव्र आवेग, कामावेग पर विजय पाना सबसे ऊँची मानसिक और शारीरिक सिद्धि समझ लिया गया था। यह मान्यता आज तक जीवित चली आ रही है। ब्रह्मचारियों ने कामावेग से छूटने के लिए उससे विरुद्ध दिशा में पलायन किया, जबकि वाममार्गी कामावेग की नजर-से-नजर मिलाकर, चुनौती की मुद्रा में, उसी की दिशा में आगे बढ़े। एक में पलायन था तो दूसरे में चुनौती थी। सहजता किसी में नहीं थी।

प्रकृति-स्वरूपा नारी को अधिकाधिक भोगने के हिमायती होने के बावजूद वाममार्गी विचारक भी स्वेच्छाचारिता के हिमायती नहीं थे। उन्होंने एक विचित्र विरोधाभास पाल लिया, जो आज तक अस्तित्व में है। एक ओर उन्होंने यह कहा कि नार-नारी एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं और सच्चा पुरुष वही है जो प्रकृति (नारी) को अधिकाधिक भोगे। दूसरी ओर उन्होंने अघोरियों के लिए यह भी विधान किया है कि तांत्रिक साधना के सार्वजनिक मैथुन-समारोह के अलावा नारी के स्पर्श को भी पाप समझा जाए। तांत्रिक साधना में भी साधक-साधिका का देह-मिलन केवल शक्ति-अर्जन के लिए होना चाहिए। सांसारिकों जैसा देह-सुख यदि साधक-साधिका ने भी ले लिया तो उन्हें तत्काल पापी और व्यभिचारी घोषित करके कठोरतम दण्ड देने का विधान है। साधक-साधिका अपने चरम उत्कर्ष को तांत्रिक शक्ति से रोके रहते हैं। यह सिद्धि कम विलक्षण नहीं है। किन्तु मैं इसे इतनी ही निरर्थक भी पाता हूँ। देह-मिलन के नितांत नैसर्गिक कर्म को भी अघोरियों की विचाराधारा में व्यर्थ ही पाप के साथ जोड़ दिया गया है।

अघोरियों का विश्वास है कि नर-नारी का देह-मिलन होते ही शक्ति का एक पूर्ण वर्तुल तैयार हो जाता है। यह वर्तुल चरम उत्कर्ष का क्षण आते ही टूटता है। शक्ति के साधकों द्वारा शक्ति का वर्तुल टूटना भला कैसे सहन किया जा सकता है। साधक-साधिका को मिलन के दौरान चरम उत्कर्ष तक पहँचने की ही मनाही कर दी गई है। ऐसी क्ठोर शर्त से मानसिक विकार की अधिकतम गुंजाइश है, किन्तु इसी शर्त में से अघोरी शक्ति का अर्जन करते हैं। तांत्रिक मैथुन के बाद उनके तन-मन में जिस शक्ति और आत्मविश्वास के दर्शन होते हैं, उसे विलक्षण ही कहना होगा। अघोरी ऐसा किस प्रकार करते हैं, यह आधुनिक शरीर-विज्ञान के लिए एक चुनौती ही माना जाएगा।

मैथुन-नृत्य को लय और ताल दे रहा नगाड़ा अचानक रुक गया। अन्य वाद्य भी अचानक शांत हो गए। मैं और निकुम्भ आश्चर्य से देखने लगे कि सहसा कौन-सा अवरोध आ खड़ा हुआ ? सम्मोहित युवतियों और दीक्षार्थी अघोरियों के उस नर्तक समूह में मैंने अजीव से चीत्कार उठते सुने। वहाँ कुछ ऐसी चहल-पहल और दौड़धूप दिखाई दी, जिसका अर्थ मैं सहसा न समझ पाया। मैंने निकुम्भ की ओर देखा। निकुम्भ की भौंहों पर बल पड़े हुए थे। जाहिर था कि उसकी समझ में कुछ नहीं आया था।

जिस मोटे अघोरी ने युवतियों का सम्मोहन किया था, उसे मैंने एक दिशा में भागते और किसी को ललकारते देखा। साथ में वामदेव भी भाग रहा था। वामदेव दूसरों को भी उसी दिशा में लपकने के लिए चिल्ला कर कह रहा था।

भगदड़ की जो दिशा थी, नर्तक-नर्तकियों के चेहरे जिस ओर घूमे हुए थे, उसी दिशा से मैंने बाबा अलखआनंद को प्रकट होते देखा। वह चिंतित मुद्रा में मेरे और निकुम्भ के निकट आए और खड़े हो गए।

दूर की एक झाड़ी के पीछे से, एक युवती को कुछ अघोरी पकड़ कर सामने ला रहे थे। धरपकड़ के उस क्षेत्र में मशालों की रोशनी बहुत कम पहुँच रही थी। इससे मामला और रहस्यमय हो उठा था। कौन था वह अघोरी ? कौन थी वह युवती ? झाड़ी के पीछे वे क्यों छिपे हुए थे ? किस अपराध में वे पकड़े जा रहे थे ?

मैंने ये प्रश्न बाबा अलखआनंद के सामने रखे।

वह दुखी स्वर में बोले, "उस नादान अघोरी का नाम सुनन्द है। अब उसकी खैरियत नहीं। उसे कठोरतम दण्ड दिया जाएगा। सुनंद का अपराध ?' अलखआनंद व्यंग्य से हँसे, "उसने समूह नृत्य से अलग होकर, सबकी नजरें बचाते हुए, उस युवती को अपने साथ झाड़ी के पीछे ले जाना चाहा। प्रकृति के हाथ में खेल गया सुनंद। जो व्यक्ति प्रकृति को भोगने के लिए तैयार किया जा रहा हो, वही प्रकृति के हाथों में खेल जाए, इसे आप क्या कहेंगे ? प्रकृति ने मैथुन के साथ निजता और गुप्तता का संस्कार मानव को दिया है। अघोरी इस संस्कार को नकारते हैं। इसी संस्कार के वशीभूत हो गया सुनंद। जो कर्म वह सार्वजनिकता के साथ कर ही रहा था, उसी को उसने निजता के साथ, गुप्तता के साथ करना चाहा। भयंकर अपराध किया है उसने। इसका दण्ड परात्पर जी निश्चित करेंगे।"

"लेकिन इसमें अपराध क्या है ?" मैंने बौखला कर पूछा, "सुनंद ने स्वयं को केवल मानव सिद्ध किया है।"

"ऐसा आप' सोचते हैं।" अलखआनंद की तेजस्वी आँखें मेरी ओर घूमीं, "अघोरी भी ऐसा ही सोचें, यह जरूरी तो नहीं। धार्मिक और तांत्रिक साधना के लिए नहीं, बल्कि क्षुद्र सांसारिक मानव जैसी लोलुपता के साथ उस युवती को भोगने के लिए सुनंद उसे एकांत में ले गया था। इस वीभत्स अपराध को अघोरी सहेंगे नहीं। दण्ड भी वीभत्स ही दिया जाएगा।"

बाबा अलखआनंद के शब्दों ने मुझे कँपा दिया। सहसा वह हँस पड़े। बहुत व्यंग्यपूर्ण थी उनकी हँसी। मुझे लगा कि सुनंद के प्रति जो सहानुभूति मेरे मन में है, वही उनके मन में भी है, किन्तु जिस तरह मैं सुनंद की रक्षा के लिए कुछ न कर सकूँगा, उसी तरह वह भी कुछ नहीं कर पायेंगे।

वह हंगामा कुछ देर में शान्त हो गया। नगाड़ा व अन्य वाद्य फिर से बजने लगे। अघोरियों ने सम्मोहित युवतियों के साथ जोड़ियाँ बनाकर फिर से नाचना शुरू कर दिया। वे जोड़े ऐसे लग रहे थे, जैसे टिमटिमाते तारे किसी मूर्च्छा से अचानक जागकर नाचने लगे हों। घण्टे भर के उदास नृत्य के बाद उस रात्रि का यह कार्यक्रम पूरा हो गया।

कार्यक्रम में भाग ले चुके एक युगल के पास निकुम्भ मुझे ले गया। परात्पर जी और माता अदिति की अनुमति मिल गई थी और मैं उस युगल से मनचाही चर्चा कर सकता था। निकुम्भ, मैं और वे युवक-युवती एक अलाव को घेरकर बैठ गए।

युवक का परिचय देते हुए निकुम्भ ने बताया कि वह भारतीय दर्शन का विद्यार्थी रह चुका है और संस्कृत का अच्छा ज्ञाता है। युवती के परिचय में निकुम्भ ने कहा कि माता अदिति की असीम कृपा उस पर है। माता अदिति की ही इच्छा एवं निर्देश के अनुसार वह तांत्रिक मैथुन के इस प्रयोग में भाग ले रही है। वह कॉलेज तक शिक्षा पा चुकी है। अन्य युवतियों की तरह वह सम्मोहावस्था में नहीं, बल्कि पूरे होश-हवाश में इस प्रयोग में भाग लेती है।

युवक-युवती दोनों की आँखों में मैंने तेजस्विता की चमक देखी।

युवक से पहला सवाल मैंने यही किया, "भारतीय दर्शन में अनेक पंथ हैं। क्या उनमें से किसी भी पंथ में वह नहीं था, जो आपने इस अघोर पंथ में पाया ? किस विशिष्टता से प्रभावित होकर आपने अघोर पंथ अपना लिया ?"

युवक ने अपनी घनी, काली दाढ़ी को सहलाते हुए गम्भीरता से कहा, "मैंने हमेशा अनुभव किया है कि तृष्णाएँ अतृप्त रह जाने के ही कारण मनुष्य को इस संसार में बार-बार आना पड़ता है। मैं बार-बार जन्म लेने के जंजाल से छूटना चाहता हूँ। प्रश्न है, 'मनुष्य की तृष्णाएँ अधूरी क्यों रह जाती हैं ?' क्योंकि हमारे सामाजिक और धार्मिक बंधन ऐसे हैं कि सभी इच्छाएँ हम पूरी कर ही नहीं सकते। यदि करेंगे, तो मन में अपराध भावना आएगी, जो नई तृष्णाओं के अलावा कुण्ठा को भी जन्म देगी। वैसे तो.. ..अघोर पंथ में भी बंधनों की कमी नहीं है, किन्तु इनका स्वरूप ऐसा है कि इन्हें स्वीकारते हुए भी सब तृष्णाएँ पूरी हो सकती हैं। तृष्णाएँ तृप्त करते समय अघोरी के मन में कोई अपराध भावना नहीं जागती, क्योंकि भोग ही तो हमारा धर्म है। यही इस पंथ की बहुत बड़ी विशेषता है। आगामी सभी जन्मों से मुक्ति इसी जन्म में पाने के लिए मैं अघोरी बना हूँ। आखिर यह पंथ भी हिन्दू धर्म की ही एक शाखा है। अन्य पंथों की तरह इसके भी मूल वेदों में छिपे हुए हैं। हम इसे नकारें क्यों ? इससे डरें क्यों ? अपनाएँ क्यों नहीं ?"

"आप जैसे पढ़े-लिखे व्यक्तियों का संबल पाकर क्या इस पंथ की शक्ति बढ़ी है ?" मैंने पूछा।

"क्यों नहीं !" वह बोला, "लगभग दो हजार वर्ष पहले इस देश में वाममार्ग ही शीर्ष पर बैठा हुआ था फिर वह पतन की ओर मुड़ा। उस दौर में सभी धार्मिक शाखाओं का पतन हुआ था। अघोर पंथ औसत समाज से विमुख होने के कारण अधिक तेजी से पतन की खाई में गिरा। समाज-विमुखता जहाँ इसके पतन का कारण बनी, वहीं इसकी विशिष्टता भी बनी। देश में अंग्रेजों के आने के बाद अघोर पंथ एक तरह से मिट्टी में मिल गया, क्योंकि जो राज्याश्रय उसे मिला हुआ था, वह एकाएक छिन गया। नकली अघोरियों ने टुच्चे चमत्कारों के सहारे जनता को लूटना शुरू किया। इससे अघोर पंथ की बड़ी मानहानि हुई। सच्चे अघोरी हिमाच्छादित पहाड़ों में चले गए। हमारे परात्पर जी पिछले बीस वर्षों से घूम-घूम कर इन बिखरे अघोरियों को समेटने का काम कर रहे हैं। मैं इसमें उनका सहयोगी हूँ। एक और विडम्बना है, जिसे मैं दूर कर रहा हूँ।"

"क्या ?" मैंने पूछा।

"वाममार्गियों का साहित्य भली प्रकार संकलित और सम्पादित नहीं हुआ है। शिवभक्तों और देवी भक्तों के साहित्य में से ही हमें अपनी विचारधारा के सूत्र निकालने पड़ते हैं। आपने शायद ध्यान दिया हो कि यहाँ बोले गये मंत्रों में भी शुद्धता नहीं रही है। अशुद्धता के बावजूद ये मंत्र सिद्ध हो जाते हैं। यह बड़ा आश्चर्य है। परात्पर जी की आज्ञा से मैं इन मंत्रों, नियमों, क्रियाकांडों को शुद्ध करने का प्रयास कर रहा हूँ। आप

अभी यहाँ जिन अघोरियों को देख रहे हैं, इन्हें परात्पर जी ने योग्यताओं की जाँच करने के बाद एकत्र किया है। पहली बार यह कार्य इतने बड़े पैमाने पर हो रहा है। मतभेद बहुत हैं। वितथनाथ जैसे अघोरी अपनी शक्तियों का रहस्य खोलने के लिए तैयार नहीं हैं। इसकी भी सम्भावना है कि कुछ ऐसे जादूगर भी यहाँ आ गए हैं, जो केवल हाथ की सफाई से चमत्कार दिखाते हैं। सबसे बड़ा मतभेद इस पर है कि स्त्रियों को इस पंथ में लिया जाए कि नहीं। वाममार्ग में स्त्री को केवल भोग्या माना गया है। माता अदिति जैसी तेजस्वी स्त्रियाँ इस विधान को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। इनका कहना है कि पुरुष और प्रकृति (नारी) ये दोनों तत्व, पुरुष और स्त्री दोनों में उपस्थित हैं। पुरुष में यदि पुरुष और प्रकृति है, तो स्त्री में भी पुरुष और प्रकृति दोनों हैं। यदि स्त्री के भोग से पुरुष को शक्ति मिलती है, तो स्त्री को भी पुरुष के भोग से शक्ति मिलती है। माता अदिति की बात तर्क-सम्मत होते हुए भी, अहं की टकराहट के कारण, अधिकांश अघोरी स्वीकार नहीं करना चाहते।"

इकत्तीस

दण्ड



मैंने उस युगल के सामने अपना अगला सवाल रखा, "प्रकृति के नियमानुसार नर-नारी का देह-मिलन तो केवल कुछ पलों का है। वही देह-मिलन, अघोरियों के तांत्रिक मैथुन-नृत्य में, इतनी दीर्घ अवधि तक कैसे चलता रहता है ?"

"खेचरी विद्या से।" युवक ने जवाब दिया।

"यह क्या है ?" मैंने पूछा।

युवक ने बताया, "'ख' या 'खे' का अर्थ है आकाश। मुँह के अंदर भी एक आकाश है, जिसे तालू कहते हैं। इसी को ब्रह्म-रंध्र भी कहा गया है। जीभ पलट कर इस तालू से अधिकाधिक छुआना, यहाँ से खेचरी प्रयोग शुरू होता है। योगी और हठयोगी इसे सिद्ध करते हैं। बाबा वितथनाथ ने उंगली से अपना तालू खोद-खोद कर खोपड़ी तक छेद बना लिया है। यह भी खेचरी है।"

मैं चकित हुआ, "खोपड़ी तक छेद ?"

"हाँ। यह अत्यन्त कठिन् प्रयोग है। तांत्रिक मैथुन के साधक-साधिका अपनी जीभ

को तालू के साथ अधिकाधिक सटाकर खेचरी साधते हैं। इससे उनका ध्यान शारीरिकता से ऊपर उठकर अलौकिकता में केन्द्रित हो जाता है। रहस्य, संक्षेप में, यही है।"

"क्या सचमुच इस प्रक्रिया से शक्ति प्राप्त होती है ?"

"निस्संदेह !" युवक ने दृढ़ता से कहा, "शक्ति का जो विस्फोट नए जीवन को संभव बना देता है, उस विस्फोट को हम रोके रहते हैं। फलस्वरूप वह जीवनदायी विस्फोट हमारे भीतर ही संचित हो जाता है। उसकी शक्ति किरणें हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व में फैल जाती हैं।"

"क्या आप भी इससे सहमत हैं ?" मैंने युवती से पूछा।

"इसमें असहमति का प्रश्न ही नहीं है।" वह भी दृढ़ता से बोली, "हाँ, असहमति के अन्य बिन्दु अवश्य हैं।"

"जैसे ?"

"मैं माता अदिति के विचारों पर मुग्ध हूँ।" युवती ने कहा, "स्त्री को केवल भोग्या कैसे माना जा सकता है ? स्वयं शाक्तों ने ही हजारों वर्षों से स्त्री को शक्ति माना है। उसी स्त्री को आज केवल भोग्या मानने में कितना बड़ा विरोधाभास है। असल में...... लिंगायतों के प्रादुर्भाव के बाद शक्ति की पूजा पुरुषों के हाथों में चली गई। इन पुरुषों ने ऐसे शास्त्रीय विधान किए, जिनसे स्त्री अबला कही जाने लगी। जिन्होंने शक्ति कहकर स्त्री की पूजा की, उन्हीं ने स्त्री को अबला बना डाला। कैसी विचित्रता है ? मातृत्व, सतीत्व, कौमार्य, सांस्कृतिक गौरव आदि बड़े-बड़े शब्दों के भार-तले स्त्री को कुचल डाला गया, जबकि अघोर पंथ का तो प्रारम्भ ही स्त्रियों ने किया है। कामरूप का कामाक्षी मंदिर कैसा इतिहास हमारे सामने रखता है ? क्या योनिवाद सबसे पुराने दर्शन-शास्त्रों में से नहीं है ? वास्तव में, राजनीति और युद्धों ने स्त्रियों का महत्त्व घटा दिया। योनिवादियों पर लिंगायतों का प्रभाव भी इसके लिए बहुत उत्तरदायी है। छोड़िए, इस बहस का कोई अंत नहीं। यह तो चलती ही रहेगी।"

मैंने अंततः कहा, "मेरे अनुसार तो मानव जन्म इस संसार की सबसे रोमांचक और आह्लादक घटना है। जो पंथ इस घटना की अलौकिकता को स्वीकार नहीं करता, उसके साथ मेरी सहमति जुड़ना मुश्किल है। अघोर पंथ तो मनुष्य को स्वयं पैदा ही नहीं करता। मनुष्य को तो वह उधार प्राप्त करता है। क्या इसमें पलायनवादिता नहीं है ? तान्त्रिक देह-मिलन से अघोरी विलक्षण शक्ति अर्जित करते हैं या नहीं, इससे भी बड़ा प्रश्न यह है कि ऐसे शक्ति-संचय की सामाजिक उपयोगिता क्या है ? यदि यह संचित शक्ति परम मेधावी शिशु अवतरित करती, तो बात कुछ समझ में आती। उन मेधावी शिशुओं से मानव जाति का उन्नयन होता। यहाँ मुझे उन ब्रह्मचारियों की याद आती है, जो अपनी सारी उम्र वासना के विरुद्ध लड़ने में गुजार देते हैं। पूरे जीवन में वे सिवा इसके और कुछ कर ही नहीं पाते कि उन्होंने वासना की जीवनदायिनी शक्ति को भी स्वीकार नहीं किया। कुछ-कुछ ऐसा ही अघोरियों के साथ भी दीखता है। ब्रह्मचारी अमैथुन करता है, तो अघोरी विमैथुन। जीवनदायिनी शक्ति को तो दोनों ही नकारते हैं।

दोनों भूल जाते हैं कि जीवन में तो ईश्वर छिपा है। जीवन को नकार कर ये दोनों साक्षात् ईश्वर को ही नकारते हैं।"

युवक और युवती में से किसी के पास इस तर्क का ठोस जवाब नहीं था। फिर भी, दोनों में से कोई झुकने को तैयार नहीं था। काफी विचार-विमर्श के बाद वे चले गए। असहमति के बावजूद इस गोष्ठी में कोई तनाव पैदा नहीं हुआ, जो मेरे लिए शांति की बात थी। मैं और निकुम्भ उनके जाने के बाद भी बातें करते बैठे रहे। सहसा पूरब का आकाश उजला होने लगा। मैं और निकुम्भ उठ पड़े। नींद के पहाड़ पलकों पर आ बैठे थे। निकुम्भ से विदा लेकर मैं अपने कमरे से बाहर ही, बरामदे में धुत हो गया।

सुबह की कोमल धूप ने मेरे बदन को अभी ठीक से सेंका भी न था कि निकुम्भ ने झकझोर कर जगा दिया, "चलिए, परात्पर जी याद कर रहे हैं।"

मैंने आसपास देखने के बाद पूछा, "अभी ? अचानक ? क्यों ?"

"आपसे रुष्ट हैं।"

"मुझसे रुष्ट ?"

"बाबा अलखआनन्द ने त्राटक का प्रयोग दुबारा दिखाने से साफ इंकार कर दिया है। वामदेव ने परात्पर जी के कान भरे हैं कि आप ही ने बाबा अलखआनन्द को भ्रमित किया है। परात्पर जी के क्रोध की सीमा नहीं है।"

मेरे होश उड़ गए। मैंने हौले से पूछा, "बाबा भैरवनाथ कहाँ हैं ?"

"निर्मलआनन्द उन्हें बुलाने गया है। परात्पर जी ने उन्हें भी याद किया है।"

मेरी चढ़ी हुई साँस कुछ नीचे उतरी। निकुम्भ ने इसे भाँप लिया और सावधान किया, "महाशय ! मामला उतना सीधा नहीं है, जितना आप सोच रहे हैं। परात्पर जी का क्रोध किसी को भी भस्म कर सकता है। वामदेव भी आपके विरुद्ध खड़े हैं।"

चेहरे पर पानी के छींटे मारकर मैं चुपचाप निकुम्भ के साथ चल पड़ा।

परात्पर श्री लकुलेश जी की बैठक बीच के बड़े कमरे में थी। दीवार से कुछ आगे हटकर, एक ऊँचे आसन पर, व्याघ्रचर्म बिछाकर, वह सिद्धासन जमाए बैठे थे। सफेद जटाओं और लम्बी सफेद दाढ़ी के बीच उनका भव्य चेहरा तमतमाया हुआ था। बड़ी-बड़ी आँखों में क्रोध की लालिमा भड़क रही थी। उनका गोरा बदन रक्तिम हो उठा था। गोद में रखी मानव खोपड़ी को वह दाहिने हाथ से सहला रहे थे। बायें हाथ में उन्होंने अपना त्रिशूल जरा तिरछा करके थाम रखा था। नजदीक ही सम्मोहन के महारथी उस मोटे अघोरी के साथ मैंने वामदेव, बाबा भैरवनाथ और निर्मलआनन्द को, वहाँ बैठी भीड़ के बीच, देख लिया। माता अदिति कहीं दिखाई न दीं।

परात्पर जी के ठीक सामने मस्तक झुकाकर खड़ा था—सुनन्द। बगल में ही एक युवती हाथ जोड़कर, सिसकती हुई, मस्तक झुकाए खड़ी थी। मैंने पहचाना, इसी सुनन्द ने इसी युवती को एकांत में ले जाना चाहा था।

परात्पर जी ने जमीन पर त्रिशूल मारा। चारों ओर शांति छा गई। थोड़ी देर तक वह चारों ओर देखते रहे। फिर, क्षितिज पर नजरें ठहरा कर बोले, "माँ ! शक्ति ! माँ

चामुण्डा ! भवानी !" कुछ पलों की खामोशी के बाद उन्होंने सिसकती युवती की ओर देखा और कहा, "मैं इसका कोई अपराध नहीं देखता। यह तो सम्मोहन में थी। जैसा सुनन्द ने चाहा, वैसा इसने किया। अपराध सुनन्द का है।"

और उनकी क्रोधित दृष्टि सुनन्द पर ऐसे फिरने लगीं, जैसे जिंदा जला देगी। वह बोले, "सुनन्द ! पाप क्षमा नहीं किया जा सकता। यौन की तांत्रिक शक्ति का ज्ञान तीन-तीन वर्षों तक देने के बाद आपको इस शिविर में बुलाया गया। तंत्र और मंत्र का महत्त्व स्वीकार करने के बाद ही आप इस साधना समारोह में शामिल हुए। अघोर पंथ की रीति और नीति से आप भली-भाँति परिचित हैं। तांत्रिक विधियों से परे, क्षुद्र सांसारिकों जैसी व्याकुलता के साथ नारी का संसर्ग करना यहाँ कितना निषिद्ध है, आप जानते हैं। ऐसे नियमों के भंग की क्या सजा दी जाती है, यह भी आपको ज्ञात है। क्या आपको अपने बचाव में कुछ कहना है ?"

सुनन्द चुप रहा। वह 'हाँ' या 'ना' में सिर भी न हिला सका।

परात्पर जी ने अब वहाँ उपस्थित सभी अघोरियों को सम्बोधित किया, "ऐसे व्यभिचार को प्रश्रय देने के ही कारण अघोर धर्म का, शाक्त धर्म का, सम्पूर्ण नाश एक बार हो चुका है। यहाँ हम शाक्तों के पुनरुत्थान के लिए एकत्र हुए हैं। यदि हमने इस महा प्रदूषण को प्रारम्भ से ही अंकुश में न रखा तो इस साधना-शिविर का कोई अर्थ नहीं है।"

गला खखारने के लिए वह रुके। पलकें कुछ पल झुकाने के बाद उन्होंने दुबारा ऊपर देखा और कहा, "जैसा कि हमारा नियम है, सुनन्द को दंड भुगतना होगा। इनकी वह जीभ काट ली जाए, जिसके द्वारा इन्होंने युवती को फुसलाया। इनके वे दोनों हाथ भी काट लिए जायें, जिनसे इन्होंने युवती को स्पर्श किया। फिर इन्हें यहाँ से भगा दिया जाए। यह दंड आज ही दिया जाए। तत्काल।"

मैं थर्रा गया। यह भयंकर क्रूरता थी। मेरा सिर घूमने लगा। पास ही खड़े निकुम्भ के कंधे पर मैंने सिर निढाल कर दिया। मैं गिरने ही वाला था, किन्तु निकुम्भ ने दोनों हाथों से मुझे थाम लिया। भयंकर भय से मैं एकदम लुंज हुआ जा रहा था। बार-बार मुझे यही याद आ रहा था कि यहाँ मुझे भी एक अपराधी की हैसियत से ही लाया गया है। क्या मुझे भी परात्पर जी उसी कठोरता से दंड देंगे, जिससे उन्होंने सुनन्द को दंडित किया है ? मेरी धरती, मेरा आकाश, मेरा मान-सम्मान, मेरा सम्पूर्ण अस्तित्व गोल घूमने लगा।

बत्तीस

गिरता स्तम्भ



कुछ देर बाद ही मैं स्वयं को जरा संभाल सका। मैंने देखा, बाबा अलखआनन्द परात्पर जी के सामने सिर झुका कर खड़े हैं। उस प्रचंड अघोरी को उतनी विनीत मुद्रा में खड़े देखना भी अपने-आप में कम आश्चर्यजनक नहीं था। परात्पर जी उनसे कह रहे थे, "अलखआनन्द ! आप इस साधना-शिविर के आधार-स्तम्भ हैं। आपकी शक्तियों पर हम सब गर्व अनुभव करते हैं। त्राटक का प्रयोग दिखाने से इन्कार करके आप हम सबकी आशाओं पर पानी फेर रहे हैं। माता चामुंडा ने कृपा करके आपको शक्तियाँ दी हैं। उसी माता का अनादर करने का परिणाम कितना भयानक है, आपको अनुमान है या नहीं ?"

"माता चामुंडा के आदेशानुसार ही मैंने त्राटक का प्रयोग न करने का निर्णय लिया है।" बाबा अलखआनन्द ने सिर उठाकर गर्वीले स्वर में कहा। उनके शब्दों ने सभी अघोरियों को चौंका दिया। उनके बीच कानाफूसियाँ होने लगीं।

"माता चामुंडा का आदेश ?" परात्पर जी ने आश्चर्य व्यक्त किया, "यह असम्भव है। माता ऐसा आदेश् दे ही नहीं सकतीं।"

"क्यों नहीं दे सकतीं ?" अलखआनन्द ने तपाक से पूछा। उनके स्वर में उद्दण्डता का आभास था।

परात्पर जी का क्रोध सुलग उठा, "अलखआनन्द ! आप अघोरियों के नीति-नियमों को भंग कर रहे हैं। यहाँ सब चामुंडा माता के भक्त ही एकत्र हुए हैं। सबको मालूम है कि माता का आदेश क्या हो सकता है और क्या नहीं। माँ शक्ति के नाम पर आप विवाद नहीं कर सकते। आपने अपराध किया है। आपको दंडित होना होगा।"

"दंडित कौन करेगा ?" अलखआनन्द ने पूछा।

"परात्पर जी। और कौन ?" वामदेव ने झट से जवाब दिया, "यह अधिकार हमीं सबने मिलकर परात्पर जी को सौंपा है।"

"दंड मैं अवश्य स्वीकार करूँगा, किन्तु मुझे एक सुनिश्चित आश्वासन चाहिए। त्राटक न दिखाने का निर्णय मेरा अपना निर्णय है। यह निर्णय मैंने किसी अन्य के उकसावे में आकर नहीं लिया है। दोष यदि है, तो केवल मेरा है। जो भी दंड दिया जाए, केवल मुझे दिया जाए। किसी अन्य को नहीं।"

निस्संदेह यह संकेत मेरी ओर था। बाबा अलखआनन्द के शब्दों ने मुझे चौंका दिया। उनसे जब पहली मुलाकात हुई थी, तब वह कितने रूखे और निष्ठुर लगे थे। उन्हीं के अंतर में सौजन्य और स्नेह की जो धारा आज बह रही थी, उसने मुझे बिलकुल ही भिगो दिया।

अघोरियों के बीच फिर से बुदबुदाहटें शुरू हो गई थीं। कोई मुँह खोल सके, इससे पहले ही माता अदिति ने प्रवेश किया। वह दृढ़ता से बोलीं, "मुझे कुछ कहना है।"

वामदेव और परात्पर जी आपस में खुसरफुसर करने लगे। परात्पर जी ने बाबा भैरवनाथ की ओर झुककर कुछ कहा। आखिर माता अदिति की ओर देखकर परात्पर जी केवल एक शब्द बोले, "कहिए।" उस एक शब्द में ही माता अदिति की दखलन्दाजी के प्रति घोर अप्रसन्नता साफ झलक रही थी।

"हम सब यहाँ साधना के लिए एकत्र हुए हैं।" माता अदिति ने शुरू किया, "हजारों वर्षों बाद शायद पहली बार यह सम्भव हुआ है। विभिन्न विचारधाराओं और सिद्धियों के अघोरी, कापालिक और वाममार्गी यहाँ साथ दिखाई दे रहे हैं। इन सभी को अपना मंतव्य व्यक्त करने का पूरा अधिकार है। अपनी सिद्धियाँ दिखाने से इन्कार करने का भी अधिकार इन सभी को है। स्वयं परात्पर जी भी अच्छी तरह जानते हैं कि सिद्धियों का प्रदर्शन करना हर क्षण सम्भव नहीं होता। यदि अलखआनन्द जैसे प्रखर वाममार्गी को दंडित किया जाएगा, तो हमारी वाममार्गी विचारधारा पर से सभी का विश्वास हिल जाएगा। कहीं ऐसा न हो कि इतिहास अपने-आपको दोहराने लगे और इस सम्मेलन का कोई अर्थ ही न रहे। सभी को ज्ञात है कि हम सर्वनाश के इतिहास में से ऊपर उठना चाह रहे हैं।"

माता अदिति के इस वक्तव्य के साथ अघोरियों में दो दल बन गए। वे एक-दूसरे के विरुद्ध हू-हू और हा-हा करते हुए ललकारने लगे। त्रिशूल उठाकर और खोपड़ियाँ

बजा-बजा कर वे जोरदार बहस करने लगे। यह देखकर बाबा भैरवनाथ ने कहा, "आप लोग थोड़ी देर के लिए बाहर चले जायें, ताकि हमें कुछ सोचने का अवसर मिले। हम थोड़ी ही देर में अपना निर्णय सबके सामने रखेंगे।"

निकुम्भ मुझे खींचता हुआ बाहर ले आया। देखते-देखते वह कमरा खाली हो गया। कुछ दूर वितथनाथ और अदिति खड़े थे। उन्होंने हमें इशारे से नजदीक बुलाया। अदिति मेरी ओर देखती हुई बोलीं, "कुछ अघोरियों को यहाँ आपकी उपस्थिति बिल्कुल पसन्द नहीं आ रही है। मैंने आपको सावधान किया था, किन्तु मेरे शब्दों को आपने गम्भीरता से लिया हो, ऐसा लगता नहीं है।"

"मैंने कुछ भी ऐसा नहीं किया है, जिसे अयोग्य कहा जा सके।" मैंने नम्रता से उत्तर दिया, "यहाँ मैं आप लोगों के बारे में जानने के लिए आया हूँ। इसी संदर्भ में सामान्य चर्चाएँ मैंने की हैं। किसी को मैंने उकसाया हो या किसी के विश्वास को जान-बूझकर खण्डित किया हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। मैं नहीं सोचता कि अलखआनन्द जी केवल मेरी बातें सुनकर भ्रमित हो गए हैं। वह प्रखर अघोरी हैं। उनकी अपनी मान्यताएँ हैं, सिद्धियाँ हैं। उनकी अपनी आशंकाएँ भी हैं। उनकी मान्यताओं, सिद्धियों और आशंकाओं के साथ मेरा क्या सम्बन्ध हो सकता है ? उनसे मेरी सामान्य चर्चाएँ ही हुई हैं। यदि उनके मन में पहले से कुछ उलझन, कुछ आशंकाएँ उपस्थित हैं, तो इसका उत्तरदायित्व मेरा कैसे हो सकता है ?"

"मैं नहीं सोचती कि आपके तर्क को परात्पर जी या वामदेव स्वीकार कर पाएँगे। यदि ये दोनों आपके विरुद्ध चलने की ठान लें, तो कैसे महा भयानक उपाय आजमा सकते हैं, इसका अनुमान आप स्वयं लगा लीजिए।"

मैं चुपचाप खड़ा रह गया। अदिति ने आगे कहा, "अब यहाँ किसी से सामान्य चर्चा भी न करिएगा। स्वयं को यहाँ केवल एक दर्शक ही मानिए। जो देखने को मिलता है, देखते रहिए। परात्पर जी जो आदेश दें, उसे सिर-आँखों पर लें। भैरवनाथ जी की सहानुभूति और प्रयासों के कारण आपको अधिकतम इतना ही दंडित किया जाएगा कि यहाँ से आपको शायद आज ही चले जाना पड़े।"

मैं बहुत निराश हो गया था। किसी के विरुद्ध मैंने कुछ नहीं किया था, फिर भी अनायास कुछ बातें मेरे विरुद्ध चली गई थीं। यहाँ मेरा बूता ही क्या था ? मेरी चलती, तो मैं अघोरियों के इन क्रूर प्रयोगों को तत्काल रुकवा देता। मेरी लाचारी और हताशा की सीमा नहीं थी। जगजीत के सर्वनाश के समय मैंने जो कुंठा अनुभव की थी, उसी का जैसे पुनरावर्तन हो रहा था।

सहसा अलखआनन्द मेरे निकट आ खड़े हुए। मैंने कहा, "आपका किन शब्दों में आभार मानूँ ? यदि आप मेरी सुरक्षा का ध्यान न रखते, तो यहाँ मैं बड़ी विडम्बना में फँस सकता था।"

वह कुछ न बोले। मेरे कंधे पर हाथ रखकर वह स्नेह से मुस्करा दिए। उनकी आँखों में आज रंच-मात्र भी विकरालता नहीं थी। उन आँखों में मैंने एक तरल

अलौकिकता के ही दर्शन किए। उनकी दृढ़ता पर मुझे बहुत सम्मान अनुभव हो रहा था। साथ-साथ, अपने-आप पर शर्म भी आ रही थी।

थोड़ी देर बाद परात्पर जी बाहर निकले। इधर-उधर बिखर कर खड़े अघोरी उनके पास सिमट आए। माता अदिति, अलखआनन्द और वितथनाथ भी सबके साथ जा खड़े हुए। वामदेव और भैरवनाथ परात्पर जी के ठीक पीछे खड़े थे।

परात्पर जी ने हाथ उठाकर सबको शांत होने का संकेत दिया। खामोशी छा गई। वह बोले, "हम यहाँ शक्ति देवी की प्रेरणा से एकत्र हुए हैं। देवी की शक्ति का उदय उसके भक्तों में फिर से प्राचीन काल जैसा ही हो जाए, ऐसा सब चाहते हैं। अनुशासन के बिना शक्ति का उदय असम्भव है। अनुशासन के ही अभाव में शाक्तों को पतन की खाई में गिरना पड़ा था। देवी का आदेश है कि इसके पुनरावर्तन से बचा जाए। परिस्थितियों को ध्यान में रखकर, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सुनन्द के दंड को ज्यों-का-त्यों रखा जाए। यह दंड अलखआनन्द के हाथों दिया जाए।"

आगे कुछ कहा जा सकता, इससे पहले ही सबने माँ शक्ति और परात्पर लकुलेश जी के जय-जयकार से वातावरण गुंजा दिया। कोलाहल शांत होने पर परात्पर जी ने मेरी ओर देखते हुए कहा, "हमारे अतिथि को, सुनन्द के निकट ही खड़े रहकर, उसे दंडित होते देखना होगा। यदि अतिथि महोदय सोचते हैं कि उनसे नहीं देखा जाएगा, तो वह इस शिविर से विदा ले सकते हैं।"

इस निर्णय का भी अघोरियों ने बड़े उत्साह से स्वागत किया। हो-हो-हो के चीत्कार वातावरण में गूँज उठे। मुझे चिढ़ाने के लिए अघोरियों ने तरह-तरह के डरावने इशारे किए। मैं खम्भे का सहारा लेकर खड़ा रह गया था। अंगूठे से मैं जमीन खोद रहा था। हताशा के कारण मेरी आँखें डबडबाने लगी थीं। क्रोध ने पूरे शरीर को थरथरा दिया था। आघात से सिर चकरा रहा था।

वितथनाथ नजदीक आते हुए बोले, "देखने ही आए हैं न ? देखे बिना न जाइएगा। आप कायर तो हैं नहीं। यह अनुभव भी लीजिए।"

अपने कमरे में जाकर मैं फर्श पर गिर पड़ा। वितथनाथ के ही शब्द कानों में लगातार गूँजते रहे।

भयानक सपनों ने मेरी नींद को कुचलना शुरू किया। बार-बार जगजीत दिखाई पड़ता, जिसके दोनों हाथ अचानक कटकर गिर जाते और जीभ बाहर निकल आती। अचानक जगजीत के स्थान पर मैं अपने ही चेहरे को देखने लगता। सहसा महसूस होता, एक विशाल चिता सजी है। मैं चिता के बीचोंबीच खड़ा हूँ। चारों ओर अघोरी नाच रहे हैं। उनके हाथों में जलती मशालें हैं। अचानक वे उन मशालों को चिता में घुसा देते हैं। चिता धू-धू जलने लगती है......घबराकर मैं जाग गया। पसीने से तरबतर था।

तैंतीस

चौगान में वध



मन की अशांति दूर करने के लिए सिवा योगमुद्रा में बैठने के मेरे पास दूसरा चारा न था। आधे घण्टे के योगासन के बाद कुछ शांति मिली। कुएँ पर जाकर मैंने हाथ-मुँह धोए। किसी ने मजाक भी किया, "क्यों ? जाने की तैयारी ?" जवाब में मैं केवल खामोशी से मुस्करा ही सकता था।

कमरे में पहुँच कर खिचड़ी बना रहा था कि निकुम्भ आ पहुँचा। मुझे स्वस्थ देखकर उसे अच्छा लगा। बोला, "अदिति जी ने कहा है कि आप रुकने वाले हैं, यह सुनकर परात्पर जी को भी प्रसन्नता हुई है।"

"न रुकने में पलायनवादिता होती।" मैंने फीकी हँसी के साथ कहा। फिर पूछा, "अलखआनंन्द जी पर ऐसे दंड की क्या प्रतिक्रिया हुई ?"

"उन्हें आश्चर्य नहीं है। ऐसी घटनाएँ अघोरियों के लिए आश्चर्यजनक होती भी नहीं। हाथ, पैर या जीभ काट डालना, मार्मिक अंगों में सूजा डालना—ये सब तो हमारे समाज की मामूली सजाएँ हैं।"

"लेकिन उस युवक अघोरी की जिन्दगी बर्बाद हो जाएगी।"

"उसकी युवावस्था पर ही तरस खाकर बहुत कम सजा दी गई है। कई अघोरियों ने महसूस किया है कि इतनी कम सजा भी नहीं देनी चाहिए।" निकुम्भ ने इस प्रकार कहा, मानो चर्चा के इस मुद्दे को उसने हमेशा के लिए खत्म कर दिया हो।

दोपहर को, भैंसे की बलिदान-विधि समाप्त होने के बाद मुझे चौगान के बीचोंबीच ले जाया गया। मन कठोर कर मैं खड़ा हो गया। यज्ञ-वेदी से कुछ दूर, रोमन लिपि के 'वाय' अक्षर जैसी दो बड़ी डालें जमीन में गाड़ी गई थीं। उन पर एक मोटा-सा लक्कड़ रख दिया गया था। आज लगभग सारे अघोरी वहाँ जमा हुए थे। बरामदे में खड़ी होकर कुछ स्त्रियाँ भी सब देख रही थीं।

सुनंद आता दिखाई पड़ा। उसके अलग-बगल एक-एक अघोरी चल रहा था। जैसा कि निकुम्भ मुझे बता ही चुका था, सुनंद ने अपना दंड, माँ चामुंडा की इच्छा और आदेश समझकर, स्वीकार कर लिया था। वह तो अपनी जीभ काटकर स्वयं ही दे देने को प्रस्तुत था। किन्तु दंड बाबा अलखआनंद के हाथों दिये जाने का विधान होने के कारण वह रुक गया था। तलवार पर अपनी दोनों कलाइयाँ स्वयं ही पटक कर काट देने की इच्छा भी उसे कम नहीं थी किन्तु परात्पर जी का आदेश कुछ और था।

दण्डित होने से पहले सोमरस पीने की अनुमति सुनंद को दी गई, किन्तु उसने इन्कार कर दिया। उसके इन्कार से मुझे आश्चर्य हुआ। आघात भी लगा। मैं और निकुम्भआनंद उसके निकट ही खड़े थे। सुनंद के चहरे पर जो दृढ़ता थी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। स्वयं को अपराधी स्वीकार कर लेने के बावजूद उसके सुंदर चेहरे पर कोई अपराध-भावना नहीं थी। जब उससे कहा गया कि अपनी दोनों कलाइयाँ वह उस लक्कड़ पर रख दे, तब वह विनम्रता से बोला, "परात्पर जी ! यदि आपकी अनुमति हो, तो मैं अंतिम बार हाथ जोड़ कर माँ चामुंडा की आराधना करना चाहता हूँ।"

परात्पर जी ने अनुमति दे दी।

जिस भारी खड्ग से भैंसे का बलिदान होता था, उसी खड्ग को उठाए हुए बाबा अलखआनंद चुपचाप खड़े थे। कई बार ऐसा लगा, जैसे वह मेरी ओर देख रहे हैं। किन्तु नहीं। वह किसी की भी ओर नहीं देख रहे थे। उनके चेहरे से ही प्रकट था कि अपने विचारों को उन्होंने कितना उन्मुक्त छोड़ दिया है........

अत्यंत गंभीर और आर्द्र स्वर में सुनंद ने देवी कवच का गायन शुरू किया। उसका स्वर मधुर और बुलंद था। उसमें भय या आशंका की कोई थरथराहट नहीं थी। देखते-देखते सभी अघोरियों ने सुनंद के स्वर से स्वर मिला कर देवी कवच गाना शुरू कर दिया। प्रसंग की गंभीरता का भार बढ़ने लगा। वातावरण मुझसे सहा नहीं जा रहा था।

सुनंद अत्यंत स्पष्ट उच्चारण के साथ गा रहा था। उसने माता चामुंडा के नौ रूपों का वर्णन किया। उसके प्रत्येक वाहन का भी वर्णन किया। फिर क्रम आया माता के सोलह शृंगार का। शृंगार वर्णन के बाद सुनंद, माता चामुंडा के शंख, चक्र, गदा, परशु,

त्रिशूल, शक्ति, हल, मूसल इत्यादि हथियारों का वर्णन करने लगा। फिर उसने सर्व दिशाओं की देवी के रूप में चामुंडा का आह्वान किया। अंग-अंग और रोम-रोम की रक्षा के लिए सुनंद माता चामुंडा को पुकार उठा।

मैंने सिहरकर आँखें मूँद लीं। कुछ पलों में ही जिसका वीभत्स अंग-भंग होने वाला था, वही सुनंद अपने अंग-अंग और रोम-रोम की रक्षा के लिए माँ चामुंडा को पुकार रहा था।

देवी कवच की महिमा गाने के बाद सुनंद ने जब देवी सूक्त का पाठ प्रारम्भ किया, तब सभी अघोरी उसके साथ-साथ गा रहे थे.......नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः. ....

सूर्य की भयंकर किरणें सिर पर सीधा आक्रमण कर रही थीं। मैं पसीने में डूब चुका था। मुग्ध कर देने वाले मंत्र-पाठ में भी वह शक्ति नहीं थी, जिससे मैं भूल सकता कि थोड़ी ही देर में वहाँ अंग-भंग का कितना वीभत्स कांड होने वाला था। मेरी अकुलाहट तन-मन को सुन्न कर रही थी। अकुलाहट भूलने के लिए मैं भी अघोरियों के स्वर में स्वर मिला कर देवी की स्तुति करने लगा—या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमांयेति शब्दिता:......नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः.....

देवी सूक्त पूरा होते ही सुनंद ने अत्यन्त दर्द भरे स्वर में क्षमापन स्तोत्र शुरू कर दिया।

बाबा अलखआनंद भी सबके साथ मिल कर देवी स्तुति कर रहे थे। उनकी आवाज को मैं सबके स्वरों से ऊपर सुन रहा था। वह आवाज इतनी गहन और गम्भीर थी, मानो ब्रह्मांड की अतल गहराइयों में से उठ-उठ कर बाबा के होठों से फूट रही हो। बाबा मेरी बगल में ही खड़े थे—खड्ग थामकर। मैं रह-रह कर उनकी ओर देख लेता। वह अभी भी किसी की ओर नहीं देख रहे थे। मानो उन्होंने अपनी अलग की दुनियाँ बसा ली थी।

स्तोत्र पूरा होते ही परात्पर जी ने इशारा किया। बाबा अलखआनंद ने खड्ग उठाया। सुनंद ने अपनें दोनों हाथ लक्कड़ पर रख दिए। उसकी मुट्ठियाँ भिंची हुई थीं। सुनंद ने पलकें बन्द कर लीं। मैंने खड्ग की ओर देखा। धूप में उसकी धार बिजली की रेखा की तरह चमक रही थी। मेरी आँखें बन्द हो जाने लगीं। अपनी समस्त चेतना को मैंने पलकों के नीचे एकत्र कर लिया। मैं पलकों को गिरने नहीं देना चाहता था।

बाबा अलखआनंद ने हाथ घुमा कर खड्ग चला दिया।

सुनंद की कलाइयों पर गिरने के बजाए वह खड्ग स्वयं बाबा की गर्दन पर गिरा।

बाबा अलखआनंद के मुँह से अंतिम चीत्कार सुनाई दिया, "माँ....." अगले ही क्षण उनका सिर धड़ से जुदा होकर यज्ञ-कुंड की ओर लुढ़कने लगा। उनके गले की रुद्राक्ष की माला टूट गई। रुद्राक्ष के मनके दूर-दूर तक बिखर गए। उनका सिरकटा धड़

ज्यों-का त्यों खड़ा था। रक्त का फव्वारा छोड़ता वह धड़ प्रचण्ड और विकराल लग रहा था। सहसा वह तिरछा होने लगा। कुछ अघोरियों ने दौड़ कर उस भीषण शरीर को थाम लिया।

एकदम सन्नाटा छा गया।

मैंने परात्पर जी की ओर देखा। वह काँप रहे थे।

सुनंद आँखें मूँद कर स्थिर खड़ा था। सन्नाटे से चौंक कर उसने आँखें खोलीं। बाबा अलखआनंद के सिरकटे धड़ को देखते ही उसके मुँह से भयानक चीत्कार निकल गया।

तभी एक अट्टहास गूँज उठा। विकट अट्टहास।

सब की नजरें घूम गईं। यज्ञवेदी के पास बाबा वितथनाथ खड़े थे। अट्टहास वही कर रहे थे। स्वयं को दो सौ बरस का बताने वाले, मृत्युंजय मंत्र को सिद्ध कर चुके, बाबा वितथनाथ को, डरावनी मृत्यु का वह दृश्य देखकर, उतनी हँसी क्यों आ रही थी ? क्या वह अपने-आप पर व्यंग्य कर रहे थे ? या अघोरियों की पूरी ज़मात पर ? किसी में साहस नहीं था कि वितथनाथ के पास जा कर कहे, "यह अट्टहास का अवसर नहीं है।

शिविर में मेरी वह तीसरी रात थी। जमीन पर बेसुध-सा पड़ा मैं छत को घूर रहा था। बार-बार मुझे उबकाइयाँ आ रही थीं। आँखें मुँदते ही बाबा अलखआनंद का कटा सिर दिखाई देता। कटकर उछलता और लुढ़कता सिर। बाबा की आँखें किस हद तक फटं पड़ी थीं...सिर कटते ही मेरे वस्त्रों पर रक्त के छींटे उड़े थे.............

चौंतीस

निर्मलआनन्द की व्यथा



रात कितनी बीत चुकी थी, पता नहीं। सन्नाटा सिर्फ चारों तरफ नहीं था। सन्नाटा मेरे अन्दर भी था। मैं सन्नाटे का ही एक हिस्सा बना, चित पड़ा हुआ था। मेरे कमरे में सिवा मेरे कोई और नहीं था। दरअसल, मेरे कमरे में स्वयं मैं भी नहीं था। कहाँ था मैं ? न जाने किस शून्य में शून्य बनकर समा जाना चाहता था मैं........

"सोमपुरा जी !" किसी ने हौले से पुकारा, नजदीक से। मैंने नजर उठाई। सामने निकुम्भआनन्द खड़ा था। हम दोनों में से कोई भी मुस्करा न सका। वह संजीदगी से बोला, "चलिए, मेरे साथ। अकेले में तो आप और भी अकुला जायेंगे।"

कल रात जिस अलाव के पास मैं और निकुम्भ बैठे थे, वहीं हम आज भी जा बैठे। चौगान में आज भी मैथुन-नृत्य पूरे जोर के साथ हो रहा था। उस नृत्य को देखकर किसी को अनुमान भी न हो सकता था कि इसी स्थान पर, आज की ही तारीख में, भरी दोपहरी में, कितना भीषण कांड हो चुका है। मेरे मन में जो विषाद था, उसका भी अनुमान किसी को कैसे लग सकता था ? क्या ऐसा ही विषाद निकुम्भ के भी मन में है ? मैंने उसकी ओर देखा।

वह कहने लगा, "अगर बाबा भैरवनाथ ने मामला न संभाला होता, तो दोपहर को भयंकर कत्लेआम होने जा रहा था। उन्होंने वामदेव और परात्पर जी को भी किसी प्रकार समझाकर शांत किया। अदिति जी ने भी सुनंद को मुक्ति दिलवाने में महत्त्व का काम किया।"

"तो क्या सुनन्द....." मैं वाक्य पूरा न कर सका।

"वह मुक्त तो है, किन्तु बहिष्कृत है। इस साधना में भाग लेने का उसका अधिकार छीन लिया गया है।"

"उससे क्या फर्क पड़ेगा ?" मैंने पूछा।

"फर्क अगर मानें, तो पड़ता है। न मानें, तो नहीं पड़ता।" निकुम्भ बोला, "किसी भी अघोरी के लिए साधना-शिविर से निष्कासित होना घोर अपमानजनक होता है।"

"लेकिन........सुनन्द को अपमानित करने की आवश्यकता ही क्या थी ? अलखआनन्द जी के बलिदान के बाद क्या यह उचित न होता कि सुनन्द को किसी प्रकार का दंड न दिया जाता ?"

"हाँ, उचित शायद यही होता, किन्तु इससे अघोरियों की एक बहुत बड़ी टोली नांराज हो जाती। बाबा भैरवनाथ ने सभी अघोरियों को संतुष्ट करने का प्रयास किया। दूसरा कोई उपाय नहीं था।"

मुझे भी निकुम्भ की बात अनुचित न लगी। शिविर की बागडोर भैरवनाथ जी और अदिति जी के हाथ में चली जाने के बाद, अब, शांति-स्थापना की सम्भावना अधिकतम है, ऐसा मैंने भी अनुभव किया।

मैं और निकुम्भ फिर से खामोश बैठे रह गए थे। खामोशी निकुम्भ ने तोड़ी, "एक और आश्चर्यजनक घटना घटी है।"

"क्या ?" मेरी आँखें निकुम्भ पर ठहर गईं।

"जिसके आदेश पर आपका हाथ दीवार पर चिपक गया था, वह निर्मलआनन्द आपको अवश्य याद होगा।"

"हाँ। क्यों ?"

"वह अपनी ही इच्छा से इस साधना-शिविर से अलग हो गया है।"

"क्यों ?" मैं चौंका।

"अलखआनन्द निर्मल के गुरु थे। उनके बलिदान से निर्मल को असह्य आघात पहुँचा है।"

"ओह !" मैं बुदबुदाया। निर्मलआनन्द का चेहरा मेरी आँखों के सामने घूम गया।

"निर्मल आपसे मिलने को इच्छुक है।" निकुम्भ ने कहा।

"क्यों ?" मैं दुबारा चौंका।

निकुम्भ कुछ कहता, इससे पहले ही, मानो मेरे प्रश्न के आह्वान पर, निर्मलआनन्द वहीं प्रकट हो गया। निकुम्भ के संकेत पर वह हमारे पास आ बैठा। मैंने निर्मल का, निर्मल ने मेरा अभिवादन किया।

मैंने दिलासे के स्वर में कहा, "अलखआनन्द जी के आकस्मिक बलिदान से आपको जो आघात लगा होगा, उसकी कल्पना मैं कर सकता हूँ। मेरा और उनका परिचय केवल दो या तीन दिनों का था। इसके बावजूद मुझ पर उनका ऐसा प्रभाव रहा कि.....उनके बलिदान के भयंकर आघात को मैं भी सह नहीं पा रहा हूँ। जब मेरा यह हाल है, तो.....आप तो उनके प्रिय शिष्य थे। आपकी मनोदशा तो ......"

मैंने वाक्य अधूरा छोड़ दिया, क्योंकि निर्मलआनन्द मेरी ओर अत्यंत करुण दृष्टि से देखने लगा था। उसकी आँखों की वेदना मेरे लिए असह्य थी।

कुछ पल बाद, गला खखारकर, निर्मलआनन्द ने कहा, "वह मेरे गुरु ही नहीं थे। वह मेरे पिता समान भी थे। उन्हें खोकर मैंने सब कुछ खो दिया है।"

"मैं आपके दर्द को समझ सकता हूँ, निर्मल जी।"

"मेरी एक जिज्ञासा है। आप शांत करेंगे ?"

"अपने ज्ञान और विवेक के अनुसार मैं अवश्य आपके प्रश्न का उत्तर दूँगा।" मैंने कहा।

"मेरे गुरुदेव में अचानक ऐसा परिवर्तन कैसे आ गया ? आपने उन पर ऐसा भी क्या जादू किया कि.....वह आत्म बलिदान दे बैठे ?" निर्मल मुझे घूर रहा था। मैं समझ न पाया कि उसके शब्दों का वास्तविक अर्थ क्या है ? क्या वह मुझे अपराधी सिद्ध करना चाहता है ? या सचमुच वह केवल कौतूहल से पूछ रहा है ? उसका मनोभाव चाहे जो हो, मैंने वही जवाब दिया, जो मैं दे सकता था। मैंने कहा, "आपके गुरुदेव एक सिद्ध पुरुष थे। मेरा जादू उन पर नहीं चल सकता था। अव्वल तो मैंने उन पर कोई जादू चलाया ही नहीं और यदि चलाना चाहता भी, तो चल नहीं सकता था।"

"फिर भी....आपके साथ चर्चा-विचारणा के ही बीच......कुछ ऐसी बात अवश्य उभरी होगी कि अपना जीवन उन्हें व्यर्थ लगने लगा होगा......" निर्मलआनन्द ने कहा, "उन्हें इस हद तक हचमचा देने वाली वह बात क्या थी, मैं जानना चाहता हूँ।"

"मित्र !" मैंने कहा, "उन्होंने अपने विचार मुझे बताए थे। मैंने भी अपने विचार उन्हें बताए थे। विचारों का आदान-प्रदान ही हमारे बीच हुआ था। उसी आदान-प्रदान में से उन्होंने कुछ ऐसा ग्रहण कर लिया कि.......लेकिन मुझे सपने में भी गुमान नहीं था कि वह आत्म-बलिदान की हद तक सोच चुके हैं। मेरे अनुसार तो........हुआ मात्र इतना कि उनका अहंकार अचानक ही दूर हुआ और उन्हें अपनी सारी सिद्धियाँ अचानक व्यर्थ लगने लगीं। अहंकार को मैं मानव-स्वभाव की घोर विचित्रता मानता हूँ। कभी तो यह सारी उम्र की कोशिश के बावजूद दूर नहीं होता और कभी क्षण-मात्र में दूर हो जाता है। अनेक ज्ञानियों के उदाहरण हमारे सामने हैं। वे सारी उम्र ज्ञान की खोज में भटकते रहे। ज्ञान न मिला। फिर, अचानक, एक चौंध-सी हुई और ज्ञान सामने आकर चमचमाने लगा। कुछ ऐसी ही चौंध अलखआनन्द जी के सामने हुई, यह निश्चित है। उनका अहंकार एक चौंध के साथ हट गया और उन्होंने ज्ञान पा लिया। उस चौंध से अवश्य वह स्तब्ध रह गए थे। इसी स्तब्धता में उन्होंने आत्म-वध जैसा कर्म कर डाला।"

निर्मलआनन्द ने अकुला कर पूछा, "एक चौंध के रूप में......आपने उन्हें आखिर कौन-सा ज्ञान दिया था ?"

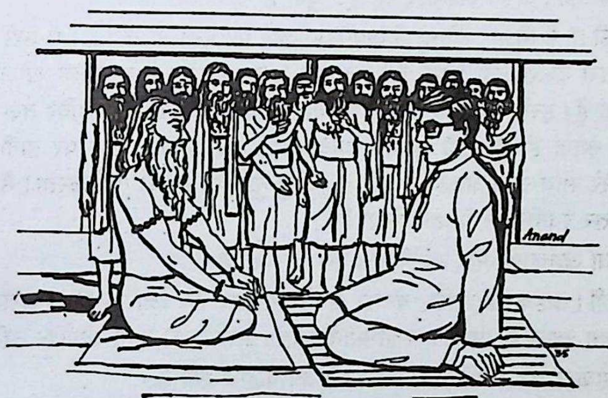
"मैंने उन्हें कोई नया ज्ञान नहीं दिया। ज्ञान तो उन्हीं के अन्दर पहले से मौजूद था, भले ही सुषुप्त रूप में। मुझसे बातचीत के दौरान वही सुषुप्त ज्ञान अचानक जागृत हुआ। मैं तो केवल एक बहाना हूँ, निर्मल जी ! यदि मैं न मिलता, तो उन्हें निश्चित रूप से कोई और मिल जाता। पहले ही से उनके अन्दर एक ज्वालामुखी पैदा हो चुका था। अहंकार के नीचे ज्वालामुखी दबा हुआ अवश्य था, लेकिन वह था पहले से। ज्ञान की चौंध पाकर अहंकार ज्यों ही हटा, त्यों ही ज्वालामुखी फट पड़ा।"

"आप शब्दजाल तैयार कर रहे हैं।" निर्मलआनन्द ने ठंडे स्वर में कहा, "आप बचने के प्रयास में हैं। मैं जो पूछ रहा हूँ, उसका उत्तर आप दे ही नहीं रहे। शायद आपको संदेह है कि मैं आपको दोषी मानता हूँ। इस संदेह को कृपया मन से निकाल दें। होना था, सो हो चुका। मैं केवल जिज्ञासावश आपके पास आया हूँ, किसी विद्वेष के वशीभूत होकर नहीं। मैं उस ज्ञान के बारे में पूछ रहा हूँ, जो अलखआनन्द जी को अचानक मिला। वह ज्ञान उनके भीतर पहले से सुषुप्त पड़ा हुआ था या उन्हें बाहर से प्राप्त हुआ—मेरा प्रश्न यह नहीं है। मेरा प्रश्न तो यह है कि वह ज्ञान आखिर क्या था, जो आपके बहाने, या कहें कि आपके माध्यम से, उन्हें अचानक मिला। इसी प्रश्न का उत्तर आप टाल रहे हैं।"

मैं बोला, "जो ज्ञान उन्हें अचानक मिला, वह यही था कि उनकी उतनी बड़ी सिद्धियों की भी कोई सामाजिक उपयोगिता नहीं थी। वे सिद्धियाँ उन्होंने अपने, सिर्फ अपने अहं की संतुष्टि के लिए एकत्र की थीं। उन सिद्धियों से वह मानव-कल्याण का, जन-सेवा का कोई भी कार्य नहीं कर सकते थे। उड़ते पंछियों को केवल अपने दृष्टिपात से ही मार गिराना, उनकी लाशों का ढेर लगा देना; इसमें भला कौन-सा मानव-कल्याण छिपा है, कौन-सी जन-सेवा ? हाँ, इसमें अहंकार की तुष्टि अवश्य छिपी है। इसी बात को उन्होंने पहचाना। सम्पूर्ण जीवन में उन्होंने, भले ही अनजाने में, केवल अपने अहंकार की ही तुष्टि की थी। दूसरा कुछ नहीं किया था। व्याकुल होकर उन्होंने अपना जीवन स्वयं ही ले लिया।"

पैंतीस

विकट वितथनाथ



मैं जानता था, मेरे मुँह से निकला हुआ एक भी गलत शब्द मुझ पर जान का खतरा और बढ़ा देगा। अलखआनन्द की आत्म-हत्या का उत्प्रेरक मैं ही था, ऐसी कानाफूसियों को भला मैं कैसे रोक सकता था। इसीलिए निर्मलआनन्द को जवाब देते समय मैं अपना एक-एक शब्द तौलकर सामने रख रहा था।

"निर्मल जी !" मैंने कहा, "शायद आपने चैतन्यानन्द जी का नाम सुना हो। मैं उन्हीं का शिष्य हूँ।"

"हाँ......वह बहुत प्रसिद्ध हैं। उनके बारे में कई कथाएँ सुनी हैं।" निर्मल ने स्वीकार किया।

"अन्तिम दिनों में मैं उनके साथ था।" मैंने कहा, "अहंकार से छूटने की समस्या से वह भी तड़प रहे थे। वह इतने महान थे कि अपनी तड़पन को उन्होंने अपने ही मुँह से स्वीकार कर लिया था। बड़े-बड़े ज्ञानी-ध्यानी भी अपने अहंकार को स्वयं स्वीकार नहीं कर पाते। जब स्वीकार ही नहीं कर पाते, फिर अहंकार से छूटें कैसे ? और जब अहंकार से छूटें ही नहीं, अपने-आप से ऊपर ही न उठें, तब सच्चा ज्ञान कैसे प्राप्त

करें ? इस विडम्बनापूर्ण स्थिति से चैतन्यानन्द जी ने मुझे परिचित कराया था। जिस तरह अलखआनन्द जी, अचानक ही, जीने की इच्छा छोड़ बैठे, उसी तरह चैतन्यानन्द जी के मन में भी जीने की इच्छा शेष नहीं रही थी। जीवन में उन्होंने भी अनेक चमत्कारिक सिद्धियाँ एकत्र की थीं, लेकिन यही सवाल उन्होंने पूछा, 'इन सिद्धियों का सम्बन्ध मानव-कल्याण के साथ क्यों नहीं जुड़ता ?' जीवन भर की सिद्धियाँ उन्हें व्यर्थ लगने लगीं। उन्होंने जीवन का ही त्याग कर दिया। ठीक यही अलखआनन्द जी ने किया।"

"क्या आप ऐसे प्राण-त्याग के साथ सहमत हैं ?" निर्मल का सवाल था।"

"नहीं।" मैंने कहा, "किन्तु ऐसी घटनाओं को हम नकार भी तो नहीं सकते।"

"क्या आप अपने अहंकार से छूट चुके हैं ?"

"नहीं।" मैं बोला, "किन्तु मैं अपने अहंकार पर मुग्ध भी नहीं हूँ। मैं उसे पहचानता हूँ। मैंने उसे दोस्त बना लिया है। यह एक प्रयोग ही है। मैं सत्य की खोज में हमेशा लगा रहता हूँ। इसी खोज के फेर में मैं आप लोगों के इस साधना-शिविर तक पहुँचा हूँ। सत्य की खोज हो ही नहीं सकती, यदि व्यक्ति का अहंकार उस पर हावी हो। मेरा अहंकार मेरे साथ-साथ अवश्य चलता है, किन्तु मुझ पर सवारी नहीं करता। मैंने अहंकार का रूपान्तर स्वाभिमान में कर लिया है।"

"क्या अहंकारी और स्वाभिमान एक ही नहीं हैं ?"

"नहीं। अहंकारी व्यक्ति, केवल अपने अहंकार की रक्षा के लिए, असत्य को भी सत्य मानता रहता है, जब कि स्वाभिमानी व्यक्ति असत्य को कभी स्वीकार नहीं करता।"

"अहंकार को स्वाभिमान में बदलने की पद्धति क्या है ?"

"व्यक्ति जब केवल अपने बारे में सोचना रोककर, साथियों के बारे में सोचना शुरू करता है, तब अहंकार का स्वाभिमान में रूपांतर प्रारम्भ हो जाता है। व्यक्ति जब केवल अपने साथियों के बारे में न सोचकर सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के बारे में सोचना सीख जाता है, तब उसे पूर्ण स्वाभिमान प्राप्त हो जाता है।"

निर्मलआनन्द की नजरें ऐसे झुकी हुई थीं, जैसे वह मेरी बातों को पचाने की कोशिश में हो। निकुम्भ भी सोच में डूबा हुआ था। जंगल की गहराई में सियार रो रहे थे। रात बीती जा रही थी.......

चौथे दिन की सुबह, जंगल से लौटते समय, बाबा भैरवनाथ सामने मिल गए। बोले "आज का पूरा दिन आप वितथनाथ के साथ बिताइएगा।"

मुझे भला और क्या चाहिए था ? अलखआनन्द के बलिदान के समय अट्टहास करते बाबा वितथनाथ का चेहरा मेरी आँखों के सामने घूम गया। उस रहस्यमय वृद्ध अघोरी के निकट आने का कोई अच्छा अवसर मुझे अब तक नहीं मिला था। उन्होंने जो खेचरी विद्या सिद्ध की थी, उसके बारे में जानने के लिए मैं बहुत उत्सुक था।

एक लम्बी नींद और भोजन के बाद मैंने बाबा वितथनाथ को खोज निकाला। उस वक्त वह सिद्धासन पर विराजमान होकर, अपनी ठुड्डी को छाती पर टिका कर, अधखुली आँखों से योग साध रहे थे। कुछ देर बाद उन्होंने पलकें उठाईं। मुझे देखते ही वह कटाक्ष से बोले, "यह सिद्धासन है। केवल वही व्यक्ति सिद्धासन लगा सकता है, जिसमें सिद्ध के लक्षण हों।"

"जी........ " मैं बुदबुदाया।

उन्होंने जारी रखा, "उस दिन तुम कह रहे थे न कि कुण्डलिनी जगाने से परम आनन्द नहीं मिलता, बल्कि परम आनन्द मिलने पर कुण्डलिनी अपने-आप जाग जाती है ?"

"जी हाँ ! ये शब्द मेरे ही थे।" मैंने स्वीकार किया।

उनकी आँखें चमकने लगीं, "तब तो..........जो सिद्ध पुरुष है, वह सिद्धासन नहीं लगाता, बल्कि जो सिद्धासन लगा सकता है, वह सिद्ध पुरुष है।"

मैंने उत्तर दिया, "जिसके पास सिद्धियाँ हैं, वह सिद्ध है। जिसके पास मात्र आसन है, वह सिद्ध नहीं है।"

"क्या तुम सिद्ध पुरुष हो ?"

"नहीं।"

"सिद्ध न होने के बावजूद क्या तुम सिद्धासन लगा सकते हो ?" उन्होंने हँसते-हँसते पूछा।

मैं उलझन में पड़ गया। सिद्धासन का प्रयोग मैंने पहले कभी नहीं किया था। एकाएक हाँ कैसे कहता ? किन्तु 'न' कहने पर निश्चय ही मेरा मजाक उड़ाया जाता। मैंने कहा, "मैंने कुछ योगासन किए हैं, किन्तु सिद्धासन कभी नहीं। मेरे अनुसार तो ये आसन केवल अभ्यास के सूचक हैं। सिद्धियों के साथ इनका सम्बन्ध नहीं है। सिद्ध पुरुष न होते हुए भी, यदि मैं अभ्यास करूँ, तो सिद्धासन लगाने में अवश्य सफल हो सकता हूँ। यदि आप कहें, तो मैं प्रयास कर देखूँ........किन्तु मैं वचनबद्ध होना नहीं चाहूँगा।"

"जिसने अपनी कुण्डलिनी जगा रखी हो, वही सिद्ध पुरुष है। जो सिद्ध पुरुष है, वही सिद्धासन लगा सकता है। जो प्रत्येक परिस्थिति में आनन्दित रहता हो, जिसने जीवन और अस्तित्व का रहस्य पा लिया हो, जिसने सर्वशक्तिमान से साक्षात्कार कर लिया हो, केवल उसी की कुण्डलिनी जाग सकती है।" वितथनाथ बोले।

मैंने कहा, "मैं प्रत्येक परिस्थिति में आनन्दित नहीं रह पाता। उदासी और आतंक जैसे मनोभाव मुझे अक्सर घेर लेते हैं। मैं जीवन और अस्तित्व का रहस्य पाने के प्रयास में तो हूँ, किन्तु सचमुच पा चुका हूँ, ऐसा दावा नहीं कर सकता। सर्वशक्तिमान से साक्षात्कार का कोई अनुभव मुझे नहीं है, भले ही मैं स्वयं को उस सर्वशक्तिमान का ही एक अंश मानता हूँ। सार यही कि मेरी कुण्डलिनी जागी हुई नहीं है। इतने विरोधाभासों के बावजूद, यदि आपका आदेश, अनुमति और निर्देश मिले, तो मैं सिद्धासन लगाने का प्रयास तो अवश्य करना चाहूँगा।"

"सुन्दर !" वितथनाथ अब भी व्यंग्य से बोल रहे थे, "तुम्हारी शब्दशक्ति सचमुच प्रभावित करती है। शरीर को बाएँ पैर की एड़ी पर टिका कर, बाएँ पंजे पर अपना पूरा भार संतुलित करो। फिर दाहिने पैर की एड़ी नाभि के नीचे रखो और पंजा बाएँ पैर के ऊपर आने दो। शरीर तानकर रखो। चित्त भौंहों के बीच में स्थिर करो। मैंने किस प्रकार सिद्धासन लगाया है, ध्यान से देखो। उसी प्रकार लगाओ।"

तब तक वहाँ अघोरियों की टोली तमाशा देखने के लिए जमा हो चुकी थी। सब अघोरी मेरे मोटे शरीर का मजाक उड़ाते हुए कहने लगे कि ज्यों ही मैं सिद्धासन का प्रयास करूँगा, त्यों ही लोटे की तरह लुढ़क जाऊँगा।

मैंने वितथनाथ से कहा, "अभ्यासी न होने के कारण मेरा पैर कठोर भूमि पर नहीं जम सकेगा। यदि आप मेरे लिए दर्भ का आसन मँगवा सकें तो बहुत आभार मानूँगा।"

उन्होंने तुरन्त दर्भ का आसन मँगवा दिया।

मैंने बाएँ पैर के पंजे पर धीरे-धीरे अपने शरीर को उठाना शुरू किया। शरीर का पूरा भार मैंने बाएँ पैर की एड़ी पर टिका दिया। योगासनों का अच्छा अभ्यास होने के ही कारण मैं ऐसा कर सका। दोनों हाथों की सहायता से मैंने दाहिने पैर को पकड़कर उठाया। दाहिनी एड़ी नाभि के नीचे लाकर, दाहिने पंजे को मैं बाएँ पैर के ऊपर ले जाने में सफल हो गया। साँस खींचकर मैंने सीना तान लिया। स्वयं मुझे आश्चर्य हो रहा था कि सिद्धासन लगाने में मुझे सफलता कैसे मिल गई। कुछ पल सिद्धासन में बैठने के बाद मैंने बाबा वितथनाथ से आसन छोड़ने की अनुमति माँगी। सब अघोरी मुझे विस्मय से देख रहे थे। वितथनाथ की आँखों में भी मेरे लिए एक मान पैदा हो गया था। उनकी अनुमति मिलने पर मैंने आसन छोड़ दिया।

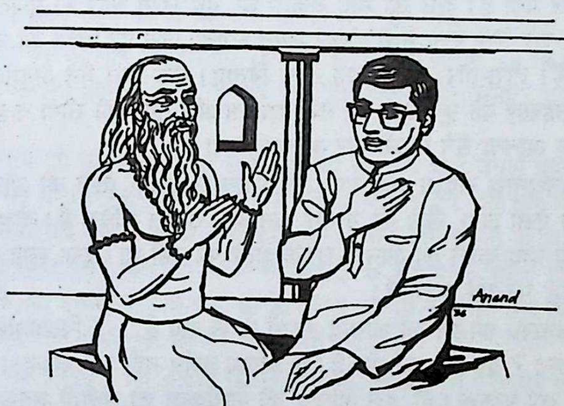
मैंने कहा, "आप ही के निर्देश के अनुसार मैं यह आसन कर सका हूँ। अपनी सफलता पर मुझे आश्चर्य है। मैं आपका आभारी हूँ, किन्तु सिद्धासन मेरे वास्तविक कौतूहल का विषय नहीं है। आपसे तो मैं खेचरी विद्या का रहस्य जानना चाहता हूँ। मेरा वास्तविक कौतूहल वही है। काल को भी हराकर किस प्रकार आप महाआयुष्यमान बने हुए हैं ?"

वितथनाथ हँसकर बोले, "सचमुच तुम्हारी जिज्ञासा वृत्ति अत्यन्त तीव्र है। रहस्य दूसरों के सामने खोलने के लिए नहीं होते, किन्तु तुम सुपात्र हो। तुम्हें अवश्य मैं खेचरी का परिचय दूँगा।"

उन्होंने सभी अघोरियों को कमरे से निकाल दिया। फिर वह मुझे खिड़की के पास ले गए। वहाँ माता चामुंडा का यंत्र अंकित था। उन्होंने उस यंत्र को नमस्कार करने का आदेश दिया। मैंने चामुंडा के यंत्र को नमस्कार किया। खिड़की में से रोशनी आ रही थी। वितथनाथ उस रोशनी में खड़े हो गए। उन्होंने मुझे नजदीक बुलाया। उन्होंने अपना मुँह पूरा खोल दिया। हाथ से इशारा किया कि मैं उनके तालू को देखूँ। मैंने झुककर देखा। उनके तालू में एक बड़ा-सा छिद्र था। उन्होंने मेरे दाहिने हाथ की बीच की उंगली पकड़कर उस छिद्र में डाली। पूरी उंगली तालू के अन्दर घुस गई, किन्तु छिद्र के अन्त को मैं न छू सका। मुझे अत्यधिक आश्चर्य हुआ। मैंने उंगली वापस निकाल ली।

छत्तीस

गूंगे का गुड़



बाबा वितथनाथ मुझसे बोले, "तालू को उंगली के नख से खोद-खोद कर मैंने आज्ञाचक्र और सहस्रार को भेद लिया है। यही ब्रह्मरंध्र है। यही खेचरी प्रयोग है। रोग से मेरा मरण नहीं हो सकता। मुझे निद्रा नहीं है, क्षुधा नहीं है, तृष्णा नहीं है। मैं मूर्च्छित नहीं हो सकता। मुझे कोई पीड़ा नहीं होती। मैं इस सर्वसिद्ध को नमस्कार करता हूँ........"

मैं मंत्रमुग्ध सा सुन रहा था।

खेचरी का साक्षात् परिचय पा लेने का ही कारण मेरे लिए एक नया शिकंजा तैयार हो जाएगा, यह मैं उस वक्त नहीं जानता था।

हठयोगी तरह-तरह की पीड़ाओं से अपने शरीर को निष्क्रिय करते हैं, यह सुविदित है। हिमालय की बर्फ में नग्न रहना, कीलों के बिछौने पर सोकर लहूलुहान हो जाना, मार्मिक अंगों में सूजे घोंपना, भूमि में लम्बी अवधि के लिए जिंदा गड़ जाना, हठयोगियों के लिए ये बड़ी सामान्य बातें हैं। भारतीय तत्वज्ञान ने शरीर को हमेशा बंधनकर्ता माना है। आत्मा-रूपी पंछी को जिस शरीर-रूपी पिंजड़े में बंद रहना पड़ता है,

उस शरीर को पीड़ित और निष्क्रिय करने का हरसम्भव उपाय हठयोगी करते हैं। शरीर की निष्क्रियता ही शरीर का बंधन तोड़ती है और आत्मा को मुक्ति प्राप्त होती है, ऐसा माना जाता है।

बाबा वितथनाथ ने भी बरसों-बरसों तक अपने शरीर को पीड़ित किया था। वह योगियों, हठयोगियों और अघोरियों के साथ रहे। स्वयं भी अघोरी तो थे ही। उन्होंने योग द्वारा कुण्डलिनी जागृत की, किन्तु संतुष्ट न हुए। अंततः वह एक हठयोगी के सम्पर्क में आए। हठयोगी ने उन्हें तालू भेदने का तरीका समझाया। तीस-तीस वर्षों की असह्य पीड़ा के बाद बाबा वितथनाथ ने अपना ब्रह्मरन्ध्र सचमुच फोड़ लिया।

"बार-बार निराश हो जाता था।" वह मुझे बता रहे थे, "हर बार नई आशा के साथ तालू खोदना शुरू कर देता। पीड़ा से बेहोश होकर गिर जाता। न जाने कितने दिन बेहोशी में गुजरते। होश में आने पर देखता कि तालू को जितना खोदा था, वह घाव तो वापस भर गया है। कुछ खा नहीं सकता था, दूध जैसी चीज भी मुश्किल से पी सकता था। बार-बार सिर ऐसा भारी होकर घूमने लगता, जैसे पूरे विश्व का बोझ उठाकर चल रहा होऊँ। तीस-तीस बरस इसी तरह बिताए। एक दिन मैंने अनुभव किया कि मेरी उंगली सहस्रार को छूने लगी है। मेरी प्रसन्नता और तृप्ति की सीमा न रही। खेचरी सिद्ध करने का आनन्द मैंने पहली बार अनुभव किया।"

वितथनाथ सहसा रुक गए। मैंने ध्यान से उनके चेहरे की ओर देखा। न जाने क्यों मुझे ऐसा लगा, जैसे वह गम्भीर कम और उदास अधिक हैं। खेचरी सिद्धि के उस प्रसंग को याद करने का आनन्द उनके चेहरे पर नहीं था। ऐसा लगा ही नहीं, जैसे वह इस सिद्धि पर गर्व करते हैं।

"ब्रह्मरंध्र फोड़ने का आनन्द बरसों से ले रहा हूँ...... " वितथनाथ बोले, "कैसा है यह आनन्द ? यह गूंगे का गुड़ है। मैं इसका वर्णन नहीं कर सकता। वर्णन का प्रयास भी नहीं कर सकता। हाँ, इस आनन्द की सार्थकता को चुनौती अवश्य चैतन्यानन्द जी ने दी थी।"

मैं अपने गुरू का नाम सुनकर चौंक गया, "आप चैतन्यानन्द जी से मिल चुके हैं ?"

"हाँ।" वह विद्रूप से मुस्कराए, "बरसों पहले।"

"वह तो मेरे गुरू थे।" मैंने कहा और बेताबी से पूछा, "उनसे क्या बातें हुई ?"

"उन्होंने भी खेचरी सिद्ध कर रखी थी। इस नाते हम दोनों के बीच मैत्री क्षणमात्र में हो गई।" वितथनाथ के इन शब्दों ने मेरा आश्चर्य बढ़ा दिया। "गुरुदेव खेचरी के साधक थे ?" मैंने चकित स्वर में पूछा, "किन्तु उन्होंने कभी मुझसे ब्रह्मरंध्र फोड़ने की चर्चा तो..... "

"उन्होंने ब्रह्मरंध्र फोड़ा भी नहीं था।" वितथनाथ कहने लगे, "उन्होंने खेचरी दूसरी पद्धति से सिद्ध की थी। उन्होंने अपनी जीभ खींच-खींच कर इतनी लम्बी कर डाली थी कि उससे वह अपने मस्तक को छू सकते थे।"

"मैंने उन्हें जीभ से मस्तक छूते तो नहीं देखा था, किन्तु नाक तक जीभ पहुँचाते कई बार देखा था।" मैं तपाक से बोला, "जब भी वह विशेष प्रसन्न होते, अपनी नाक पर जीभ से स्पर्श करते।"

"यह भी खेचरी विद्या ही थी।" वितथनाथ का स्वर, सहसा भावुक होने लगा, चैतन्यानन्द जी ने मुझसे पूछा था, "खेचरी जैसी विद्याओं का अर्थ क्या है ? माना कि यह एक सिद्धि है, लेकिन सिद्धि किसके लिए ? केवल अपने अहंकार की संतुष्टि और वृद्धि के लिए। इस सिद्धि से हम दूसरों को देते क्या हैं ? कुछ भी नहीं।" वितथनाथ ने गहरी साँस ली।

जरा रुककर उन्होंने आगे चलाया, "मैंने उन्हें बताया कि तीस-तीस वर्षों की यातना झेलने के बाद मैंने अपना ब्रह्मरंध्र फोड़ा है।" इस पर वह पूछने लगे, "ब्रह्मरंध्र फोड़ने का जो आनन्द है, क्या उसे तुम बाँट सकते हो ? उस आनन्द को आनन्द ही कैसे कहा जाए, जिसे बाँटा न जा सके ? जो आनन्द केवल अपने तक सीमित रह जाए, वह तो घोर कंजूसी का एक रूप है। कंजूस अपना धन किसी को नहीं बाँट पाता। खेचरी का साधक अपने आनन्द का वितरण नहीं कर पाता। दोनों में भला क्या अंतर है ?"

"चैतन्यानन्द जी की ओर मैं सन्न होकर देखता रह गया था। उनके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था मेरे पास। तीस-तीस वर्षों की शारीरिक यातना को उस क्षण मैंने जितना व्यर्थ अनुभव किया था, उतना आज तक नहीं किया। चैतन्यानन्द जी के शब्दों ने मुझे दहला कर धर दिया था। यदि वह स्वयं भी खेचरी के साधक न होते, तो मैंने यही समझा होता कि वह ईर्ष्यावश ऐसा कह रहे हैं, किन्तु वह तो स्वयं भी इस विकट विद्या को साधे बैठे थे। साधने के बाद ही वह वैसा कह रहे थे।

बार-बार याद आता है कि उन्होंने मुझसे पूछा था, 'वितथनाथ ! तुम्हारे पास या मेरे पास, दूसरों को देने के लिए है ही क्या ? हद-से-हद हम अपनी सिद्धियाँ किसी-किसी को दे सकते हैं, किन्तु जिसे सिद्धि देते हैं, उसे भी हम अपने ही जैसा कंजूस बना डालते हैं। आम आदमी को, आम जनता को देने के लिए हमारे पास क्या है ? जनता को हम चमत्कृत और आतंकित तो कर सकते हैं, दे कुछ नहीं सकते। हम उस समुद्र की तरह हैं, जिसमें पानी ही पानी भरा है, किन्तु पीने के मीठे जल की एक बूँद भी जिसके पास नहीं है। अथाह जल का स्वामी एक बूँद भी न दे सके, यह कितनी बड़ी विडम्बना है, कभी सोचा, वितथनाथ ?'

बाबा वितथनाथ के झुर्रियों वाले चेहरे पर वेदना छा गई। चैतन्यानन्द जी ने भी इसी वेदना को झेला था। मेरी आँखें नम होने लगीं। गुरुदेव कितने कृपालु और दयालु थे, इसकी याद ने मुझे अभिभूत कर दिया। चमत्कारिक सिद्धियाँ हासिल करने के पीछे, एक दिन, मैं भी कितना दीवाना था। यदि गुरुदेव ने मुझे सावधान करके वापस गृहस्थाश्रम में न भेजा होता, तो ?

वितथनाथ फिर से बुदबुदाने लगे थे, "बहुत जीया हूँ.....जीता ही चला जा रहा हूँ ......लेकिन क्यों जी रहा हूँ ? अपने-आप से बार-बार पूछता हूँ, 'क्यों जी रहा हूँ ?' फिर

भी जीए जा रहा हूँ। इतना अधिक जी लेने के बाद क्या मुझे चिरविदा नहीं ले लेनी चाहिए ? क्यों नहीं मैं समाधिस्थ होकर अपने प्राण छोड़ देता ?"

उनके इस प्रश्न को मैंने सन्न होकर सुना।

सहसा एक अनोखी मैत्री के बंधन में हम दोनों कस गए। चैतन्यानन्द जी को हमने बार-बार याद किया। लगता था, जैसे चैतन्यानन्द जी का अवसान कभी हुआ ही नहीं। जैसे वह हमारे ही कमरे में उपस्थित थे, हमारा दार्शनिक मार्गदर्शन कर रहे थे।

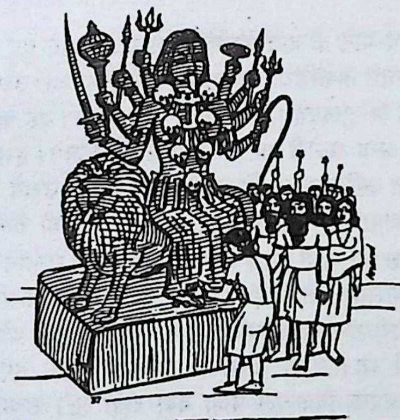
मेरे और वितथनाथ के बीच घण्टों चर्चा होती रही। उस महावृद्ध के सीने में जो प्रश्न उबल रहे थे, वे स्वयं मेरे सीने में भी उपस्थित थे। प्रश्नों के जो उत्तर मैंने खोजे थे, लगभग उन्हीं उत्तरों को उन्होंने भी खोज रखा था। उन्होंने स्वीकार किया कि अपना दिल किसी सांसारिक व्यक्ति के सामने जितना आज खोला है, उतना उन्होंने पहले कभी नहीं खोला ....

बाबा वितथनाथ यदि सचमुच दो सौ वर्ष से अधिक उम्र के थे, तो मैं इसे अजूबा नहीं कहूँगा। अत्यधिक लम्बी आयु भोगने के लिए ही उन्होंने खेचरी विद्या सिद्ध की थी। वह विकट विद्या जब सचमुच सिद्ध हो गई, तो उन्हें अटल विश्वास हो गया कि अब वह अत्यधिक लम्बी आयु भोगने वाले हैं। इसी अटल विश्वास ने उनके तन-मन में एक ऐसी मानसिक महाशक्ति पैदा की, जिसने उन्हें मनुष्य की औसत आयु के उस पार पहुँचा दिया।

उस मानसिक महाशक्ति का मूल्यांकन हम और आप नहीं कर सकते। हठयोगियों और महाअघोरियों के लिए भी उस महाशक्ति का पूर्ण मूल्यांकन करना सम्भव नहीं है, क्योंकि खेचरी विद्या सिद्ध करके मृत्युंजय बनने वाले सिद्ध पुरुष विरले ही होते हैं। इस विकट सिद्धि के बारे में वे कम-से-कम बोलना पसन्द करते हैं। खेचरी विद्या मानवीं मन की गहनतम अप्रकट शक्तियों में से एक है। जब मन की प्रकट शक्तियों का भी उचित, वैज्ञानिक पृथक्करण एवं मूल्यांकन अभी नहीं हुआ है, तब अप्रकट शक्तियों के मूल्यांकन का प्रश्न ही कहाँ है ?

सैंतीस

नया आरोप



वह चौदस का दिन था। माता चामुंडा की मूर्ति की प्रतिष्ठा आज होने वाली थी। चौगान में इसी की तैयारियाँ चल रही थीं। बाबा वितथनाथ से विदा लेकर, निकुम्भआनन्द के साथ चलता हुआ जब मैं चौगान में पहुँचा, तब सूर्य डूबने की तैयारी में था।

घास और मिट्टी से बनी चामुंडा की मूर्ति पाँचेक मीटर ऊँची रही होगी। उसका चेहरा रौद्र था। गले से लटकती सात खोपड़ियों की माला भयानक लग रही थी। गदा, तलवार, भाला, पाश, चक्र, त्रिशूल आदि आयुध उसके ओठों हाथों में स्थापित किए गए थे। रंगीन मनकों और कौड़ियों से मूर्ति को सजाया गया था।

सूर्य ने जब पश्चिम के क्षितिज को छुआ, तब चार अघोरी उस मूर्ति को उठाकर यज्ञवेदी के सामने ले आए। मिट्टी से बनी हुई एक ऊँची बैठक पर मूर्ति को रखा गया। अंधकार छा गया। मशालें जलाई गईं। मंत्रोच्चार निरन्तर हो रहे थे। ये मंत्र देवी का आह्वान करने के लिए ही थे। सर्वप्रथम, देवी की शक्तियों की प्रशंसा की गई। देवी का रक्ताभिषेक करने के बाद प्रार्थना की गई कि प्रस्तुत किए जा रहे भोग को देवी प्रकट

होकर स्वीकारे। इस प्रार्थना के दौरान डरावनी ध्वनि का एक वाद्य लगातार बजाया गया।

पहली रात जिस अघोरी को मैंने ऐसे नाचते देखा था, जैसे उसके शरीर में प्रेत आ गया हो, वही अघोरी आज भी मूर्ति के सामने अपने दोनों हाथों में सुलगती लकड़ियाँ पकड़ कर नाच रहा था। उसने बाकायदा सुलगते छोर पकड़ रखे थे और वह बिल्कुल नहीं झुलस रहा था। रक्त के बाद देवी का अभिषेक माँस और मदिरा से किया गया। मदिरा अघोरियों के बीच प्रसाद के रूप में बाँटी गई।

परात्पर लकुलेश जी, बाबा भैरवनाथ, वामदेव, माता अदिति आदि को मैंने अघोरियों की उस टोली में खड़े देखा। वामदेव ने मेरी ओर जो उड़ती नजर डाली, वह भी शत्रुतापूर्ण थी। मैंने बाबा वितथनाथ को खोजने के लिए दृष्टि घुमाई। वितथनाथ कहीं दिखाई न दिए।

मदिरा का प्रसाद पाने के बाद अघोरियों ने गोल घूमते हुए नाचना शुरू कर दिया था। जो अघोरी सुलगती लकड़ियाँ पकड़ कर नाच रहा था, उसने अब अपनी देह पर जगह-जगह लकड़ियों के सुलगते छोर छुआना शुरू किया। वह कहीं भी और जरा भी न झुलसा। यह देखकर अन्य अघोरी हर्ष के चीत्कार करने लगे। इससे उत्तेजित होकर वह अघोरी और भी कठिन अग्नि प्रयोग दिखाने लगा। अंत में उसने सुलगती लकड़ी अपने मुँह में ही डाल दी। बाबा भैरवनाथ ने अग्नि प्रयोगों को यहीं रुकवा दिया।

परात्पर लकुलेश जी आगे बढ़े। देवी को नमन कर उन्होंने मंत्रोपासना शुरू की। उसके बाद वामदेव, बलिदान के लिए लाई गई उसी मासूम किशोरी को रास्ता दिखाता हुआ आगे बढा। किशोरी उस समय अपने ही पैरों पर चल रही थी। उसके चेहरे पर भय का नामोनिशान नहीं था। दोनों हाथों में वह फूल लिए हुए थी। उसके नाजुक कंधे पर वामदेव ने अपना विकराल पंजा दबा रखा था। संचालित पुतली की तरह किशोरी देवी के सामने आ खड़ी हुई। परात्पर लकुलेश जी ने देवी की मूर्ति को सम्बोधित करते हुए, उस कन्या के बलिदान का संकल्प किया।

संकल्प के अंतिम वाक्य के साथ वामदेव ने किशोरी का कंधा दबाया। किशोरी ने तुरन्त झुककर देवी के चरणों में फूल अर्पित किए। अघोरी देवी का जय-जयकार करने लगे।

इसके बाद, परात्पर जी ने, सभी अघोरियों को सम्बोधित करके एक संक्षिप्त प्रवचन दिया। उन्होंने कहा कि प्रकृति-रूपी शक्ति के यज्ञकुंड में मानव की आहुति देना एक आदर्श अघोर कर्म है और कुमारिका की आहुति तो समस्त आहुतियों के बीच श्रेष्ठतम मानी गई है। लकुलेश जी ने खेदपूर्वक कहा कि यज्ञ लुप्त हो रहे हैं। याममार्गी अपने यज्ञ में घृत और श्रीफल की आहुति देकर देवी-देवताओं का आह्वान करते हैं। वाममार्गियों के लिए यह सम्भव नहीं है। महाकाल जीव का भक्षण करने के बाद ही तृप्ति का अनुभव करता है। निर्बल का भक्षण करके ही शक्तिशाली और अधिक शक्तिशाली बनते हैं और शक्तिशाली बनना ही श्रेष्ठ साधना है। शक्तिशाली ही महाकाल को प्रसन्न

कर सकता है। माँ चामुण्डा यानी महाशक्ति। मंत्र माँ चामुण्डा की वाणी हैं। माँस-मदिरा उसके भक्ष्य हैं। मैथुन उसकी सर्जन-शक्ति और मृत्यु संहार-शक्ति है........

तभी एक युवक अघोरी दौड़ता हुआ परात्पर जी के सामने पहुँचा। चेहरे से वह स्तब्ध लग रहा था। उसने एक कमरे की ओर संकेत करके कुछ कहा। एक तो उसका स्वर धीमा था जिस पर कोलाहल भी होने लगा था। मैं न सुन सका कि उसने क्या कहा। उसके वाक्यों के बीच मैंने केवल एक शब्द ठीक से सुना—बाबा वितथनाथ....

वितथनाथ के बारे में स्तब्ध कर देने वाला कौन-सा समाचार लाया था वह ? जिधर वह संकेत कर रहा था, उधर मैं आशंकित दृष्टि से देखने लगा। सभी की आँखें उसी ओर उठी हुई थीं। उधर ही वह कमरा था, जिसमें बाबा वितथनाथ ठहरे हुए थे।

परात्पर जी के चेहरे पर आश्चर्य और दुःख की रेखाएँ उभरने लगीं। उन्होंने भैरवनाथ की ओर झुककर कुछ कहा। भैरवनाथ ने माता अदिति से कुछ कहा। फिर वे तीनों तेजी से वितथनाथ के कमरे की ओर बढ़ने लगे। जाते-जाते वे वामदेव से कुछ कह गए। वामदेव ने तुरन्त अपना ध्यान उस किशोरी पर केन्द्रित कर लिया। मानो किशोरी को किसी अपहरणकर्ता से बचाया जाना हो, इस प्रकार उसके नाजुक कंधे पर वामदेव का विशाल पंजा कस गया।

"चक्कर क्या है ?" मैंने निकुम्भ से पूछा।

निकुम्भ ने कोई जवाब न दिया। मुझे खटका-सा हुआ। मैंने पलट कर देखा। निकुम्भ, जो अभी-अभी मेरे पास खड़ा था, अपनी जगह से नदारद था। मुझे पता ही नहीं चला था, वह कब हट गया था। उसे नदारद देखकर स्वयं को मैंने असुरक्षित अनुभव किया। सहसा समझ न पाया, निकुम्भ की खोज में किस तरफ बढ़ूँ। उलझन में पड़कर मैं अभी सोच ही रहा था कि निकुम्भआनन्द सामने से मेरी ही ओर आता दिखाई दिया। इससे पहले कि मैं पूछ सकूँ, 'कहाँ थे ?' उसी ने व्याकुलता से कहा, "महाशय ! आपने फिर एक मुसीबत खड़ी कर दी है।"

"मुसीबत ? मैंने ? नहीं तो !" मैं चौंक पड़ा।

"जी हाँ ! सबकी यही राय है कि इस मुसीबत के पीछे आप ही का हाथ है।"

"लेकिन.....भला ऐसी कौन-सी मुसीबत है ?"

"बाबा वितथनाथ ने घोषणा कर दी है कि वह आज ही समाधि लेकर चिरनिद्रा में सो जायेंगे।" निकुम्भ ने चिंतित स्वर में कहा, "क्या वितथनाथ ने यह निर्णय आपके उकसावे पर नहीं किया है ?"

मैं सातवें आसमान से गिरा, "मेरे उकसावे पर ?"

"असम्भव नहीं !" निकुम्भ बुदबुदाया, "आपके और उनके बीच बड़ी देर तक गुप्त वार्ता होती रही है। सब जानते हैं।"

"लेकिन......हमारे बीच ऐसी कोई वार्ता हुई ही नहीं कि जिससे........" भय से मेरा गला सूखने लगा था। वाक्य पूरा करना असम्भव हो गया।

निकुम्भ बोला, "कैसी वार्ता हुई, कैसी नहीं हुई, कौन जान सकता है ? बंद दरवाजे के पीछे आप दो ही थे। हाँ, वार्ता का परिणाम अवश्य सबके सामने है। वितथनाथ चिरनिद्रा लेना चाहते हैं।"

"लेकिन.........यह हमारी वार्ता का परिणाम नहीं हो सकता, निकुम्भ ! ऐसी समाधि के पीछे कोई और ही कारण है।" मैंने सिटपिटा कर कहा। मेरा गला जलने लगा था।

"यदि कोई और कारण है, तो भी.....यहाँ के किसी भी अघोरी की बनिस्वत आप उस कारण को ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं।"

"निकुम्भ ! क्या मैंने तुम्हारा भी विश्वास खो दिया ?" मैंने तड़प कर पूछा।

निकुम्भ चुप रहा। शायद उसने मेरा प्रश्न सुना ही न था। उसका पूरा ध्यान उस बरामदे पर केन्द्रित था, जिसमें बाबा वितथनाथ आकर खड़े हो गए थे।

अघोरियों की टोली ने वितथनाथ को घेरना शुरू कर दिया । मैं निकुम्भ का हाथ पकड़कर उसी ओर बढ़ चला। अघोरियों को सम्बोधित करके वितथनाथ क्या कहते हैं, मैं सुनना चाहता था।

वितथनाथ ने मेरी ओर उड़ती नजर से देखा। गनीमत थी, उन्होंने उड़ती नजर से ही देखा। अगर गौर से देखते, तो उन पर मेरा प्रभाव होने की अफवाह और पक्की हो जाती।

बाबा वितथनाथ ने कहना शुरू किया, "माँ चामुंडा के भक्तो ! आज मुझे अचानक ऐसा लगा, मैं बहुत जी चुका हूँ। इतना अधिक भी किसी को नहीं जीना चाहिए। यह सुनिश्चित है कि एक-न-एक दिन मुझे भी महाकाल के खप्पर में समाना ही है। खेचरी विद्या सिद्ध करके मृत्युंजय बनने के बावजूद मैं अमर तो हुआ नहीं हूँ। सोचता हूँ कि महाकाल मुझे बुलाए, इससे पहले स्वयं मैं ही महाकाल के सानिध्य में चला जाऊँ। मैं उसके खप्पर में अपने जीवन की आहुति देना चाहता हूँ। मैं इतना जी चुका हूँ कि अब और जीने का मन नहीं रहा। मृत्यु की परम शांति मुझे आकर्षित कर रही है। विश्वास है, चिर-समाधि लेने के मेरे निर्णय का आप सब स्वागत करेंगे।"

अड़तीस

अभय वचन



अघोरियों के बीच जो सन्नाटा खिंचा हुआ था, उसे चीर कर बाबा वितथनाथ का एक-एक शब्द दूर-दूर तक पहुँच कर, सन्नाटे को और भी असहनीय बना रहा था। ज्यों ही बाबा वितथनाथ ने अपने जीवन का अन्तिम वक्तव्य समाप्त किया, त्यों ही भैरवनाथ ने नारे लगाना शुरू कर दिया, "बाबा वितथनाथ की जय ! बाबा वितथनाथ की जय !"

सब अघोरी जय-जयकार में व्यस्त हो गए। यदि ऐसा न हुआ होता, तो उनमें से न जाने कितनों की आग बरसाती नजर मुझ पर केन्द्रित हो जाती। उसका नतीजा कुछ भी निकल सकता था। भय की तपिश मैंने अपनी रीढ़ की हड्डी में रेंगती महसूस की।

सब बिखरने लगे थे। निकुम्भ ने अचानक मेरा हाथ पकड़ लिया। खींचता हुआ वह मुझे एक ऐसे कोने में ले गया, जिधर किसी की नजर पड़ने की सम्भावना बहुत कम थी। मैंने सोचा था, निकुम्भ कुछ कहेगा। उंसने कुछ न कहा। चुपचाप खड़ा रहा वह। मैं भी खड़ा रहा। एक-दूसरे की आँखों में हम देखते रह गए। किस विकट घटना की प्रतीक्षा में थे हम ?

वितथनाथ की समाधि की तैयारियाँ तुरन्त होने लगीं।

सहसा परात्पर लकुलेश जी को मैंने अपनी ओर बढ़ते देखा। आमने-सामने आकर

वह रुक गए। उन्होंने एक ऐसी दृष्टि से मुझे घूरा, जिसका अर्थ समझना मेरे लिए सम्भव नहीं था। उस दृष्टि में क्रोध था, आश्चर्य था, उलाहना था, कौतूहल भी था।

दृष्टि मुझ पर से हटाकर उन्होंने निकुम्भ पर स्थिर कर दी। उनका संकेत समझकर निकुम्भ चुपचाप अलग हट गया। अब मैं और परात्पर जी आमने-सामने अकेले खड़े थे। बार-बार मुझे भय लगता, कहीं मेरी नजरें न झुक जायें। अत्यधिक प्रयास के बाद ही मैं परात्पर जी की सम्मोहित कर लेने वाली विकराल आँखों में देख पा रहा था। बार-बार मैं स्वयं को याद दिला रहा था कि मैं अपराधी नहीं हूँ, नहीं हूँ, नहीं हूँ।

"मुझे आपसे कुछ वार्ता करनी है।" सन्नाटा आखिर परात्पर जी के ही गम्भीर स्वर से टूटा।

"अवश्य !" मैं बुदबुदाया।

"यहाँ नहीं। मेरे साथ चलिए। उधर।"

मैं उनके साथ चलने लगा। यज्ञवेदी से काफी दूर वह मुझे जंगल में ले गए।

न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत होकर मैंने पलट कर पीछे देखा। दूर से, माता अदिति की दृष्टि हमारी ओर ही टिकी हुई थी। अदिति जी मुझ पर निगरानी रख रही थीं या परात्पर श्री लकुलेश जी पर ? या दोनों पर ?

अदिति जी की ओर मैं अधिक न देख सका। परात्पर जी चलते-चलते रुक चुके थे। मैं भी रुका और उनके नेत्रों में देखने लगा। उन्होंने जो पहला सवाल किया, उसके लिए मैं बिल्कुल तैयार नहीं था।

"मृत्यु के बारे में तुम क्या जानते हो ?" उन्होंने पूछा। अंधकार के कारण मैं न देख सका कि उनके चेहरे पर क्या भाव हैं। फिर भी....वह 'आप' की जगह पहली बार 'तुम' बोले थे। क्या वह मेरे प्रति कोई आत्मीयता अनुभव कर रहे थे ? किन्तु अत्यधिक क्रोध के कारण भी वह 'तुम' बोल सकते थे। क्या वह मृत्यु की चर्चा के बहाने मुझे मृत्यु दण्ड सुनाने की तैयारी में थे ?

मैंने किसी तरह साहस बटोर कर कहा, "जी...मैं आपका आशय नहीं समझा।"

"लेकिन तुम यहाँ किस आशय से आए हो, यह मेरी समझ में आने लगा है।" कहते समय वह अत्यन्त गम्भीर थे।

"मैं यहाँ किसी भी गुप्त आशय से नहीं आया हूँ। क्यों आया हूँ, यह मैंने कभी छिपाया नहीं है।"

"तुम्हारे ही कारण हमने अपने दो-दो श्रेष्ठ साथियों को हमेशा के लिए खो दिया।" उनकी आवाज में क्रोध की थर्राहट थी।

"मैंने अलखआनन्द जी या वितथनाथ जी को किसी भी तरह कभी नहीं उकसाया। जैसे मैं आपसे बात कर रहा हूँ, उसी तरह मैंने उनसे भी केवल बातें ही की थीं। विचारों और ज्ञान के आदान-प्रदान के लिए मैं यहाँ आया हूँ और यही मैंने उनके साथ किया था। अलखआनन्द जी ने यदि अचानक स्व-वध कर लिया, तो उसके पीछे मेरा उकसावा नहीं है। स्वयं उनके मन में एक तूफ़ान घुमड़ रहा था। मैं उस तूफान से परिचित हूँ, क्योंकि जिस प्रकार मैंने अपनी आशंकाएँ उनके सामने रखी थीं, उसी प्रकार उन्होंने भी अपनी आशंकाएँ मेरे सामने रखी थीं। मैंने अपने गुरू स्वामी चैतन्यानन्द जी के विचार

उन्हें बताए थे। क्या इतने से ही वह स्व-वध का निर्णय ले सकते थे ? ऐसे निर्णय के पीछे अवश्य कोई बहुत बड़ा और पुराना द्वन्द्व रहा होगा।"

"और.......वितथनाथ ने जो चिर-समाधि का निर्णय लिया है ?"

"यह भी उनका निजी निर्णय है। स्वयं आप सोचकर देखिए। किसी भी सिद्ध अघोरी को मैं आत्म-बलिदान अथवा चिर-समाधिक जैसी सलाह कैसे दे सकता हूँ ? यहाँ मैं आप लोगों की कृपा एवं अनुमति से ही आ पाया हूँ। यहाँ मैं हर तरह से आप ही लोगों पर आश्रित हूँ। यह बात मैं क्षणमात्र के लिए भी कैसे भूल सकता हूँ ? आप मुझ पर व्यर्थ ही संदेह कर रहे हैं।"

"तो क्या इसे केवल एक संयोग मानकर छोड़ दिया जाए कि अलखआनन्द ने आत्म-बलिदान से पहले तुम्हारे साथ गहरी चर्चा की थी और वितथनाथ ने भी चिर-समाधि की घोषणा से पहले तुम्हारे साथ एकांत में लम्बी चर्चा की।" परात्पर जी का क्रोध बढ़ रहा था।

मैंने दृढ़ता से कहा, "मैं आपके व्यंग्य को समझ रहा हूँ। अपनी ओर से यही कह सकता हूँ कि किसी को प्रभावित करने की जितनी क्षमता मुझमें है, उससे सहस्र गुनी क्षमता अलखआनन्द जी में थी और वितथनाथ जी में है। जिनकी केवल दृष्टि पड़ने से ही पंछी मर जाते हों और मृत्यु भी जिनके निकट आने से डरती हो, ऐसे सिद्ध पुरुषों को उकसाने की क्षमता मुझमें कहाँ से और कैसे आ सकती है ?"

तभी वहाँ माता अदिति आ खड़ी हुईं। मुझे जवाब देने के लिए परात्पर जी ने मुँह तो खोला, किन्तु माता अदिति को देख वह चुप हो गए।

दृष्टि मिलते ही अदिति जी ने परात्पर जी से कहा, "मैं बाबा वितथनाथ की अंतिम इच्छा बताने यहाँ आई हूँ।"

परात्पर जी सावधान हुए, "कहिए।"

माता अदिति ने गम्भीरता से जवाब दिया, "बाबा वितथनाथ ने हमारे इन अतिथि महाशय के लिए अभय-वचन माँगा है।"

वाक्य पूरा करते-करते माता अदिति ने मेरी ओर संकेत भी किया। परात्पर जी देखते रह गए। मेरी भी यही दशा थी। बाबा वितथनाथ की दूरदर्शिता एवं दयालुता ने मुझे भावुकता से अत्यन्त द्रवित कर दिया।

क्या परात्पर जी का इरादा बाबा वितथनाथ ने भाँप लिया था ? अथवा......माता अदिति ने ही उन्हें ऐसी इच्छा व्यक्त करने के लिए प्रेरित किया था ?

परात्पर जी तिलमिला कर खामोश रह गए थे। कुछ क्षणों बाद उन्होंने मेरी तरफ घूम कर देखा, "तुम इस शिविर से चले जाओ। कल ही तुम्हारी विदा का प्रबन्ध कर दिया जायेगा।"

मैंने उन्हें धन्यवाद दिया। फिर कहा, "आपने मुझसे मृत्यु के बारे में पूछा था। अनुमति हो, तो कुछ कहूँ।"

"नहीं। मुझे कुछ नहीं सुनना। जाओ यहाँ से।" वह दृढ़ता से बोले।

उनतालीस

अभय वचन के बावजूद



परात्पर जी से विदा लेकर मैं और माता अदिति साथ-साथ चलने लगे। मैंने कहा, "अदिति जी ! कल यहाँ से विदा लेने के बाद.......मैं आपको कभी नहीं भूल सकूँगा। मतभेद के बावजूद आपने मेरे प्रति निरंतर जिस ममता का परिचय दिया है, उसे कोई कैसे भुला सकता है ?"

अदिति जी बोलीं कुछ नहीं। केवल मुस्करा दीं।

चौगान में धमाल शुरू हो चुका था। माँ चामुंडा की मूर्ति के सामने बैठकर बाबा वितथनाथ गम्भीरता से मंत्रोच्चार कर रहे थे। अनेक अघोरी उनके स्वर से स्वर मिलाकर मंत्र बोल रहे थे। वितथनाथ उस क्षण अत्यन्त भव्य लग रहे थे।

अदिति जी ने कहा, "वितथनाथ की समाधि के कारण आज के सब कार्यक्रम विलम्ब से हो सकेंगे।"

मैंने पूछा, "आज का विशेष कार्यक्रम क्या था ?"

"कल बलिदान का दिवस है न ! उसी की पूर्व तैयारियाँ आज करनी हैं। आज

भले ही विलम्ब हो, किन्तु कल बिल्कुल सही समय पर बलिदान दे दिया जाएगा। इसे कोई नहीं टाल सकता।"

"मेरी एक जिज्ञासा है।" मैंने अनुमति माँगने की तरह कहा।

"पूछिए।"

"क्या आप किसी निर्दोष कन्या के बलिदान से सहमत हैं ?"

"यह हमारे संप्रदाय का नियम है। विधि है।"

"इस हत्या से भला क्या प्राप्त हो सकेगा ?"

अदिति जी 'हत्या' शब्द से चौंक गईं। मुझे पैनी नजर से घूरते हुए उन्होंने पूछा, "शास्त्रोक्त रीति से दिए गए बलिदान को आप हत्या कैसे कह सकते हैं ? आप लोग जब अपने सामाजिक या राजनीतिक नियम लागू करते हैं, तब युद्ध अथवा दंगों के दौरान अनेक लोग मरते हैं या नहीं ? क्या उसे हत्या कहा जाता है ?"

"किन्तु कोई भी समझदार व्यक्ति नरबलि को हत्या ही कहेगा।"

"तब तो......वितथनाथ को चिर-समाधि के लिए उकसाना भी एक हत्या है।" अदिति जी ने बड़े ही तीखे स्वर में कहा।

मैं बोला, "यानी.....आप भी इस प्रकरण में मुझी को दोषी मान रही हैं। मैं यही कह सकता हूँ कि वह किशोरी अपनी इच्छा से बलि चढ़ने यहाँ नहीं आई है। उसका बलिदान स्वैच्छिक नहीं है, जबकि वितथनाथ जी की चिरनिद्रा स्वैच्छिक है। उन्होंने तहेदिल से महसूस किया है कि वह जरूरत से ज्यादा जी चुके हैं और सिर्फ जीते ही चले जाने का कोई अर्थ नहीं है। बाबा वितथनाथ जी-जी कर थक चुके हैं। अब उन्हें आराम मिलना चाहिए। चिरनिद्रा उनकी मजबूरी नहीं, बल्कि जरूरत है।"

"और.....अलखआनन्द ?"

"मुझे अनुमान था ही नहीं कि बाबा अलखआनन्द आत्म-वध करने जा रहे हैं। यदि जरा भी भनक मिली होती, तो उन्हें रोकने का अधिकतम प्रयास मैंने किया होता। मैं मृत्यु प्रेमी नहीं हूँ। मृत्यु प्रेम तो पलायन का दूसरा नाम है, जबकि 'कल्पना-योग' की दीक्षा देते समय मेरे गुरुदेव ने यही कहा था कि पलायन कभी मत करो। लोगों से सत्य सहन नहीं होता। वे सत्य से पलायन करते हैं। लोगों से जीवन सहन नहीं होता। वे जीवन से पलायन करते हैं। पलायन किसी भी प्रकार का हो, किसी भी रूप का हो, उसका सहारा कभी मत लो।"

हमने अदिति जी के कमरे में प्रवेश किया।

अपनी ऊँची बैठक पर विराजमान होकर, बाएँ हाथ का सहारा लेती हुई, वह आराम की मुद्रा में निढाल हो गईं। इशारे से उन्होंने मुझे सामने बैठ जाने के लिए कहा।

"दो-दो समर्थ साथियों की चिर-विदाई से परात्पर जी अत्यन्त व्याकुल हैं।" अदिति जी हौले से बोलीं।

"कल की नरबलि उन्हें और ज्यादा हचमचा दे, ऐसा मैं चाहता हूँ।" मैंने दृढ़ता से कहा।

अघोरियों के शिविर में चारेक दिन बिताने के बाद मुझमें एक नए ही साहस और दृढ़ता का संचार हो चुका था। मैंने यही निष्कर्ष निकाला था कि अघोरी दिशाविहीन अवश्य थे, किन्तु दम्भी कदापि नहीं। अपनी विचित्र मान्यताओं के कारण वे दम्भी लगते तो थे, किन्तु उनके दम्भ को झिंझोड़कर गिरा देना कतई मुश्किल नहीं था। मैंने तो ऐसे-ऐसे ज्ञानी-ध्यानी और पंडित-महापंडित देखे हैं। जिनका दम्भ त्वचा, रक्त और मज्जा तक में घुलमिल चुका होता है, जो किसी भी तर्क से नहीं हिलता।

"अदिति जी !" मैं बोले बिना न रह सका, "मृत्यु, चाहे वह किसी की भी हो, आखिर मृत्यु ही है। मित्र की मृत्यु, रिश्तेदार की मृत्यु, परिचित या अपरिचित की मृत्यु—मृत्यु तो सब जगह समान है। मृत्यु का रूप आत्मवध का हो, चिर-समाधि का हो, नरबलि का हो, दुर्घटना का हो, चाहे जो रूप उसका हो, उसके साथ करुणा हमेशा जुड़ी होती है। करुणा को मैं एक श्रेष्ठ मानवीय गुण मानता हूँ। लगता है, यही गुण अघोरियों का साथ छोड़कर चला गया है। मैं पूछता हूँ, 'मुश्किल से बारह-तेरह साल की एक मासूम, निरपराध किशोरी के प्रति यदि आपके मन में करुणा नहीं जागती, तो आपकी यह साधना किस काम की ?' माना कि इस साधना से शक्ति-संग्रह होगा, किन्तु क्या यह शक्ति विषाक्त नहीं ? सर्जनात्मक शक्ति की तरह विध्वन्सात्मक शक्ति भी होती है न ? आपकी शक्तियाँ किस श्रेणी की हैं ? गुरु चैतन्यानन्द कहा करते थे, 'शक्ति के ऊँचे से ऊँचे सिंहासन पर बैठने के बाद भी मनुष्य मृत्यु के सामने कितना लाचार होता है। मृत्यु के दरबार में तो उसे हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर ही खड़ा होना पड़ता है।' मुझे बताइये, अदिति जी ! शक्ति प्राप्त करने के बाद आपका कार्यक्रम क्या है ? शक्ति के बाद और अधिक शक्ति, उसके बाद और-और अधिक शक्ति—क्या इसी को आप कार्यक्रम कहती हैं ? लेकिन यह कार्यक्रम नहीं है। यह केवल जमाखोरी है। जिस शक्ति की आराधना अघोरी करते हैं, उसका एक रूप माँ का भी तो है। क्या कोई भी माँ किसी मासूम किशोरी के बलिदान से प्रसन्न हो सकती है ? बलिदान ही देना है, तो अपने अहंकार का दीजिए, अपनी व्यर्थ सिद्धियों का दीजिए।" मेरे स्वर में उत्तेजना और भावुकता की थर्राहट थी।

"देखिए, यहाँ जो-कुछ हो चुका है, उसी को पर्याप्त मानिए।" वह बोलीं।

"किन्तु......"

"यदि इससे आगे कुछ भी हुआ, तो आपको अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। मैं नहीं चाहती कि ऐसा हो। स्वामी शिवानन्द को बाबा भैरवनाथ ने वचन दिया है कि आपको इस शिविर से सकुशल लौटाया जाएगा। यह वचन किसी प्रकार पूरा हो जाए, यही मैं चाहती हूँ। कल दोपहर तक आपको मेरे आसपास ही बने रहना है अन्यथा अभय-वचन के बावजूद आप सुरक्षित नहीं हैं।"

"बलिदान कब है ?" थोड़े मौन के बाद मैंने अकस्मात् पूछ लिया।

"कल शाम को।" अदिति जी ने कहा, "किन्तु आप उसे देख नहीं सकेंगे। दोपहर

को ही आपको यहाँ से विदा कर दिया जाएगा। यह सुनिश्चित है। समय बिताने के लिए आपसे एक सवाल पूछना चाहती हूँ।"

"केवल समय बिताने के लिए नहीं।" मैंने कहा।

"परात्पर जी से आप मृत्यु के विषय में कुछ कहना चाह रहे थे। वह मुझसे कहिए।"

मैं चुप रहा।

अदिति जी ने गहनता से मेरी ओर देखा, "चुप कैसे हैं ?"

"मृत्यु के सन्दर्भ में मैंने अभी-अभी काफी कुछ कहा। क्या उतना पर्याप्त नहीं ?"

"और कहिए।"

"जन्म और मृत्यु की चर्चा उतनी ही अनन्त है, अदिति जी ! जितनी आत्मा और परमात्मा की चर्चा। इन्हीं चर्चाओं के कारण यहाँ कुछ ऐसी घटनाएँ घटी हैं, जिनके लिए आप भी मुझी को दोषी समझती हैं। फिर स्वयं आप ही मुझे ऐसी चर्चा में क्यों उलझा रही हैं ?"

"डरिए नहीं। वह स्नेह से मुस्करा दीं, "मैं आत्म-वध नहीं करूँगी। चिर-समाधि भी नहीं लूँगी। जब मैं आपके विचारों को सुनने से नहीं डर रही, तब आप क्यों डर रहे हैं बताने से ?"

मैं संजीदगी से बोला, "अदिति जी ! मृत्यु किसी को पसन्द नहीं है। लोग इस संसार में हमेशा के लिए जीना चाहते हैं। लोगों को पता ही नहीं है कि यदि मृत्यु न होती, तो जीने की ललक भी न होती। मृत्यु है, इसीलिए जीने की ललक है। मृत्यु ने ही जीवन को लुभावना और जीने लायक बनाया है। मृत्यु न होती, तो जीवन नरक बन जाता। मृत्यु तो प्रकृति का महान आशीर्वाद है। जिस भी व्यक्ति ने जीवन को पूरी तरह जीया है, उसके लिए तो मृत्यु में महान आनन्द के सिवा कुछ भी नहीं। जीवन आनन्द है और मृत्यु भी आनन्द है।"

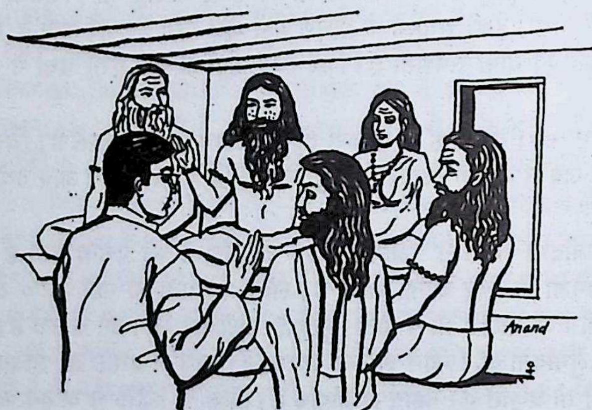
"मैं इससे असहमत नहीं।" अदिति जी बोल पड़ीं, "कुछ ऐसा कहिए, जिससे असहमत होने को जी चाहे।"

"मेरी रुचि आपकी असहमति में नहीं, सहमति में अधिक है।"

तभी बाहर कोलाहल बढ़ गया। 'वितथनाथ की जय !' के नारे लगने शुरू हो गए। क्या हो रहा था बाहर ? मैं और माता अदिति उठ पड़े।

चालीस

अकूत आशंका



मैं और माता अदिति कमरे से बाहर निकले। अघोरियों की एक बड़ी-सी भीड़ सामने ही दिखाई पड़ी। उसमें भारी बहस और गहमागहमी का माहौल था। वितथनाथ का जय-जयकार करते अघोरियों को रोकने की तीव्र चेष्टा हो रही थी, मगर वे रुकते नहीं थे। उसी भीड़ में निकुम्भआनन्द भी खड़ा दिखाई दे गया। अनायास उसकी नजर हमारी ओर उठी। माता अदिति ने संकेत से उसे निकट बुला लिया और पूछा, "क्या हो रहा है ?"

"व्यर्थ का विवाद है, माँ !" निकुम्भ रूखी मुस्कान के साथ बोला, "बाबा वितथनाथ का अन्तिम संस्कार किस प्रकार हो, सबकी अलग-अलग राय है।"

"अन्तिम विधि उसी प्रकार होगी, जैसी स्वयं बाबा वितथनाथ की आज्ञा है। इसमें दूसरों की राय का अर्थ ही क्या है ?" माता अदिति ने कहा, "इन अघोरियों को मेरी ओर से आदेश दो, ये बिखर जाएँ।"

आदेश देने के लिए निकुम्भ को उधर जाने की आवश्यकता ही न पड़ी। माता अदिति के तेवर दूर से पहचान कर उन अघोरियों ने स्वयं ही बिखरना शुरू कर दिया।

मैं पूछे बिना न रह सका, "क्या आप लोगों में अन्तिम संस्कार को लेकर इसी तरह मतभेद..."

"जी, नहीं !" निकुम्भ ने बीच में ही टोक दिया, "हमारे शास्त्रों में, इस सन्दर्भ में, अत्यन्त स्पष्ट विधान है। उसमें मतभेद की कहीं गुंजाइश ही नहीं। इस बार जरूर आवाजें उठी हैं, मगर वे व्यर्थ हैं।"

"बाबा वितथनाथ स्वयं क्या चाहते हैं ?" मैंने सहजता से पूछ लिया, किन्तु देखा कि निकुम्भआनन्द हिचक रहा है। उसकी खामोश नजरें माता अदिति पर टिक गई थीं; जैसे चाहता हो, जवाब वही दें।

मैंने अदिति जी का गम्भीर स्वर सुना, "वितथनाथ चाहते हैं, उनका पार्थिव शरीर अग्नि को समर्पित किया जाए।"

"अग्नि-दाह तो सर्वश्रेष्ठ अन्तिम संस्कार है।" मैं अपना कौतूहल छिपा नहीं पा रहा था, "फिर इतना मतभेद कैसे ?"

निकुम्भ की नजर झुक गई, स्वर भी धीमा हो गया। अवश्य वह कुछ छिपा रहा था। उसके होंठों से बुदबुदाहट फूटी, "परात्पर जी ने तो कोई आपत्ति की नहीं। आपत्ति अगर होनी थी, तो केवल उन्हें होनी थी। वह तो झट से सहमत हो गए। बस, ये अनाड़ी अघोरी हैं, जो परम्परा की दुहाई देकर विरोध कर रहे हैं।"

"परम्परा की दुहाई ?" मैंने सावधान होकर पूछा, "तो क्या अग्नि संस्कार देना आपकी परम्परा में नहीं ?"

निकुम्भ उसका जवाब टाल गया। माता अदिति की ओर देखते हुए उसने कहा, "माँ ! अनुमति हो, तो मैं चलूँ। उन अनाड़ियों के बीच कहीं फिर से बहस न छिड़ गई हो।"

लम्बे डग भरता निकुम्भ वृक्षों की ओट में हो गया।

मैंने अदिति जी की ओर देखा, "क्षमा कीजिएगा, पूछ तो रहा हूँ, लेकिन संकोच में हूँ, पूछने का अधिकार मुझे है भी या नहीं...."

"सोमपुरा जी ! अब तो आप यहाँ से जाने ही वाले हैं। जाते-जाते कुछ पूछ लेंगे, तो गुनाह नहीं कर बैठेंगे। पूछिए।"

"बाबा वितथनाथ ने अभी चिर-समाधि ली नहीं है। जब लेंगे, तब लेंगे। अभी वह जीवित हैं। उनके जीते-जी, उन्हीं के अन्तिम संस्कार को लेकर इतना मतभेद कैसे ?"

"शायद आप जानते न हों......." अदिति जी ने बताना शुरू किया, "बाबा वितथनाथ परात्पर श्री लकुलेश जी के गुरु हैं।"

"ओह ! सचमुच मैं नहीं जातना था।"

"लकुलेश जी बाबा वितथनाथ के शिष्य ही नहीं, पट्ट-शिष्य भी हैं। अघोरियों में परम्परा है कि गुरु के शव पर पट्ट शिष्य का अधिकार होता है।"

"यानी, शव का अग्नि-संस्कार केवल परात्पर जी कर सकेंगे ?"

"जी हाँ, वही करेंगे, मगर फिर भी उनके एक अधिकार का हनन अवश्य होगा।"

"अधिकार का हनन ?"

एकांत कोने में रुक कर अदिति जी ने आगे कहा, "किसी अघोरी को जब अपनी मृत्यु की छाया दिखाई पड़ जाती है, तब वह अपने पट्ट-शिष्य को साथ लेकर घोर जंगल में अथवा हिमाच्छादित पर्वत पर चला जाता है। वहाँ वह पट्ट-शिष्य को अपनी देह दान में दे देता है। गुरु यदि स्वस्थ है, तो शिष्य उसका रक्त पीता है। ?" उसकी देह का भक्षण करता है और उसकी खोपड़ी को अपने खप्पर के रूप में ग्रहण करता है।"

सुनकर मुझे उबकाई आने लगी। रोकने के लिए मैंने मुँह पर हाथ रख लिया। अदिति जी हँसने लगीं, "हमारे लिए यह अत्यंत सामान्य रीति है। इस उपाय से गुरु अपने पट्ट-शिष्य को स्वयं की शक्तियों का उत्तराधिकार देता है। इसी उपाय से वह अपने पट्ट-शिष्य के शरीर में जीवित भी रहता है। गुरु की खोपड़ी पट्ट-शिष्य को ही मिलने का एक विशिष्ट अर्थ है। जिस खोपड़ी में गुरु ने अपने सम्पूर्ण ज्ञान और शक्तियों को धारण किया था, वही खोपड़ी जब खप्पर बनकर शिष्य के हाथ में लगातार विद्यमान रहती है, तब गुरु की समस्त चेतना, ज्ञान, गरिमा और शक्तियाँ शिष्य को सहज ही मिल जाती हैं। यह अघोरियों की परम्परा है, कर्तव्य भी है। युग-युगों से यही होता आया है। वितथनाथ की खोपड़ी स्वीकार करने का अधिकार परात्पर जी को है, किन्तु अग्नि-दाह की इच्छा व्यक्त करके वितथनाथ ने उन्हें इस अधिकार से वंचित कर दिया है। अग्नि-दाह तो वितथनाथ के रक्त को वाष्प में बदल देगा, माँस को भस्म कर देगा, खोपड़ी समेत तमाम हडिड्यों को भस्म या विकृत कर देगा। वितथनाथ ने अग्नि-दाह की आज्ञा देकर हजारों वर्ष पुरानी एक अघोर परम्परार तोड़ी है। क्या इससे परात्पर जी के साथ अन्याय नहीं हुआ। किन्तु परात्पर श्री लकुलेश जी अत्यन्त विवेकशील हैं। तभी तो अपना अधिकार उन्होंने सहज ही छोड़ दिया। अगर वह ऐसा न करते तो आज भारी बखेड़ा हो जाता है। वितथनाथ की इच्छा को सम्मान देकर उन्होंले फिलहाल एक संघर्ष को टाल अवश्य दिया है किन्तु परम्परा टूटने की यह स्थिति सामान्य नहीं है। वामदेव जैसे अटल अघोरी कभी भी धमाल कर सकते हैं।"

"बाबा अलखआनंद के शव के साथ क्या किया गया ?" मैंने पूछा।

"उस पर निर्मल आनंद का अधिकार था। निर्मल ने अपने गुरु का रक्त पीने और माँस-भक्षण करने से साफ इन्कार कर दिया। तब यह अधिकार अलखआनंद के अन्य शिष्यों को दे दिया गया। बारह दिनों बाद, उनकी खोपड़ी, किसे सौंपी जाए, इसका निर्णय होगा।"

मैं सिहर रहा था, "ओह ! इतना सब हुआ और मुझे पता भी नहीं।"

ये सब अत्यन्त गुप्त बातें हैं। यहाँ मौजूद होते हुए भी आप कुछ नहीं जान सके, क्योंकि हमने इसकी सावधानी बरती थीं। अभी, अपने समस्त नीति-नियमों को तोड़कर,

आपको यह सब बता रही हूँ, क्योंकि व्यक्तिगत रूप से मैं यही सोचती हूँ कि इन जानकारियों को पाने का पूरा अधिकार आपको है।

मैंने ऐसी कृपा के लिए उनका अत्यन्त आभार माना।

बाबा वितथनाथ ने समाधि में बैठकर, स्वेच्छा से प्राण त्याग दिए। उनके चेहरे पर भव्य शान्ति थी। उनके शव को एक आसन पर, सहारा देकर, माँ चामुंडा की मूर्ति के सामने बिठाया गया। तय हुआ था कि उन्हें दो दिनों बाद ही अग्नि-संस्कार दिया जाएगा।

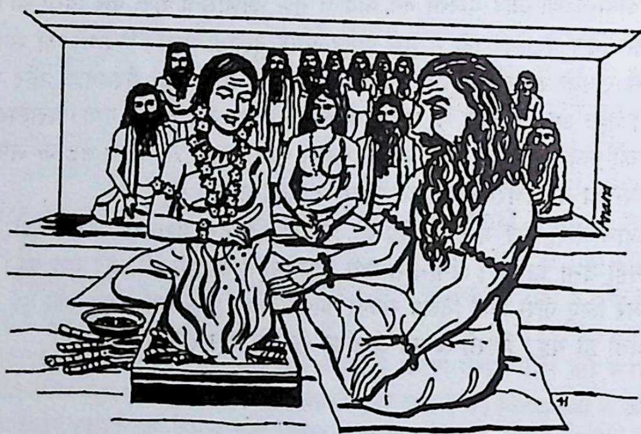
रात देर तक माँस, मदिरा, नृत्य और तांत्रिक मैथुन का दौर चलता रहा। उस ओर आँख उठा कर देखने का भी मुझे मन नहीं हुआ। अब तो घर वापस जाने की घड़ी आ रही थी। बीबी-बच्चों और दोस्तों की याद ने मुझे झिंझोड़ना शुरू कर दिया था।

पाँचवें दिन परात्पर जी ने मुझे सुबह-सुबह बुलावा भेजा। निकुम्भ को साथ लिए हुए जब मैं उनके सामने पहुँचा, तब वहाँ माता अदिति, बाबा भैरवनाथ और वामदेव मौजूद थे। कुछ अन्य अघोरी भी थे। सब को नमस्कार कर मैं बैठ गया। परात्पर जी ने भैरवनाथ को संकेत किया। भैरवनाथ ने मुझसे पूछा, "आप से अंतिम भेंट के समय क्या बाबा वितथनाथ ने खेचरी विद्या का रहस्य आपको बताया था ?"

न जाने कैसे, मेरे मन में चौंध-सी हो गई कि इस प्रश्न का उत्तर मुझे 'हाँ' या 'नहीं' में नहीं देना चाहिए। अनायास मेरी दृष्टि माता अदिति की ओर उठ गई। उनकी आँखों में मेरे लिए जैसे कोई विशेष संकेत काँप रहा था। मेरे मन में जो चौंध हुई थी, वह तत्काल घनी हो गई। किसी अकूत आशंका से मेरा रोम-रोम सिहर गया।

इकतालीस

गहरा पेंच



मेरी दशा उस हिरन जैसी थी, जो शेर की गन्ध पाकर, आत्म-रक्षा के लिए, अचानक चौकन्ना हो गया हो। स्वर की कँपकँपी छिपाने की अधिकतम चेष्टा के साथ मैंने भैरवनाथ की तरफ देखा और कहा, "बाबा वितथनाथ ने मुझे अपना तालू दिखाया था, जिसके बीच में एक छेद था।"

"जो पूछा जा रहा है, उसका सीधा उत्तर दीजिए।" भैरवनाथ का स्वर रूखा था, "क्या उन्होंने आपको अपनी खेचरी विद्या का रहस्य समझाया था ?"

मैंने दृढ़ता से कहा, "खेचरी साधते समय जो अकल्पनीय कष्ट झेलना पड़ा था, उसकी हल्की-सी जानकारी उन्होंने मुझे दी थी।"

"हम खेचरी के कष्ट नहीं, स्वयं खेचरी के बारे में पूछ रहे हैं।" यह स्वर परात्पर जी का था, "क्या, उन्होंने आपको खेचरी विद्या सिखाई ?"

"मैंने उनसे निवेदन किया ही नहीं था कि वह मुझे खेचरी सिखाएँ। न उन्होंने ऐसी कोई उत्सुकता अपनी ओर से दिखाई।"

"आप यहाँ से जा सकते हैं।"

निकुम्भ को साथ लेकर मैं बाहर निकल आया। इस नाटक का प्रयोजन मैं बिल्कुल नहीं समझ पाया था। कुछ पलों के अन्तर से अदिति जी बाहर निकलीं। मैं और निकुम्भ चुपचाप उनके पीछे चलने लगे। कुछ फासला पार होने के बाद वह बोलीं, "सोमपुरा जी ! आप एक घोर संकट से बचे हैं। वामदेव और उनके साथी चाहते थे कि आपको वितथनाथ का पट्ट-शिष्य घोषित कर दिया जाता।"

"मुझे ?" मैं चौंका, "क्यों ?"

"क्योंकि वितथनाथ ने आपको अपनी खेचरी विद्या दी है। कम-से कम, वामदेव के शिष्यों का तो यही दावा है। सौभाग्य समझिए कि प्रश्नों के जो उत्तर आपने दिए, वे सधे हुए थे। यदि उनसे रंचमात्र भी ऐसी झलक मिलती कि वितथनाथ ने आपको खेचरी विद्या दी है, तो.......निश्चित रूप से आप उनके पट्ट-शिष्य घोषित हो जाते । आपको उनके शव का भक्षण करना पड़ता । वामदेव और उनके शिष्य आपको मजबूर कर देते।"

मेरी हड्डियाँ थरथरा गईं ,"ओह, नहीं !"

माता अदिति विद्रूप से हँसी, "समझिए, बस, ऐसा होते-होते रह गया।"

"किन्तु वितथनाथ जी के पट्ट-शिष्य तो परात्पर जी हैं।"

"परात्पर जी कह देते कि पट्ट-शिष्य अब वह नहीं रहे। जो नया पट्ट-शिष्य है, वही वास्तविक है। यानी, आप।"

मेरे दिमाग में एकदम सन्नाटा छा गया। साँसें गर्म हो उठीं। बड़ी मुश्किल से मैं इतना बुदबुदा सका, "शव का भक्षण ! किन्तु वितथनाथ जी तो अपने लिए अग्नि-दाह चाहते थे।"

अदिति जी फिर जरा हँसी, "अग्नि-दाह की उनकी इच्छा को घोल कर पी जाते अघोरियों को देर ही क्या लगती। सचमुच आप एक बड़े संकट से उबर गए।"

थोड़ी खामोशी के बाद वह फिर बोलीं, "दोपहर तक आपको यहाँ से निकल जाना है। तब तक आपको मैं ही सम्भालूँगी। यहाँ आपने मित्र कम बनाएँ हैं शत्रु अधिक।"

सोने के लिए जब मैं अपने कमरे में गया, तब नींद की जगह केवल विचार-ही-विचार आते रहे। आखिर क्यों मैंने मित्र कम बनाए और शत्रु अधिक ? किसी से भी शत्रुता मोल लेने की इच्छा मुझे नहीं थी। फिर भी शत्रुता का विस्तार कैसे हुआ ? हम किसी को चाहने की कोशिश करते हैं और इसी कोशिश में उसे शत्रु बना बैठते हैं। ऐसा क्यों होता है ? कैसे होता है ? क्या हमारे प्रेम में छिपे स्वार्थ के कारण ऐसा हो जाता है ? क्या केवल इसलिए हम अप्रिय हो उठते हैं कि हम सच बोलते हैं ? सच्चाई का ताप इतना अधिक क्यों होता है कि सहा न जाए ?

आँखें मुँदती न मुँदती कि भ्रम होने लगता, सिर में कोई कीलें ठोंक रहा है। एक रक्तसना करुण चेहरा सामने उभरने लगता। एकाएक वह पहचाना न जाता। कभी वह

गुरु चैतन्यानंद का चेहरा लगता, कभी अलखआनंद का, कभी वितथनाथ का और...... कभी खुद अपना.....

सूरज जब पहाड़ से ऊपर उठा, तब मैं बरामदे में एक खम्बे का सहारा लिए खड़ा था। आज अमावस्या थी—अघोरियों की साधना का विशिष्ट दिन और शिविर में मेरा आखिरी दिन। न जाने क्यों, यहाँ से विदा लेने की कोई खुशी मन में नहीं थी। छुटकारे की राहत मिलने के बजाए विषाद के ही बादल घिरते चले आ रहे थे।

निस्संदेह जो पाँच दिन मैंने यहाँ बिताए थे, वे अविस्मरणीय थे। इन अघोरियों को क्या मैं जीवन में कभी भुला सकूँगा ? अलखआनंद से लेकर वितथनाथ तक अनेक अघोरियों से जो चर्चाएँ हुईं......अदिति जी की ममता....निकुम्भआनंद और निर्मलआनंद का उल्लास...वामदेव की प्रचंडता और सुनंद की विनम्रता...............मूठ, वशीकरण, खेचरी, बलिदान, परकाया प्रवेश......ओह, कितने रोमांचक अनुभव ! जगजीत की याद तो रोज ही आई थी। उसके बेमौत मरने की विडंबना मुझ पर चमगादड़ की तरह मँडराती रही थी।

लेकिन भूल भी तो बहुत-कुछ गया था मैं। बाहर के संसार का जैसे अस्तित्व ही मिट गया था। रेडियो, टेलिविजन, अखबार, लोकल ट्रेनें, दोस्तों के कहकहे, बार-बार बजती टेलीफोन की घण्टी, फाइनल प्रूफस का ढेर, चाय-कॉफी की चुस्कियों के बीच रेस्तराँओं में लम्बी बहसें, निश्चित तारीख पर कॉलम लिखकर देने का तनाव.......सब जैसे सपना हो गया था। वही दुनिया अब दुबारा यथार्थ बन कर उभरने को आतुर थी।

मुझसे एक गहरी साँस छूट गई। 'युवदर्शन' के अगले अंक की चिन्ता में भानु व्यर्थ ही चीख रहा होगा। भानु सोचता है, चीखने से चिन्ताएँ टल जाती हैं। विवेक बेफिक्री से विदेशी पत्रिकाओं के पन्ने पलटता, तसल्ली से बैठा होगा। विवेक सोचता है, तसल्ली से बैठने से चिन्ताएँ टल जाती हैं। बीड़ी फूँकता सौदागर सिर झुका कर काम में ऐसा जुटा होगा कि मेज पर रखी उसकी चाय ठंडी हो रही है। सौदागर सोचता है, चाय ठंडी करके पीने से चिन्ताएँ टल जाती हैं।

और.........घर पर ?

ओह घर !

बीबी ने रसोई बना ली होगी। कपड़ों पर इस्तरी फेर ली होगी। स्कूल जाने के लिए बच्चों को तैयार कर लिया होगा। अखबार पलट कर देख रही होगी, कौन-सी पिक्चर कहाँ लगी है।

कैसा रहे अगर पुरानी दुनियाँ में लौट कर ही न जाऊँ ?

सिर झटक कर मैंने इस विचार को नीचे गिरा दिया। अंग-अंग में भय की मंद झुरझुरी दौड़ गई। लौट कर जाना चाहूँ तब भी अगर न जा सकूँ तो ? सहसा मुझे स्वामी शिवानंद याद आने लगे।

तभी निकुम्भ ने आकर कहा, "अदिति जी बुला रही हैं।"

बिना कुछ बोले मैं निकुम्भ के साथ चल निकला।

रास्ते के एक कमरे में वितथनाथ की देह रखी गई थी। कुछ अघोरी उस पर नजर रखे बैठे थे। मैं वहाँ दो पल के लिए रुका। वितथनाथ जीवित ही लग रहे थे, शान्त समाधि में बैठे हुए। केवल उनकी झुर्रियाँ अधिक स्पष्ट हो गई थीं। मैंने और निकुम्भ ने हाथ जोड़ कर उन्हें नमस्कार किया।

हम आगे बढ़े। जिसकी बलि चढ़ने वाली थी उस मासूम किशोरी को जहाँ रखा गया था, अदिति जी उसी कमरे में थीं। वहाँ खासी बड़ी भीड़ जमा थी। वह किशोरी पूर्णतया जागृत, किन्तु शान्त बैठी दिखाई दी। वामदेव एक छोटे यज्ञकुंड में, उस किशोरी के हाथों, यज्ञ जैसा कुछ करवा रहा था। स्वाहा के उच्चार के साथ वामदेव उड़द और जौ इत्यादि के दाने अग्नि में होने का संकेत किशोरी को देता। यन्त्र की तरह किशोरी आदेशों का पालन कर रही थी। उसके चेहरे पर चंदन का गाढ़ा लेप किया गया था। वह नए वस्त्रों में थी। उड़द और जौ के दाने जब तड़तड़ करते हुए फूटते, तब उसके निर्दोष चेहरे पर मुस्कान थिरक उठती।

यह सब धर्म के अनुसार, धर्म के नाम पर और धर्म के लिए हो रहा था। बौखला कर चुप रह जाने के अलावा मैं और कर भी क्या सकता था ?

अदिति जी ने बैठने का संकेत किया। मैं और निकुम्भ आधे घण्टे तक बैठे रहे। किशोरी के हाथों यज्ञ की विधि पूर्ण हो गई। सब बिखरने लगे। मेरा मन एक बार फिर लाचारी और हताशा से भर उठा। मैं अदिति जी के सामने अपना दिल खोले बिना न रह सका। मेरी व्यथा उन्होंने ठीक से समझी या नहीं, पता नहीं, किन्तु उनकी ममता का जो परिचय समय-समय पर मिलता रहा था। उसी से मैं कुछ बोलने के लिए प्रेरित हुआ था।

अदिति जी ने सहसा एक बहुत ही तीखा सवाल किया, "आपके जो वैज्ञानिक विचार हैं उन पर क्या आप वास्तव में पूरी श्रद्धा रखते हैं। आप हमसे सहमत भले न हों, किन्तु यहाँ जो कुछ भी हो रहा है, उस पर हम अघोरियों की असीम श्रद्धा है। इसे शायद आप अंधश्रद्धा कहना चाहेंगे। मैं इसे असीम व अद्‌भुत श्रद्धा कहती हूँ। क्या हमारी तुलना में सौवें हिस्से की भी श्रद्धा आपके मन में है, अपनी वैज्ञानिकता के प्रति ?"

तलवार की धार जैसा तेज सवाल था उनका। एक ही थप्पड़ में आँखें खोल देने की शक्ति थी उस सवाल में। जबाव मेरे पास नहीं था। अचानक लगा, जैसे मेरी श्रद्धा डाँवाडोल हो रही है। मेरा आत्मविश्वास पिघल रहा है। मेरे तमाम तर्क, मेरी तमाम वैज्ञानिक मान्यताएँ हिल रही हैं। जीवन में निराश होने के न जाने कितने अवसर आए हैं। किन्तु उस क्षण जो निराशा मैंने अनुभव की थी वैसी आज तक कभी अनुभव नहीं की।

"कई बार ज्ञान, सत्य, प्रेम आदि कुछ भी जीवन में काम नहीं आता। ऐसे में केवल श्रद्धा ही सहारा देती है, चाहे वह अन्ध-श्रद्धा ही क्यों न हो।" अदिति जी ने फिर से कहा था, "आपके पास जो शब्द-शक्ति है, वह तो श्रद्धाविहीन है। यदि आप में भी हमारे ही जितनी श्रद्धा होती, तो आपके शब्द-शब्द न रहते। वे मंत्र बन जाते।"

फिर जो सन्नाटा छाया, वह मेरे मन-मस्तिष्क में प्रवेश करने लगा।

"एक और बात कहूँ ?" अदिति जी ने पूछा। मेरी चुप्पी को सहमति मान कर वह आगे बोलीं, "असंतुष्ट कौन नहीं है ? आप तो मुझे हम अघोरियों से भी अधिक असंतुष्ट मालूम पड़े।"

अदिति जी द्वारा मारा गया यह दूसरा थप्पड़ था।

कुछ पल बाद वह फिर बोलीं, "इन पाँच दिनों में आपने यहाँ केवल अनुभव नहीं लिया है। यहाँ आपने कुछ किया भी है। दो-दो विकट अघोरियों की जीवन-दिशा आपने पलट दी। परात्पर जैसे परम समर्थ व्यक्ति को भी आपने सोच में डूबा दिया। निकुम्भ और निर्मल जैसे नई पीढ़ी के अघोरी भी आपके विचार सुनकर हचमचा गए हैं। पाँच दिनों में इतनी उपलब्धि कम नहीं। इससे अधिक आप और चाह भी क्या सकते हैं ? पाँच दिनों में आप दुनिया को तो नहीं बदल सकते। यदि इतने अधिक आशावादी बनेंगे, तो सदा के लिए निराशा में ही डूबेंगे। आपकी श्रद्धा निराशा के आघात सह नहीं पाएगी। फूल का काम है सुगन्ध फैलाना। सुगन्ध सारे संसार में क्यों नहीं फैलती ? थोड़े से ही क्षेत्र में क्यों फैलकर रह जाती है ? क्या ऐसी चिंता फूल को कभी होती है ?"

मुझे लगा, माता अदिति के मुँह से गुरु चैतन्यानन्द स्वयं बोल रहे हैं। निराशा के जो बादल घिरने लगे थे, वे एकाएक छँट गए। मन में संतोष परितोष की लहरें-सी उठने लगीं। 'फूल का काम है सुगन्ध फैलाना। बस।' माता अदिति के ये शब्द आकाश से, पर्वतों से, जंगलों से प्रतिध्वनित होने लगे। मैंने अनायास बहुत-कुछ पा लिया। उठकर मैंने अदिति जी के चरण छू लिए।

उन्होंने मेरा हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहा, "जो मैंने आपसे सीखा है, वही मैंने आपको बताया है।"

"आपकी असीम उदारता मुझे हमेशा याद रहेगी।" मैंने अभिभूत होकर कहा, "अदिति जी ! मैंने धर्म के बारे में बहुत सोचा है। धर्म क्या और अधर्म क्या ? धर्म ही अधर्म और अधर्म ही धर्म कैसे बन जाता है ? धर्म के नाम पर पाखंड आखिर मान्य कैसे हो जाता है ? देखकर भी मनुष्य देख क्यों नहीं पाता ? कर्त्तव्य को पहचान कर भी पहचानता क्यों नहीं ? सुखी भी दुखी क्यों हैं ? ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर आज आपसे लेकर जा रहा हूँ। आपने कितनी सरलता से बता दिया, 'धर्म क्या है।' सुगन्ध फैलाना ही धर्म है। सुगन्ध को दूसरे ग्रहण क्यों नहीं करते, ऐसी चिन्ता करना धर्म नहीं है। सुगन्ध को भी जब दूसरों पर लादा जाता है, तब वह दुर्गन्ध बन जाती है। यह लादने की प्रक्रिया ही पाखंड को जन्म देती है। पाखंड लादने वाले दूसरों का शोषण करते हैं। इससे दुख उत्पन्न होता है। सहजता से सुगन्ध फैलाना मनुष्य का कर्त्तव्य है। उसी को जब वह भूल जाता है, तब अकर्तव्य के भँवर में फँसता है। अदिति जी ! आपके वचन सुनकर मेरी आत्म-श्रद्धा में, स्वाभिमान में, विवेक में, दृष्टिकोण में अभूतपूर्व क्रान्ति हुई है। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।"

भोजन निबटाया, तब तक सब शान्त रहा। अचानक निकुम्भआनन्द आ पहुँचा। नजदीक बैठकर बहुत धीमे से बोला, "आपको चुपके से भाग जाना पड़ेगा। वामदेव के कुछ साथियों के इरादे अच्छे नहीं मालूम पड़ते।"

बयालीस

चलते-चलते



निकुम्भ की बात सुनकर मैंने बहुत सावधान और संजीदा नजर से उसकी आँखों में देखा। उसका स्वर तपा हुआ था, "बाबा भैरवनाथ ने घोषणा कर दी है कि आप नरबलि देखने के बाद ही यहाँ से जायेंगे, जबकि आपको नरबलि से पहले ही चुपके से सरक जाना है। आपके विरोधियों को इसका पता एकाएक नहीं चलेगा। वे इसी गफलत में रहेंगे कि आप अभी यहीं हैं, क्योंकि नरबलि नहीं हुई है। नरबलि के बाद ही वे आपको हानि पहुँचाने की सोचेंगे। आपको उससे पहले ही रवाना कर देने की योजना है। ईश्वर ने चाहा, सब सकुशल पार हो जाएगा। मैं तो अब यह सोच रहा हूँ, आपसे दुबारा भेंट कब होगी।"

भावावेश में मैं कुछ न बोल सका। निकुम्भ भी कुछ पल चुप रहा। फिर उसने मेरा हाथ पकड़कर दबाया और थपथपा कर कहा, "दोपहर के बाद चौगान में महापूजा होगी। सबका ध्यान उसी पर केन्द्रित रहेगा। यही वह अवसर है, जब आप नजर बचाकर हट सकेंगे। जो पगडंडी जंगल में सीधा प्रवेश करती है, उस पर तसल्ली से चल पड़ें। हड़बड़ा कर मत चलिएगा अन्यथा किसी को सन्देह हो सकता है। पगडंडी

पर, आगे, निर्मलआनन्द आपका इन्तजार कर रहा होगा। वह स्वयं ही आपको देख लेगा और नजदीक आएगा। वह आपको पहाड़ के उस पार ले जाएगा। वहाँ एक वाहन आपका इन्तजार कर रहा होगा। माता अदिति ने भी आपसे इसी अनुसार चलने के लिए कहा है।"

एकबारगी धड़कन तेज हो गई, किन्तु फिर पूर्णतया निश्चित भी हो गया। रंचमात्र भी संदेह न रहा कि मैं यहाँ से सकुशल लौट जाऊँगा। आत्मश्रद्धा के अंगारे दहकने लगे कि यहाँ का कोई अघोरी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा।

दोपहर को चामुंडा की मूर्ति के सामने एक बड़ी-सी वेदी जल उठी। चामुंडा को जंगली फूलों से सजाया गया था। धुत होकर नाचना तो अघोरियों ने बड़ी देर से शुरू कर दिया था। सबने बहुत मदिरा पी रखी थी। माँस-भक्षण भी अत्यन्त उत्साह से किया जा रहा था। वामदेव अन्य अघोरियों के साथ बैठकर, यज्ञकुण्ड के पास, बड़े जोरों से मंत्रोच्चार कर रहा था। माँ चामुंडा की मूर्ति के सामने नए और पुराने अघोरी अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन कर रहे थे।

निकट ही, एक ऊँचे आसन पर परात्पर जी विराजमान थे। एक अघोरी ने अपना त्रिशूल जमीन में गाड़ कर खड़ा कर दिया। फिर अपनी मंत्र-शक्ति से उसने त्रिशूल को छुए बगैर ही तिरछा कर दिखाया। दूसरे अघोरी ने आग पर नंगे पाँव चलने का सफल प्रयोग किया। मूँग के दाने जितना भी फफोला उसके पैरों में न पड़ा। त्रिशूल भोंकने के बावजूद एक बूँद भी खून न निकले, ऐसा प्रयोग एक अघोरी ने दूसरे अघोरी पर किया।

सारे प्रयोग मैं चुपचाप देखे जा रहा था। सहसा वामदेव ने मुझे नजदीक बुलाकर कहा, "आप हमारे अतिथि हैं। यदि कोई विशिष्ट प्रयोग देखने की इच्छा हो, तो कहिए।"

उनके प्रश्न में जो व्यंग्य और तिरस्कार था, उसे मैंने स्पष्ट महसूस किया। पल भर मैं होंठ भींच कर खड़ा रहा। फिर मैंने निश्चय कर लिया और कहा, "यहाँ आने पर, सबसे पहले, निर्मलआनन्द ने अपनी मंत्र-शक्ति से दीवार पर मेरी हथेली चिपका दी थी। इसी चमत्कार को मैं दुबारा देखना चाहूँगा।"

पास के ही खम्बे पर मैंने अपनी हथेली रख दी और चुनौती के स्वर में कहा, "क्या आप लोगों के बीच कोई भी अघोरी ऐसा है, जो मेरी हथेली इस खम्बे पर चिपका सके ?"

एक अघोरी तुरन्त सामने आ गया। वह युवक था। उसके चेहरे की भयानकता और आँखों की क्रूरता से ही प्रकट था कि वह वामदेव का शिष्य था। उसके हाथ की मानव खोपड़ी में मदिरा भरी हुई थी। उसने मंत्र पढ़ते हुए मदिरा में हाथ डुबोया और मेरी हथेली पर छींटे मारे। मैं मुस्करा कर बोला, "नहीं चिपकी !"

और मैंने अपनी हथेली खम्बे पर से उठाकर दिखा दी।

मैंने हथेली को बार-बार खम्बे पर रखना और उठाना शुरू किया। वह चिपकती ही न थी। वह अघोरी बार-बार मंत्रों की फूँकें मारता और मदिरा छिड़कता, किन्तु मेरी हथेली पर कोई असर ही नहीं था।

आसपास के तमाम अघोरी स्तब्ध रह गए। सहसा उनकी स्तब्धता टूटी। उस युवक अघोरी का मजाक उड़ाते हुए उन्होंने हू-हू हा-हा करना शुरू कर दिया। शरमा कर वह अघोरी एक तरफ बैठ गया।

"खामोश !" वामदेव ने गर्जना की। वह थरथरा कर अपने आसन पर से उठ पड़ा था। सब तत्काल चुप हो गए। वामदेव की विकरालता ने सबको सन्न कर दिया था।

किन्तु मुझे किसी का भय नहीं था। कल्पना-योग से मैंने अपनी अभयावस्था ज़गा ली थी। मैंने खम्बे पर अपनी हथेली रखना और उठाना जारी रखा। प्रचंड, भयानक वामदेव मेरे ऐन सामने आकर खड़ा हो गया। बलिदान के लिए किशोरी को सुषुप्त करके उठा लाता वामदेव, पूतलिका प्रयोग करता वामदेव, परकाया प्रवेश का भयंकर नाटक रचता वामदेव......दु:स्वप्नों का पूरा एक सिलसिला मेरी आँखों के सामने से गुजरने लगा। अनायास मैंने पलकें उठाईं और वामदेव की आँखों में देखा।

अगले ही पल मैं समझ गया कि मुझसे भयानक भूल हो गई है। नजर मिलते ही वामदेव की आँखों ने उसे पकड़ लिया। वह अपनी दृष्टि की डोर में मुझे बाँधने लगा। इसमें उसने एक क्षण का भी विलम्ब न किया। मुझे इतने तपाक से और इतनी शक्ति के साथ सम्मोहित किया जाने लगा कि भय की एक ठण्डी कँपकँपी मेरे सिर से पैर तक रेंग गई। खम्बे पर जो हाथ मैंने रखा था, उसमें झुरझुरी की चींटियाँ चलने लगीं। क्या उस हाथ में से रक्त का संचालन गायब हो रहा था ? नहीं ! ऐसा नहीं होना चाहिए। ऐसा नहीं होगा। ऐसा नहीं हो सकता। मैंने अपने-आप को बताना और विश्वास दिलाना शुरू किया कि वामदेव का कोई प्रभाव मुझ पर न तो है और न हो सकता है। इसके बावजूद मैं वामदेव की दृष्टि से मिली हुई अपनी दृष्टि को हटा नहीं पा रहा था।

आखिर मैंने अपनी सम्पूर्ण इच्छा-शक्ति काम पर लगाकर दृष्टि को एक तेज झटका दे ही दिया। तत्काल मैंने अपने समूचे बदन में एक ऐसा धक्का महसूस किया, जैसे लड़खड़ा कर गिर रहा होऊँ। वामदेव पर से दृष्टि हटाकर मैं आकाश की ओर देखने में सफल हो गया था। मैंने अपने-आप को बार-बार बताया कि मुझ पर अब कोई सम्मोहन नहीं है, नहीं है।

मैंने मुस्करा कर कहा, "नहीं चिपकी।"

और मैंने एक बार फिर अपनी हथेली खम्बे पर से उठा कर दिखा दी।

मैं बार-बार उसे खम्बे पर अपनी हथेली रखने और उठाने लगा। वामदेव के आक्रोश की सीमा नहीं थी। उसके होंठ जल्दी-जल्दी फड़क रहे थे। मदिरा में हाथ डाल-डाल कर वह मेरी हथेली पर छींटे मार रहा था। क्रोध से उसने काँपना शुरू कर दिया था। क्षण-क्षण उसका संतुलन बिगड़ रहा था। अब उसने मंत्र बोलने में गलतियाँ शुरू कर दीं। यहाँ तक कि वह मंत्रोच्चार के बाद मदिरा के छींटे मारना भी भूल जाने लगा।

हर बार मैंने उसकी ओर हँस-हँस कर देखा। प्रत्येक हँसी के साथ मैंने खम्बे पर से अपनी हथेली उठाकर दिखा दी।

क्रोध से दहाड़ कर वामदेव ने अपना भयानक त्रिशूल उठा लिया। त्रिशूल मेरे सीने पर तानकर वह झपटता चला आया।

मृत्यु मेरे ऐन सामने थी। कानों में मेरे ही शब्द गूँजने लगे............जीवन आनंद है, मृत्यु भी आनदं है.........।

मन में प्रसन्नता का झरना फूट पड़ा। सम्पूर्ण आकाश में जैसे एक शान्त, स्वच्छ सुगन्ध सस्नेह छा गई। चैतन्यानंद जी का हँसता चेहरा क्षण भर मेरे सामने आया और चला गया। गुरुदेव के दर्शन पाकर ऐसी आनंदानुभूति हुई, जो वर्णन से परे है।

उस अनुभूति से बाहर आया, तो देखा, भैरवनाथ और परात्पर, वामदेव को समझाते हुए, मुझसे दूर ले जा रहे हैं।

अघोरियों की टोली के बीच सन्नाटा खिंच गया था। सब चुपके-चुपके बिखरने लगे थे। सहसा माता अदिति मेरे पास आकर बुदबुदाई, "निर्मल वहाँ आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। आपको विदा करते हुए मुझे दुःख है, किन्तु...... "

मैंने सादर और साभार मुस्करा कर उन्हें प्रणाम किया।

निर्मल को साथ लेकर मैं पगडण्डी पर आगे बढ़ रहा था। दोनों जब पहाड़ की चोटी पर पहुँचे, तब शाम अभी ढली नहीं थी। कगार पर से हमने नीचे नजर डाली। उतनी ऊँचाई से भी हमने देवी चामुंडा की मूर्ति के सामने उठ रही आग की ऊँची लपटों को स्पष्ट देखा। नगाड़े की धीमी, एकरस किन्तु दिल बैठा देने वाली आवाज भी स्पष्ट सुनाई दी। आते-जाते अघोरी चींटियों जैसे छोटे नजर आ रहे थे। वे अग्नि को घेरकर, गोलाकार में झूमने लगे। जब तक सूर्य डूब नहीं गया, मैं उसी कगार पर खड़ा इस दृश्य को देखता रहा।

अचानक एक तीखा, दर्दनाक चीत्कार आकाश को चीरता हुआ निकल गया। वह मासूम किशोरी अब इस निष्ठुर दुनिया में नहीं थी। विदीर्ण आकाश काँपने लगा। अगले ही क्षण नगाड़ा तेज हो गया। अघोरियों की हू-हू और हा-हा के स्वर मेरी चेतना पर छा जाने लगे। मैंने दोनों कानों पर हथेलियाँ रखकर आँखें मींच लीं।

जब आँखें खोलीं, तब संध्या का रक्त आकाश में दूर-दूर तक फैल चुका था।

जब ढलान पार कर रहे थे, तब निर्मलआनन्द पूछने लगा, "उस दिन मुझ जैसे नौसिखिए अघोरी ने भी आपकी हथेली दीवार पर आसानी से चिपका दी थी। आज आपने वामदेव जैसे विकट अघोरी को भी असफल कर दिया। यह कैसे हुआ ?"

"निर्मल जी !" मैंने गम्भीरता से कहा, "आत्म-सम्मानी होने के ही कारण मैं इस शिविर में आया था। इसके बावजूद, पहले दिन, मेरा आत्म-सम्मान उतना बढ़ा-चढ़ा नहीं था कि एक नौसिखिए अघोरी की भी मंत्र-शक्ति का सामना मैं कर सकता। आज जब मैं जा रहा हूँ, तब आत्म-सम्मानी होने के ही कारण जीवित वापस जा रहा हूँ। आज मेरा आत्म-सम्मान इतना बढ़ा-चढ़ा है कि वामदेव जैसे प्रचण्ड अघोरी के भी विरुद्ध मैं सफलतापूर्वक खड़ा हो सका।"

"मैं नहीं जानता, मैंने आप लोगों को क्या दिया है, किन्तु मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि आप लोगों ने मुझे क्या दिया है। आप सबने मिलकर मुझमें एक नई शक्ति जगाई है। आत्म-बल और आत्म-सम्मान की यह शक्ति मुझे अन्यत्र कहीं से भी नहीं मिल सकती थी।"

"मैं नहीं सोचता कि अलखआनन्द या वितथनाथ जैसे पहुँचे हुए अघोरी केवल मेरे शब्दों से प्रभावित हुए। हाँ, मैं उनके अंत का एक निमित्त अवश्य बना। तूफान तो उनके भीतर पहले से मौजूद था। मैंने उनके लिए कुछ भी नहीं किया, किन्तु जाते-जाते वे मेरे लिए बहुत-कुछ कर गए हैं। उन दोनों ने, और आप सबने मिलकर, मुझमें एक क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया है। ऐसे अनेक प्रश्न थे, जिनके उत्तर मैं अब तक नहीं खोज सका था। वे सभी उत्तर मुझे, यहाँ आने से, अपने-आप मिल गए। कभी मैं सोचता था कि जिस तरह धनवानों के कारण निर्धन और साध्वियों के कारण वेश्याएँ पैदा होती हैं, उसी तरह समाज में संयम की अति के कारण असंयम की भी अति अघोरियों के रूप में, पैदा हुई है। आज जब मैं जा रहा हूँ, तब यह भ्रम टूट चुका है। बेशक मैं अघोरियों से सहमत नहीं हूँ, किन्तु मैं जानता हूँ, अब जान सका हूँ कि अघोरी असंयम से नहीं, संयम से पैदा हुए हैं। उनके पास न केवल संयम, बल्कि अनुशासन और आत्म-श्रद्धा का भी एक ऐसा बल है, जो जितना विचित्र है, उतना ही अतल भी है।"

"अब तक मैं समझता था कि केवल ज्ञान और सच्चाई ही मनुष्य को प्रेरणा दे सकती है। आज मैं जानता हूँ कि श्रद्धा के सूत्र भी मनुष्य को प्रेरणा और स्नेह के बंधन में बाँध सकते हैं। सच्चाई का सहारा न होते हुए भी मनुष्य केवल अपनी श्रद्धा के जोर पर कितनी-कितनी सिद्धियाँ साध सकता है, यह मैंने अपनी आँखों से देख लिया है। कभी मैं अघोरियों से रुष्ट था, आज नहीं हूँ। आज मैं उनके विरुद्ध अवश्य हूँ, किंतु उनसे रुष्ट नहीं हूँ। कहीं-न-कहीं मैं उनका, आपका, आप सबका, हृदय से आभारी हूँ। अत्यन्त आभारी हूँ। मेरे भीतर आत्म-सम्मान का जो अंकुर था, उसी को आप सबने मिलकर विराट वट वृक्ष का रूप दे दिया है। यह केवल आप लोग ही कर सकते थे। संसार में और कोई नहीं......... "

अंधकार और प्रकाश के झिलमिल वातावरण में जब मैंने निर्मलआनन्द से विदा ली, तब हम दोनों की आँखें अनायास भीगने लगीं। निर्मल के माध्यम से मैंने निकुम्भ को अपनी याद भिजवाई। माता अदिति, बाबा भैरवनाथ, परात्पर जी और वामदेव के भी नाम मैंने अपना प्रणाम भेजा। मेरा आत्म-सम्मान जगाने में वामदेव का सहयोग तो सर्वाधिक था।

मेरा इन्तजार करती जीप किस दिशा में खड़ी है, निर्मलआनन्द ने बताया। निर्मल के चेहरे पर से नजर हटाकर, मैं उसी दिशा में लम्बे डग भरने लगा। बार-बार जी चाहता था, पलटकर निर्मल को देख लूँ। मैंने ऐसा न किया।

जीप की दो आँखें मैंने अन्धेरे में जलती देखीं। सहसा मैंने चाहा, कोई गीत गुनगुनाने लगूँ। अमावस्या की काली रात्रि में असंख्य तारे टिमटिमा रहे थे। मैंने उन पर एक सरसरी नजर डाली। मैंने जीप में प्रवेश किया। मेरे आश्चर्य के बीच, स्वामी शिवानन्द मुझसे लिपट पड़े।

तंत्र-मंत्र के प्रचण्ड चमत्कारों की वैज्ञानिक जाँच-परख

अघोरियों के बीच

❖ यह विचित्र-कथा केवल विचित्र-कथा नहीं। यह सत्य-कथा केवल सत्य-कथा नहीं। यह रोमांच-कथा केवल रोमांच-कथा नहीं। यह तो एक ऐसी कथा है कि जैसी कथा कोई और है ही नहीं। सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में नहीं।

❖ भयानक अघोरियों की डरावनी दुनिया में झाँकना आसान नहीं है। उनके साधना-शिविर में बाहर का कोई व्यक्ति नहीं पहुँच सकता।

❖ अघोरियों के गुप्त साधना-शिविर में विख्यात पत्रकार सुरेश सोमपुरा एकाएक जा पहुँचे। मानव-बलि देने पर आमादा अघोरियों को वह चुनौतियाँ दे बैठे। फिर तो सुरेश सोमपुरा को ही बलि चढ़ा देने की तैयारियाँ हो गईं। आखिर वह कौन-सा रहस्य था, जिसे पाने के लिए अपनी जान पर खेल गये थे ?

❖ सचमुच यह विचित्र-कथा जान हथेली पर रखकर लिखी गई है। यह सत्य-कथा बताती है कि इन्सान अपनी जिन्दगी को जीये कैसे ? क्या आत्मा और परमात्मा से डरकर ? भूत-प्रेत और धर्म-अधर्म से सिटपिटाकर ? या एक नेक इन्सान के रूप में दबंग होकर ? निश्चित जानिए, यह डरावनी सत्य-कथा अन्त में आपको निडरता का वरदान देगी।

भगवती पॉकेट बुक्स

11/7, डॉ० रांगेय राघव मार्ग, आगरा—2. Ph. 355179, 355187